संस्थापक संपादक
स्व. फतेहचंद

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

SHODH SAMALOCHAN

शोध-समालोचन (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REREREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

वर्ष-12, अंक-3 **जुलाई-सितम्बर 2025 (भाग-4)** **आईएसएसएन : 2348-5639**

संपादक
• डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल' एडवोकेट

कार्यकारी संपादक
• डॉ. वर्षा रानी

प्रबंध संपादक
• डॉ. मुकेश 'ऋषिवर्मा'

सह-संपादक
• डॉ. लता एस. पाटिल,
• डॉ. सुलक्षणा अहलावत

अक्षर संयोजन
• मो. सलीम

कानूनी सलाहाकार
• डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
• अजीत सिहाग, एडवोकेट

सलाहकार सम्पादक मंडल

• डॉ. निशीथ गौड, आगरा
• डॉ. ऊषा रानी, शिमला
• डॉ. गोविन्द सोनी, श्रीगंगानगर
• डॉ. सुषमा रानी, जीन्द
• डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट, श्रीनगर
• डॉ. दीपशिखा, पटियाला
• डॉ. गौतम कुमार साहा, दरभंगा
• श्री राकेश शंकर भारती, युक्रेन
• डॉ. के.के. मल्होत्रा, कैनेडा
• डॉ. आशीष कुमार दीपांकर, मेरठ
• डॉ. कामिनी कौशल, गाजियाबाद
• डॉ. रवि शंकर सिंह, आरा
• डॉ. संजय कुमार, रांची
• डॉ. संतोष कुमार भगत, रांची

1. 'शोध-समालोचन' का प्रबंधन और संपादन पूर्णतः अवैतनिक है।
2. 'शोध-समालोचन' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के अपने हैं। उनके प्रति वे स्वयं उत्तरदायी है।
3. पत्रिका से संबंधित प्रत्येक विवाद का न्याय क्षेत्र भिवानी न्यायालय ही मान्य होगा।
4. प्रकाशक/ स्वामी डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से मुद्रित करवाया।

'शोध समालोचन' की सदस्यता का शुल्क भुगतान राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सीधे ट्रांसफर या जमा किया जा सकता है। बैंक का विवरण निम्नानुसार है–**बैंक :** PUNJAB NATIONAL BANK **Branch :** Yamuna Vihar, Delhi-110053 **IFSC :** PUNB0225600 **Account Holder :** SANIA PUBLICATION **Current Account No.** 2256002100405546 भुगतान की मूल रसीद, शोध -पत्र पत्रिका की ई-मेल पर भेजना अनिवार्य है।

नोट :- इस अंक की प्रिंट कॉपी खरीदने के लिए सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से सम्पर्क करें मो. 9818128487

मूल्य : 650/- रु. एक प्रिंट प्रति वार्षिक 2500/- रु.

Editorial Board Member

1. **Dr. Priyanka Ruwali**
   Dept. Of Sociology
   D.S.B. Campus, Kumaun University, Nainital, Uttrakhand
2. **Ashutosh Singh**
   Department of History,
   Kurukshetra University, Kurukshetra, Haryana
3. **Mansi Sharma**
   ICSSR- Doctoral Fellow,
   Department of Political Science,
   University of Lucknow, Lucknow, U.P.
4. **Kishor Kumar**
   Department of History,
   Kumaun University, Nainital, Uttarakhand.
5. **Vivek Kumar**
   Research Scholar,
   Department of Medivial and Modern History,
   University of Lucknow, U.P.

विषय विशेषज्ञ सलाहकार समिति/ संपादकीय मंडल :

- **Dr. Mudita Popli**
  Principal, Maa Karni B Ed College Nal, Bikaner
- **Dr. Tapasya Chauhan**
  Assistant Professor,
  Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra (Utter Pradesh)
- **Dr. AMBILI V. S.**
  Assistant Professor, Department of Hindi,
  N.S.S. College, Pandalam, Pathanamthitta Distt. University of Kerala.
- **Dr. Om Prakash Mehrara**
  Director, Shri Ramnarayan Dixit PG College, Srivijaynagar, Distt. Anupgarh (Rajasthan)
- **Dr. Anju Bala**
  Assistant Professor Hindi,
  Guru Nanak Girls College, Yamunanagar-135001
- **डॉ. श्रीमती अभिलाषा सैनी**
  प्राचार्य, स्व. रामनाथ वर्मा शासकीय महाविद्यालय, मोपका, जिला-बलौदा बाजार, छत्तीसगढ़
- **डॉ. माया गोला,** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)
- **डॉ. मोहित शर्मा**
  श्री सर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, निम्बार्क तीर्थ किशनगढ़, जिला अजमेर (राजस्थान)-305815
- **रजनी प्रिया**
  राँगाटाँड़ रेलवे कॉलोनी, क्वार्टर सं. 502/136, तरुण संघ क्लब दुर्गा मंदिर, धनबाद, लैण्डमार्क - नियर श्रमिक चौक, पोस्ट जिला-धनबाद, झारखंड-826001

- **डॉ. आँचल कुमारी,** असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी
  राम चमेली चड्ढा विश्वास गर्ल्स कॉलेज गाजियाबाद चौधरी चरणसिंह युनिवर्सिटी, मेरठ (उ. प्र.)
- **डॉ. सरिता भवानी मालवीय**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, फैकल्टी ऑफ लॉ.,
  आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्यप्रदेश)
- **डॉ. संदीप कुमार,** असि. प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, कन्हैयालाल मानिकलाल मुंशी हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **डॉ. प्रमोद नाग**
  सहायक प्राध्यापक, आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेजुएट स्टडीज, बेंगलुरु-560107
- **पल्लवी आर्य**
  असि. प्रोफेसर, भाषाविज्ञान विभाग, के.एम.आई. डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **डॉ. अमित कुमार सिंह**
  डी. लिट्., असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, के.एम. आई., डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
- **कोकिला कुमारी**
  शोद्यार्थी, हिंदी विभाग, राँची वि.वि. राँची, झारखंड
- **गोस्वामी सोनीबाला**
  शोधार्थी - जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार
- **डॉ. करुणेन्द्र सिंह**, असिस्टेंट प्रोफेसर
  रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, गोरखपुर, बापू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पीपीगंज, गोरखपुर
- **डॉ. मीरा चौरसिया**
  चमनलाल महाविद्यालय लंढौरा, रुड़की, हरिद्वार, उत्तराखण्ड-247664
- **Dr. Vimal Parmar**
  Assistant Prof. Rajasthan P.G. Law College, Chirawa , Rajasthan
- **डॉ. तनु श्रीवास्तव**
  असिस्टेंट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), स्कूल ऑफ सोशल साइंस, देवी अहिला विश्वविद्यालय, इन्दौर
- **डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी**
  उप-प्राध्यापक, केंद्रीय हिन्दी विभाग
  त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू, नेपाल
- **Dr. Archana Tiwari** , Assistant Professor , History and Indian Culture, Uni. Rajasthan, Jaipur
- **डॉ. जगदीप दुबे**
  सहायक प्राध्यापक वाणिज्य (म.प्र.), शासकीय आदर्श महाविद्यालय, डीनडोरी (म.प्र.)
- **डॉ. चन्द्रशेखर सिंह**
  समाज कार्य विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी
- **लेफ्टि. डॉ. सन्दीप भांभू**
  शारीरिक शिक्षा विभाग, टॉटिया वि.वि. श्रीगंगानगर

Request to Writers

Send quality original and unpublished works written on language, literature, society, science and culture. For publication, along with the translated works, also send the letters of consent received from the original authors. Compositions should be typed in Hindi Unicode Mangal font, English Time Roman. At the beginning of the article, a summary of the article is required which should be between 150 to 200 words maximum. The abstract must reflect the purpose of writing the article. Also write 5 to 7 'key words' (seed words) according to the article.

Write the article by dividing it appropriately into subheadings. Be sure to give a conclusion at the end of the article. The word limit should be 2000 to 2500 words. List of bibliographies at the end of the article APA Be in the format of. While sending the article, please write your name, address, phone number and title of the article in the e-mail. Submit a declaration to the effect that the article is original, unpublished, the author and not the editorial board will be responsible for any dispute related to it in future.

At the end of the composition, mention your complete postal address, mobile number and e-mail address.

- Editor

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज, विज्ञान एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएं भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फान्ट अंग्रेजी टाइम रोमन में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 (की वर्ड) (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2000 से 2500 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे संपादक मंडल नहीं।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें।

-संपादक

प्रकाशित पत्रिका प्राप्त करने के लिए संपर्क करे :
सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094
मोबाइल : 9818128487, 8383042929

ISSN : 2348-5639

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

संपादकीय : भारतीय समाज और साहित्य : विचार, विमर्श और वैचारिक पुनर्पाठ का समय

वर्तमान समय भारतवर्ष के सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक जीवन में एक नए उथल-पुथल का काल है। यह कालखंड न केवल तकनीक और संचार के स्तर पर परिवर्तनशील है, बल्कि यह मूल्यबोध, दृष्टिकोण और विमर्शों के पुनर्परिभाषण का भी युग है। ऐसे समय में साहित्य और समाज के संबंधों पर गहन पुनर्विचार आवश्यक हो जाता है। साहित्य केवल कल्पना नहीं, वह अनुभव, संघर्ष, दृष्टि और सामाजिक चेतना का दस्तावेज है। आज जब भारत एक ओर अपनी परंपराओं और मूल्यों को बचाए रखने की जद्दोजहद में है, तो दूसरी ओर वह वैश्विक विमर्शों, नवपूंजीवाद, उपभोक्तावाद और डिजिटल संस्कृति से भी गहराई से प्रभावित हो रहा है। इसी द्वंद्व में साहित्य की प्रासंगिकता और उसकी भूमिका स्पष्ट होती है।

'शोध समालोचन' पत्रिका का यह अंक, जुलाई, अगस्त और सितम्बर की त्रैमासिक सीमा में, उन्हीं विमर्शों को रेखांकित करता है जो आज के साहित्यिक परिवेश, समकालीन रचनाशीलता और समाज के अंतर्विरोधों के बीच एक संवाद कायम करते हैं।

साहित्य और सामाजिक यथार्थ

साहित्य हमेशा समाज का दर्पण नहीं होता, वह कई बार समाज से आगे चलने वाला, चेतना देने वाला और क्रांति की बीज बोने वाला औज़ार भी होता है। आज जब सामाजिक यथार्थ बहुआयामी हो गया है—जाति, वर्ग, लैंगिकता, धर्म, पर्यावरण, शिक्षा, ग्रामीण-शहरी द्वंद्व, पलायन, बेरोजगारी और सांस्कृतिक अस्मिता जैसे मुद्दे मुखर हो रहे हैं तो समकालीन लेखन भी इन्हीं विषयों को अपनी रचनाओं में स्थान दे रहा है।

हमने देखा है कि दलित साहित्य, स्त्री विमर्श, आदिवासी साहित्य, श्रमिक साहित्य तथा यथार्थवादी लेखन के नए रूप सामने आए हैं। ये धारणाएँ किसी विचारधारा के आग्रह मात्र नहीं, बल्कि हमारे समय की सामाजिक सच्चाइयों की साहित्यिक अभिव्यक्तियाँ हैं। इस अंक में प्रकाशित कई लेख, कविताएँ, आलोचनात्मक लेख और साक्षात्कार इन्हीं विचारधारात्मक और यथार्थमूलक आधारों पर टिके हैं।

आलोचना और समालोचना की भूमिका

समकालीन साहित्यिक विमर्श में आलोचना केवल साहित्यिक सौंदर्य पर बात करने तक सीमित नहीं रह गई है। आलोचना अब सत्ता, संस्कृति, समाज और समय की भी परतें उधेड़ती है। आज के युग में जब कई बार साहित्य राजनीति का साधन बनता दिखाई देता है, तब आलोचना का काम केवल "कथ्य" और "शिल्प" तक सीमित नहीं रह जाता, बल्कि वह यह भी देखती है कि कौन बोल रहा है, किसके लिए बोल रहा है और किसे चुप करवा रहा है।

'शोध समालोचन' का यह अंक विचारधारा की बहुलता का स्वागत करता है और एक समावेशी आलोचना दृष्टिकोण की ओर संकेत करता है। इसमें प्रकाशित आलेखों में आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता, उत्तर-साम्राज्यवाद और भूमंडलीकरण जैसे विमर्शों की छाया भी स्पष्ट देखी जा सकती है।

नारी लेखन और स्त्री दृष्टि

नारी लेखन अब केवल स्त्री विषयक लेखन नहीं रह गया है, बल्कि यह एक वैकल्पिक दृष्टिकोण के रूप में उभरा है जो समाज की सत्ता संरचनाओं, पितृसत्ता, लिंगभेद और लैंगिक न्याय जैसे मुद्दों को केंद्र में रखता है। इस अंक में प्रकाशित

स्त्री लेखन केंद्रित लेखों में यह देखा जा सकता है कि स्त्री अब केवल विषय नहीं, स्वयं लेखन की दिशा बदलने वाली दृष्टि बन चुकी है।

यह नारी दृष्टि केवल कविताओं में भावुकता या पीड़ा के रूप में नहीं आती, बल्कि वह राजनीतिक, सांस्कृतिक और वैचारिक हस्तक्षेप भी करती है। विशेष रूप से ग्रामीण पृष्ठभूमि की स्त्रियों के लेखन में जो आत्मकथात्मक स्वर उभरते हैं, वे समकालीन हिंदी साहित्य को नई पहचान दे रहे हैं।

क्षेत्रीयता और भाषाई विविधता

भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी ताकत उसकी भाषाई विविधता है। हिंदी के साथ-साथ भोजपुरी, हरियाणवी, मराठी, पंजाबी, बांग्ला, मैथिली, राजस्थानी, अवधी, ब्रज जैसी भाषाओं में भी विपुल साहित्य रचा जा रहा है। क्षेत्रीय साहित्य समाज के वास्तविक अनुभवों को, उनकी जड़ों और संघर्षों को जिस आत्मीयता से सामने लाता है, वह मुख्यधारा की साहित्यिक दुनिया को एक नया नजरिया देता है।

इस अंक में हरियाणवी लोक साहित्य, राजस्थानी जनकथाओं और भोजपुरी कविता पर केंद्रित लेख इस दृष्टिकोण को सशक्त बनाते हैं।

नई पीढ़ी की लेखनी

तकनीक और डिजिटल क्रांति के इस युग में साहित्य का स्वरूप भी बदल रहा है। फेसबुक, ब्लॉग, यूट्यूब, पोडकास्ट और ई-पत्रिकाओं के माध्यम से एक नई रचनाकार पीढ़ी साहित्य में प्रवेश कर रही है। ये लेखक पारंपरिक संस्थाओं से बाहर रहकर भी एक बड़ा पाठक वर्ग तैयार कर रहे हैं।

'शोध समालोचन' इस बदलाव को स्वीकारते हुए नई पीढ़ी की रचनाशीलता को भी उचित मंच प्रदान कर रहा है। इस अंक में प्रकाशित युवा लेखकों की कविताएँ और समीक्षाएं इस बात का प्रमाण हैं कि हिंदी साहित्य का भविष्य जागरूक, प्रखर और सजग हाथों में है।

साहित्य और समकालीन संकट

यह युग राजनीतिक उथल-पुथल, सांस्कृतिक विखंडन, जलवायु संकट, तकनीकी गुलामी और मानसिक अवसादों का युग है। ऐसे समय में साहित्य की भूमिका केवल सौंदर्यबोध तक सीमित नहीं रह सकती। साहित्य को इन संकटों की पहचान करनी होगी और उनके समाधान की दिशा में नैतिक एवं वैचारिक हस्तक्षेप भी करना होगा।

इस अंक में जलवायु परिवर्तन, युद्ध, नैतिक पतन, सांस्कृतिक संकट और मनोवैज्ञानिक पीड़ा पर आधारित लेख साहित्य को एक संवेदनशील सामाजिक अभ्यास के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

निष्कर्ष : साहित्य संवाद का माध्यम

हम यह मानते हैं कि साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि संवाद, साक्षात्कार और आत्ममंथन भी है। 'शोध समालोचन' का यह अंक इन्हीं उद्देश्यों को लेकर आगे बढ़ा है। हम साहित्य को न तो किसी विचारधारा के बंधन में बांधना चाहते हैं, और न ही उसे केवल सजावटी प्रयोगों तक सीमित करना चाहते हैं। हम उसे संवाद, विचार और परिवर्तन की दिशा में देखना चाहते हैं।

आशा है कि यह अंक हमारे पाठकों को चिंतन की दिशा में प्रेरित करेगा और साहित्य-संवेदना के नए आयामों की खोज में सहायक सिद्ध होगा। हम सभी लेखकों, समीक्षकों, शोधार्थियों और सुधि पाठकों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने अपने समय, श्रम और दृष्टिकोण से इस अंक को सार्थकता प्रदान की।

आपके सुझाव और आलोचनाएँ ही हमारी दिशा और दृष्टि को प्रखर बनाती हैं। अतः हम आपके सुसंवादी सहयोग की सतत अपेक्षा रखते हैं।

संपादक

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

विषयानुक्रमणिका

संपादकीय : भारतीय समाज और साहित्य : विचार, विमर्श और वैचारिक पुनर्पाठ का समय 6

संसद द्वारा पारित महिला आरक्षण अधिनियम, 2023 का महत्व 11
डॉ. उमा मेहता

समाज में महिलाओं की स्वस्थ्य, शिक्षा एवं सशक्तिकरण का समाजशास्त्रीय विश्लेषण 15
डॉ. सुनीता सिंह

समकालीन कविता के परिपेक्ष्य में यथार्थवादी-चेतना 21
शाइस्ता सना

बिहार पर्यटन के क्षेत्र में सामाजिक एवं आर्थिक विकास की संभावनाएं : कैमूर जिला के विशेष संदर्भ में 26
नीतीश वर्धन

महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका- एक अध्ययन 34
कुलदीप सिंह टण्डवाल

छायावाद, मुकुटधर पाण्डेय और डॉ. बलदेव साव 40
सुशीला साहू

नाटक- वेटिंग फॉर गोडो : एक अध्ययन 45
डॉ. संयुक्ता थोरात

पंचायती राज संस्थाओं में जनजातीय महिलाओं की भागीदारी 52
डॉ. प्रीति कुमारी

భక్త కథామంజరి – బసవ పురాణము 55
Dr. Adapa. Kedari

कबीर आज अधिक प्रासंगिक हैं (कबीर की प्रासंगिकता : वर्तमान काल में) 61
मोहम्मद इबादुर रहमान खान
डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय

वासुदेवशरण अग्रवाल का भारतसावित्री में गीता-दर्शन संबंधित दृष्टिकोण 66
मनीष ठाकुर

मैथिली लोकगीतों की सीता 72
डॉ. नूतन कुमारी

नव नियुक्त शिक्षकों की चुनौतियाँ और समाधान 76
अमित कुमार

पारिवारिक वातावरण एवं शैक्षिक उपलब्धि का संबंध 82
जयश्री वर्मा
डॉ. मंजू साहू
सिंधु घाटी सभ्यता में धार्मिक आस्थाएँ और सांस्कृतिक जीवन का तुलनात्मक अध्ययन 85
अनुराग कुमार
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट की नज्मों में सामाजिक एवं दार्शनिक दृष्टिकोण 91
डॉ. प्रवीण कुमारी
विभिन्न वर्गो की बालिकाओं की जिज्ञासा का अध्ययन 94
अर्चना शर्मा
डॉ. अल्पना शर्मा
बलराम दास कृत ओड़िआ 'लक्ष्मी पुराण' में स्त्री एवं दलित अस्मिता 98
विशाल साहु
प्रो. अंजुमन आरा
सरगरा समाज के लोकगीतों में भक्ति भावना 105
डॉ. मरजीना
भारती पंवार
'साँप' उपन्यास में वर्णित हाशिए का समाज 109
डॉ. विभीषण कुमार
Gender, Governance and Democratic Deepening in India 113
Dr. Ravi
सेवासदन उपन्यास में महिला उत्पीड़न के विविध रूप 119
डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
इच्छा उपाध्याय
राष्ट्रीय शिक्षा नीति : 2020 के संदर्भ में विद्यालय स्तर वर्तमान स्थिति 124
डॉ. राखी सक्सेना
जगदीश कुमार धुर्वे
नागार्जुन के उपन्यास में स्त्री-स्वातंत्र्य के विविध आयाम 131
सलोनी प्रिया
नरेन्द्र कोहली के महाभारत कथा पर आधारित उपन्यासों की साहित्यिक प्रासंगिकता 136
डॉ. राजकुमार
Women Entrepreneurship in Haryana -Contemporary Issues 142
Dr. Satyawan Jatain
ग्रामीण भारत में शैक्षिक असमानता, राजनीति और आई.सी.टी. की चुनौतियाँ 152
डॉ. एम.एम. अंसारी
साइबर आतंकवाद : भारत के सन्दर्भ में 160
अनुराग दूबे

दृष्टिबाधितों की समस्याएँ 'रंगभूमि उपन्यास' के विशेष संदर्भ में 167
डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
शिवेन्द्र कुमार
तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में नारी विषयक दृष्टि 172
डॉ. सविता
पारिस्थिकी चेतना : 'हिडिम्ब' उपन्यास के संदर्भ में 178
गौरव सिंह
प्रेमचंद : देशभक्तिपरक कहानियाँ 182
सुभाष चंद्र वर्मा
बूढ़ी काकी : यथार्थ से आदर्श की अन्तर्यात्रा 186
डॉ. रजिंदर कौर
भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में मुंगेर जिला का योगदान 190
शुभम कुमार
समकालीन हिंदी उपन्यास का नया परिप्रेक्ष्य : उत्तर-आधुनिकता 196
डॉ. सन्मुख नागनाथ मुच्छटे
Reassessing Human Rights Narratives: Ethno-Nationalism, NGO Accountability, and the Global Response to Injustice—A Review of Schimmel's Contributions 201
Dr. Amrita Chaudhary
प्रदीप सौरभ कृत उपन्यास 'तीसरी ताली' : अस्तित्व का संघर्ष और यथार्थ 206
डॉ. नवनाथ गाड़ेकर
आवासीय और गैर-आवासीय विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन 213
पुर्नवसु चतुर्वेदी
डॉ. अल्पना शर्मा

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

संसद द्वारा पारित महिला आरक्षण अधिनियम, 2023 का महत्व

डॉ. उमा मेहता
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
गुजरात आर्ट्स एण्ड सायन्स कॉलेज, अहमदाबाद (गुजरात)
मो.नं. 9429647368
ईमेल- umhindi13@gmail.com

भारत के संविधान को और संशोधित करने के लिए भारत गणराज्य के चौहत्तरवें वर्ष में संसद द्वारा महिला आरक्षण संविधान (एक सौ छःवां संशोधन) अधिनियम, 2023 पारित किया गया। महिला आरक्षण अधिनियम, 2023 को केन्द्र सरकार ने 28 सितम्बर 2023 को राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत किया। इस संविधान के अनुच्छेद 239AA के खंड (2) के उपखंड (b) के पश्चात (ba) में जोड़ा गया कि, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की विधान सभा में महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित होंगी। (bb) राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की विधान सभा में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित सीटों में से यथासंभव एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी। (bc) राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की विधान सभा में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरी जाने वाली कुल सीटों की संख्या का एक-तिहाई (अनुसूचित जातियों की महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों की संख्या सहित) महिलाओं के लिए आरक्षित किया जाएगा।

संविधान के अनुच्छेद 330 के पश्चात् नया अनुच्छेद 330। को सम्मिलित किया गया। इसके तहत लोक सभा में महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित होंगी। आरक्षित कुल स्थानों में से एक-तिहाई स्थान अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित होंगी। संविधान के अनुच्छेद 332 के पश्चात नया अनुच्छेद 332। को सम्मिलित किया गया। इसके तहत प्रत्येक राज्य की विधान सभा में महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित रहेंगे। आरक्षित कुल स्थानों में से एक-तिहाई स्थान अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे। संविधान के अनुच्छेद 334 के पश्चात् नया अनुच्छेद 334A जोड़ा गया। नए अनुच्छेद 334A के अनुसार महिलाओं का आरक्षण प्रभावी हुआ। अनुच्छेद 334A (1) के अनुसार इस भाग VIII के पूर्वगामी प्रावधान किसी बात के होते हुए भी लोक सभा, किसी राज्य की विधान सभा और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की विधान सभा में महिलाओं के लिए सीटों के आरक्षण से संबंधित संविधान के प्रावधान, संविधान (एक सौ छठा संशोधन) अधिनियम, 2023 के प्रारंभ होने के बाद की गई पहली जनगणना के प्रासंगिक आंकड़े प्रकाशित होने के बाद इस प्रयोजन के लिए परिसीमन की प्रक्रिया शुरू होने के बाद प्रभावी होंगे और ऐसे प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधी की समाप्ति पर प्रभावी नहीं रहेंगे। अनुच्छेद 239AA, 330A, 332A के उपबंधों के अधिन रहते हुए लोक सभा, किसी राज्य की विधान सभा और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की विधान सभा में महिलाओं के लिए आरक्षित सीटें संसद के द्वारा तय की गई तारीख तक बनी रहेंगी। लोक सभा, किसी राज्य की विधान सभा तथा राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की विधान सभा में महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों का चक्रानुक्रम प्रत्येक पश्चातवर्ती परिसीमन के पश्चात प्रभावी

होगा। इस अनुच्छेद की कोई बात लोक सभा, किसी राज्य की विधान सभा या राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की विधान सभा में किसी प्रतिनिधित्व पर तब तक प्रभाव नहीं डालेगा जब तक कि तत्कालीन विद्यमान लोक सभा, किसी राज्य की विधान सभा या राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की विधान सभा भंग न हो जाए। संशाधन से लोक सभा, किसी राज्य की विधान सभा या राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की विधान सभा में आरक्षण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

महिला आरक्षण अधिनियम, 2023 का महत्व

महिला आरक्षण अधिनियम 2023 को नारी शक्ति वंदन विधेयक भी कहा जाता हैं। संसद द्वारा महिला आरक्षण अधिनिय 2023 भारत वर्ष में हर क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। महिला आरक्षण अधिनियम 2023 की वजह से (1) राजनीति के क्षेत्र में उच्च स्थान प्राप्त करने वाली महिलाओं की संख्या बढ़ेगी (2) भारत वर्ष विश्वगुरू बनने की दिशा में आगे बढ़ेगा (3) महिलाओं का नेतृत्व बढ़ेगा (4) लैंगिक समानता का माहौल बढ़ेगा (5) स्त्री सशक्तिकरण को बढावा मिलेगा (6) महिलाएँ आत्मनिर्भर बनेगी।

(1) राजनीति के क्षेत्र में उच्च स्थान प्राप्त करने वाली महिलाओं की संख्या बढ़ेगी

भारत वर्ष में राजनीति के क्षेत्र में पहले से महिलाओं का योगदान कम रहा हैं। स्वातंत्र्य संग्राम से लेकर आज तक महिलाओं ने समय-समय पर अपनी राजनैतिक प्रतिभा का परिचय दिया हैं। जिसमें झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई से लेकर इन्दिरा गाँधी, प्रतिभा पाटिल और द्रौपदी मुर्मु तक की महिलाओं के राजनैतिक योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। महिला आरक्षण अधिनियम 2023 लागू होने के पश्चात महिलाओं को राजनीति के क्षेत्र में उच्च स्थान प्राप्त करने के अवसर मिलेंगे। गाँधी जी का मानना था कि, ''समाज में से गरीबी, बेरोजगारी, निरक्षरता तथा अज्ञानता को दूर करना हैं, तो परंपरागत भारतीय समाज का न्यायी समाज में रूपांतर करना होगा। इसके लिए महिलाओं के कानूनी और राजनीतिक समान अधिकार प्रारंभबिंदु हैं। इस परिवर्तन की प्रक्रिया में स्त्री की महत्वपूर्ण भूमिका होगी।'' वास्तव में गाँधीजी के नेतृत्व में स्वातंत्र्य-संग्राम में महिलाओं ने जो विभिन्न भूमिकाएँ निभाई थी, उस संदर्भ में गाँधी जी ने स्त्री-पुरुष की सैद्धांतिक समानता के संदर्भ में अपने विचार दिए उससे स्त्रियों की राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता बढ़ गई। भारत में महिलाएँ जो राजनीति के क्षेत्र में जाने से संकोच करती थी या समाज का, परिवार का सहयोग नहीं मिलता था, किन्तु संसद में महिला आरक्षण की वजह से राजनीति के क्षेत्र की एक महिला दूसरी महिलाओं को सहयोग करके विस्तृत मानसिकता का परिचय दे पाएँगी। संसद में महिलाओं की संख्या बढ़ेगी तो देश की अन्य महिलाओं के प्रश्नों को संसद में बैठी महिला आसानी से समझ कर समाज की अन्य महिलाओं की समस्याओं का समाधान कर पाएँगी। गाँधी जी का स्वप्न था कि राजनीति में महिलाओं की सहभागिता बढ़े, तो यह स्वप्न भी साकार होगा।

(2) भारत वर्ष विश्वगुरु बनने की दिशा में आगे बढ़ेगा

समग्र विश्व में राजनीति के क्षेत्र में साझेदारी करने वाली महिलाओं की संख्या अब तक बहुत कम हैं। उन्हें घर, परिवार और समाज की जिम्मेदारियाँ इतनी सौंप दी गई हैं कि वह इन सब से नज़र हटाकर राजनीति में अपनी हिस्सेदारी दर्ज नहीं करवा सकती। यहाँ तक कि अमरिका, जर्मनी, फ्रांस, चीन, रशिया जैसे देशों में भी महिला राजनीतिज्ञ बहुत कम रहीं हैं। उस वक्त भी भारत में महिलाएँ राजनीति के क्षेत्र में अन्य देशों की तुलना में बहुत आगे थी। किन्तु अब संसद में महिला आरक्षण देने की वजह से महिलाएँ अब संसद में, लोक सभा, विधान सभा में अपनी बुलंद आवाज़ के साथ अपना और देश की अन्य महिलाओं का प्रतिनिधित्व करेगी। जिससे देश में और समाज में परिवर्तन आएगा। नव चेतना, नव जागृति उत्पन्न होगी और राजनीति के क्षेत्र महिलाओं की संख्या में बढ़ोतरी होगी। महिला मतदाता, राजकीय पक्षो में सभ्य पद प्राप्त करना, पक्षों की बैठक में उपस्थित रहना, राजकीय कार्यकर्ता के रूप में लोगों के साथ संपर्क में रहना, लोक सेवा के कार्यो में सहायता करना, सभा-सम्मेलनों में नेतृत्व करना, चुनाव का प्रसार-प्रचार करना इत्यादि में बढ़ोतरी होने से भारत विश्व में अपनी अलग पहचान बना पाएगा। महिलाएँ आगे बढ़ती हैं, तो समाज और देश अपने आप आगे बढ़ेगा। राजनीति के क्षेत्र में अन्य देशों

की तुलना में आगे बढ़ेंगे। इस तरह महिलाओं के राजनीति के क्षेत्र में आगे बढ़ने से समाज के हर क्षेत्र में स्त्रियों की सहभागिता अपने आप बढ़ जाएगी। जिससे हमारा भारत देश प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा। इसलिए महिला आरक्षण अधिनियम बहुत आवश्यक हैं।

(3) महिलाओं का नेतृत्व बढ़ेगा

सुचेता कृपलानी एक भारतीय स्वतंत्रता सेनानी एवं राजनीतिज्ञ थी। यह भारत की पहली महिला मुख्यमंत्री थी। इसी तरह निर्मला सीतारामन् भारत की वित्तमंत्री थी। सुष्मा स्वराज, लोकसभा स्पीकर सुमित्रा महाजन, वसुंधरा राजे, आनंदीबहन पटेल, प्रतिभा पाटिल, द्रौपदी मुर्मु इत्यादि महिलाओं के नेतृत्व में भारत वर्ष में बहुत ही सराहनीय कार्य हुए हैं। तथा इन्हें देख कर इनसे भारत की अन्य महिलाओं में भी जागृति उत्पन्न हुई हैं। महिला आरक्षण अधिनियम की वजह से अब संसद में उनकी सीटें आरक्षित रहेंगी और जो महिला राजनीति में आगे बढ़ना चाहती हैं, उन्हें पुरुष के समान अधिकार प्राप्त होंगे। कानून बनाने वाली संस्थाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व होगा तो ऐसे कानून बनेंगे जो महिलाओं को उनके जीवन के सभी क्षेत्रों में सुविधा प्राप्त करवाएँगे और यह लैंगिक समानता की दिशा में एक बहुप्रतिक्षित कदम होगा। व्यावसायिक क्षेत्रों में पेटेन्ट करवा कर व्यवसाय में अपना हिस्सा दर्ज करवा सकती हैं। शिक्षा के क्षेत्र में तथा घर के बाहर काम करने के अवसर मिलेंगे। आर्थिक रूप में सुधार आएगा। संविधान द्वारा तय आयुमर्यादा के अनुसार महिलाओं और पुरुषों को समानता के आधार पर ग्राम पंचायत से लेकर संसद तक राजनीति के क्षेत्रों में मतदान और चुनाव प्रक्रिया में हिस्सा लेने के समान अवसर प्राप्त होंगे। बिन राजकीय संगठन अखिल भारतीय नारी परिषद, स्त्रियों की राष्ट्रीय परिषद, भारतीय ग्रामीण महिला संघ, भारतीय स्त्रियों का राष्ट्रीय फेडरेशन और स्त्री शक्ति जागरण जैसे स्त्री संगठनों ने जब स्त्रियों के अधिकारों के रक्षण के लिए दबाव पक्षों की भूमिका निभाई तब सफलता मिली ही हैं। उसी तरह महिलाओं के हक में संसद से आवाज उठेगी, नए विचार महिलाओं के लिए अस्तित्व में आएँगे तो अवश्य बदलाव के मंझर नज़र आएँगे।

(4) लैंगिक समानता का माहौल बढ़ेगाः

महिला आरक्षण अधिनियम की वजह से समाज में लैंगिक समानता को बल मिलेगा। महिलाएँ जागृत होंगी तो समाज अपने आप जागृत हो जाएगा। इस अधिनियम की वजह से महिलाओं को पुरुष की तरह समान वेतन और समान अवसर का अधिकार प्राप्त होगा। गरिमा और शालीनता का अधिकार, दफ्तर और कार्यस्थल पर उत्पीड़न से सुरक्षा प्राप्त होगी। घरेलु हिंसा के खिलाफ़ अपने अधिकार के प्रति और सचेत होकर अपना प्रतिनिधित्व कर पाएगी। मुफ़्त कानूनी सहायता प्राप्त करने में संकोच नहीं करेगी। वर्चुअल शिकायत दर्ज करवा कर अपनी नारी शक्ति का परिचय दे पाएगी। सही मायनों में नारी शक्ति वंदन अधिनियम सार्थक होगा। रुढ़ि और परंपरा से मुक्ती मिलेगी। स्त्रियों के बलात्कार के मामले कम होंगे। शिक्षा में समान अधिकार प्राप्त होंगे। महिलाओं को भी अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर प्राप्त होगा। बड़े-बड़े व्यावसायिक कॉर्स में भी अक्सर देखा गया हैं कि महिलाओं को जिम्मेदारी वाले कार्य अधिकतर नहीं दिए जाते। इसके पीछे पुरुष सत्तात्मक समाज की विचार धाराएँ काम करती हैं। महिलाओं में प्रतिभा होने के बावजूद उनके काम पर भरोसा नहीं किया जाता। उदाहरण के तौर पर देखा जाए तो आज भी मेडिकल के क्षेत्र में सर्जन बनने के लिए महिलाओं को न्यूरोसर्जन और हार्ट स्पेशलिस्ट की सीटें कम ही उपलब्ध करवाई जाती हैं। या फिर कोई बड़ा सा ओपरेशन करना हो, तो भी महिला डॉक्टर के स्थान पर पुरुष डॉक्टर का चुनाव ही किया जाता हैं। कहने का मतलब यह हैं कि आज भी पढ़ी-लिखी महिलाओं के प्रतिनित्व पर हम विश्वास नहीं करते और उन्हें लैंगिक असमानता का भोग बनना पड़ता हैं। जिसकी वजह से उनमें आत्मविश्वास की कमी भी नज़र आने लगती हैं। महिला आरक्षण अधिनियम 2023 की वजह से महिलाओं का आत्मविश्वास बढ़ेगा। हर क्षेत्र में चाहे वह तकनीकी का क्षेत्र हो या चाहे चिकित्सकीय क्षेत्र, अपने काम पर कॉपी राईट और पेटेंट करवाना हो या सेना का क्षेत्र हो, वह लैंगिक समानता का परिचय दे रही हैं।

(5) महिला सशक्तिकरण को बढ़वा मिलेगा

भारत में महिलाएँ देश की आबादी का आधा हिस्सा हैं। महिलाएँ कभी शारीरिक शोषण तो कभी मानसिक शोषण का

शिकार होती रहती हैं। कुछ समय पूर्व ही कलकत्ता में मेडिकल कॉलेज में पी. जी. की रेजिडेंट महिला डॉक्टर के उपर बलात्कार का केश सामने आया हैं। इसके अलावा भँवरीदेवी का केश और निर्भया कांड का मामला बहुत दुःखद रहा हैं। महिलाओं को अपनी रक्षा के लिए खुद आगे आना पड़ेगा। इसके लिए महिला को समाजिक, शैक्षिक, राजनीतिक और आर्थिक रूप से अपने पैरों पर खड़ा रहना सीखना होगा, तदुपरांत वह स्वयं की रक्षा कर पाए इसलिए उसे कराटे क्लास करके शारीरिक और मानसिक रूप से सक्षम बनकर महिला सशक्तिकरण का उदाहरण पेश करना पडेगा। संसद में महिला आरक्षण से सभी दृष्टियों से महिला सशक्त बनेगी। महिलाओं को सशक्त बनाने में यह अधिनियम महत्वपूर्ण कड़ी बन सकता हैं।

(6) महिलाएँ आत्मनिर्भर बनेगी

राजनीति में उच्च सत्ता पर बैठने वाली महिला अपने निर्णय स्वयं लेती हैं और उससे अन्य महिलाएँ भी प्रेरित होकर स्वयं निर्णय लेने का फैसला लेती हैं। समाज और राजनीति में उचित स्थान प्राप्त कर महिलाएँ आत्मनिर्भर बन कर समाज में अपना एक प्रतिष्ठित स्थान बना सकती हैं। अमेरिका में राष्ट्रपति का पद प्राप्त करनेवाली हिलेरी क्लिंटन का कहना हैं कि ''जब तक महिलाओं की आवाज़ नहीं सुनी जाएगी तब तक सच्चा लोकतंत्र नहीं आ सकता। जब तक महिलाओं को अवसर नहीं दिया जाता, तब तक सच्चा लोकतंत्र नहीं हो सकता।'' इस तरह महिलाएँ जब तक आत्मनिर्भर नहीं बनेगी तब तक सही मायनों में हम विकास के प्रगति पथ पर अग्रसर नहीं हो सकते। इस तरह यह महिला आरक्षण अधिनियम 2023 का लागू होना महिलाओं के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता हैं कि महिला आरक्षण अधिनियम 2023 संसद में महिलाओं की साझेदारी को लेकर बहुत ही उचित निर्णय हैं।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

समाज में महिलाओं की स्वस्थ्य, शिक्षा एवं सशक्तिकरण का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. सुनीता सिंह
असि. प्रो. समाजशास्त्र विभाग
अग्रसेन कन्या पी.जी. कालेज,
बुलानाला, वाराणसी

सारांश

किसी भी समाज की उन्नति व प्रगति उसके मानवीय संसाधनों स्त्रियों व पुरुषों के बीच समानता पर निर्भर करती है ये ही सामाजिक संरचना के आधार स्तम्भ होते हैं। पूर्ण एवं निरन्तर विकास के लिए आवश्यक है कि दोनों आधार स्तम्भ अर्थात् स्त्री व पुरुष मिलकर समाज निर्माण में योगदान दें। परन्तु अल्प विकसित व विकासशील देशों के सन्दर्भ में यह धारणा कोरी कल्पना ही साबित होती है। यद्यपि हमारे देश में महिलाओं को देवियों की मान्यता दी गयी है। लेकिन कालान्तर में उनके कार्य योगदान और उनकी प्रतिष्ठा को समाज की मुख्य धारा से दूर कर दिया गया। सिंधु सभ्यता में स्त्री रूपों को ही अधिक पूजा जाता था। वर्तमान युग में चाहे पुरूष हो या महिला प्रत्येक के लिए शिक्षा बहुत जरूरी है। आधुनिक युग विज्ञान और सोशल मीडिया का युग है जिसमें अशिक्षित होना अभिशाप के समान है। महिला शिक्षा एवं सशक्तिकरण, सामाजिक विकास की प्रमुख प्रकिया है। जो महिलाओं को सामाजिक आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विकास में भाग लेने में सक्षम बनाती है। महिलाओं को वास्तविक अर्थ में सशक्त बनाने में शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए महिला शिक्षा आवश्यक है जिससे उनकी स्थिति में सुधार हो सके, ताकि वे बदलाव के लिए उत्प्रेरक का कार्य कर सकें। स्वस्थ जीवन शैली और पौष्टिक भोजन का अधिक सेवन मनुष्य को जीवन भर अच्छा स्वास्थ्य प्रदान कर सकता है। भारत सरकार महिलाओं के स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार के लिए कई प्रयास कर रही है, गरीबी, लिंग भेदभाव और जनसंख्या में निरक्षरता उपयुक्त हस्तक्षेपों के कार्यान्वयन से जुड़ी प्रमुख समस्याएं हैं। जो भारत में महिलाओं की स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं को प्रभावित करते है।

मुख्य शब्द :- समाज, महिला, शिक्षा, साक्षरता, स्वास्थ्य, सशक्तिकरण, योजनाएं।

प्रस्तावना

महिलाओं का स्वास्थ्य जैविक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों से प्रभावित होता है। गहन अध्ययनों से पता चला है कि पूरे जीवन चक्र में महिलाएं पुरुषों की तुलना में अधिक बीमार और विकलांग होती हैं। यह सुझाव दिया गया है कि महिलाएं विशेष रूप से कमजोर होती हैं, जहां बुनियादी मातृत्व देखभाल उपलब्ध नहीं होती है। जैसे जैविक कारकों की भागीदारी के कारण, महिलाओं को एचआईवी सहित यौन संचारित संक्रमण (एसटीआई) होने का पुरुषों की तुलना में अधिक

खतरा होता हैं। इसके अलावा कम उम्र में शादी और बच्चे का जन्म सामाजिक आर्थिक स्थिति में प्रचलित व्यापक भिन्नता के लिए जिम्मेदार हो सकता है। स्वास्थ्य विभाग के माध्यम से पोषण और स्वास्थ्य शिक्षा को मजबूत किया जाना चाहिए। महिलाओं के स्वास्थ्य एवं चिंता में सुधार के लिए एक मजबूत और निरंतर सरकारी प्रतिबद्धता की आवश्यकता है। समाज में शिक्षा का स्तर और साक्षरता दर उस समाज के विकास के संकेतक है। शिक्षा मनुष्यों को सशक्त बनाने का एक साधन है, विशेष रूप से महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण साधनों में से एक है। महिलाओं का सशक्तिकरण समृद्धि के लिए शिक्षा का होना अनिवार्य है। भारत में स्वतंत्रता के बाद सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनीतिक तथा राष्ट्र के विकास के लिए अपनायी गई रणनीति के कारण महिलाओं की स्थिति में तेजी से सुधार हुआ है। शिक्षा ही वह उपकरण है जिससे समाज में महिला अपनी सशक्त उपयोगी और समान भूमिका की अनुभूति करा सकती है। शिक्षा विवेकपूर्ण दृष्टिकोण के विकास तथा किसी प्रकार के कौशल की प्राप्ति के लिए पूर्णतया आवश्यक है। महिलाओं में स्वयं निर्णय लेने की क्षमता सशक्तिकरण का महत्वपूर्ण पहलू है। शिक्षा का इन पहलूओं में सार्थक और सकारात्मक सहसम्बन्ध है। समाज में महिलाओं के सुखद जीवन का मजबूत आधारशिला तैयार करने में शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है। समाज में शिक्षा प्रणाली को आज के तेजी से बदलते समय में नवाचार के माध्यम से सुधारना बेहद जरूरी हो गया है। केवल पाठ्यक्रम को पढ़ाना ही शिक्षा का उद्देश्य नहीं होना चाहिए, बल्कि विद्यार्थियों में रचनात्मकता, समस्या समाधान की क्षमता और स्वतंत्र सोच को विकसित करना भी शामिल होना चाहिए। नवीनतम तकनीकों और पद्धतियों को शिक्षा प्रणाली में शामिल करना आवश्यक है। जिससे एक मजबूत, साक्षर और उन्नत समाज की नींव रखी जा सके। महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य है महलिाओं की छिपी हुई उन गुणों, शक्तियों को विकसित करना है जिनको व्यवहार में लाकर वे अपने विकास की ओर स्वयं कदम बढ़ा सके, यह कार्य केवल शिक्षा के द्वारा ही सम्भव है।

अध्ययन का उद्देश्य

- महिला शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सशक्तिकरण के महत्व का विश्लेषण करना।
- महिला शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता का विश्लेषण करना।
- महिला शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सशक्तिकरण के मार्ग में आ रही बाधाओं का विश्लेषण करना।
- महिलाओं की परिस्थितियों में बदलाव पर शिक्षा के प्रभाव का विश्लेषण करना।
- महिला सशक्तिकरण के लाभ के लिए उचित सरकारी योजनाएं का विश्लेषण करना।

अध्ययन विधि

इस शोध का अध्ययन विधि मूल रूप से वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। जिसमें महिला शिक्षा, स्वास्थ्य और सशक्तिकरण का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। वर्णनात्मक शोध विधि का उद्देश्य समस्या के संबंध में पूर्ण, यथार्थ एवं विस्तृत तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना है। अध्ययन की आवश्यकता के अनुसार उपयोग किया गया डेटा विशुद्ध रूप से द्वितीयक ऑकड़ों पर आधारित एवं विश्वसनीय स्रोत राष्ट्रीय स्तर की शोध, पत्र, पत्रिकाओं, लेखों व अन्य से लिया गया है।

समाज में महिला शिक्षा का इतिहास

उल्लेखनीय है कि वैदिक काल में लगभग 3000 से अधिक वर्ष पूर्व समाज में महिलाओं को एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। और उन्हें पुरुषों के समान समाज का एक महत्वपूर्ण अंग समझा जाता था। वैदिक काल के स्त्री शक्ति सिद्धान्त के अनुसार- महिलाओं का पुजन देवी के रूप में शुरू हुई जैसे शिक्षा की देवी सरस्वती। वैदिक साहित्य में अध्ययनरत् महिलाओं का उल्लेख किया गया है। पश्चिम भारत में ज्योतिबा फुले और उनकी पत्नी सावित्री बाई फुले ने महिला शिक्षा के लिए कार्य

किये और वर्ष 1848 में पुणे में गर्ल्स स्कूल की शुरूआत करने वाले अग्रणी थे। महिलाओं की शिक्षा एवं रोजगार की आवश्यकता को 1854 में ईस्ट इंडिया कम्पनी के कार्यक्रम वुड डिस्पैच ने स्वीकार किया। गौरतलब है कि महिलाओं की समग्र साक्षरता दर वर्ष 1882 में 0.2 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 1947 में 6 प्रतिशत हो गई। इस समय गाँधी जी व अम्बेडकर जी द्वारा महिलाओं को समाज की मुख्य धारा में लाने का प्रयास सराहनीय रूप से देखा जाता है।

समाज मे महिला शिक्षा की वर्तमान स्थिति

वर्तमान में महिला शिक्षा एक महत्वपूर्ण विषय है। राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक विकास में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समाज के विकास के लिए आवश्यक है कि पुरूष के साथ-साथ महिलाओं को भी शिक्षा सहित अन्य सभी क्षेत्रों में भी समान अवसर प्रदान किये जायें जिससे समाज की प्रगति सम्भव हो सके। महिला शिक्षा एक ''महिला और शिक्षा'' को जोड़ने वाली अवधारणा है। इसका एक रूप शिक्षा में महिलाओं को पुरूषों की तरह शामिल करने से संबंधित है, दूसरा यह महिलाओं द्वारा बनायी गयी विशेष शिक्षा पद्यति को संदर्भित करता है। महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने से समुदाय, राष्ट्र में बदलाव आता है। शिक्षित महिलाओं में स्वस्थ एवं संतुष्ट जीवन जीने की संभावना अधिक होती है।

महिला शिक्षा की आवश्यकता

महिलाओं की भूमिका को किसी भी राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक विकास में नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। महिलाओं को शिक्षित होने से बच्चों के पालन-पोषण और आहार को भी मजबूत आधार मिलता है। महिला शिक्षा किसी भी देश के विकास के लिए बहुत जरूरी है। जिसके लिए महिलाओं और लड़कियों को उचित संसाधन उपलब्ध कराना आवश्यक है। शिक्षित महिलाएं अपने परिवार के विकास के साथ ही देश के विकास में अहम भूमिका निभाती है। महिला की शिक्षा समाज में असमानता को दूर करने के साथ ही अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाती है।

समाज में महिला शिक्षा का स्रोत

राधाकृष्णन आयोग (1948-49)

- स्त्रियों के लिये शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं को बढ़ाया जाये।
- पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए, जो बालिकाओं को समाज में उच्च स्थान व सम्मान दिला सके।
- स्त्रियों के लिए व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति (1958)

- सरकार को प्रत्येक राज्य में स्त्री शिक्षा की प्रगति के लिये सुविधा सम्पन्न विद्यालयों की व्यवस्था करनी चाहिये।
- गांवों में स्त्री शिक्षा के प्रसार के लिये विशेष प्रयास करना चाहिए।
- स्त्री शिक्षा के प्रसार के लिये राज्यों में लड़कियों तथा महिलाओं की शिक्षा की राज्य परिषदें गठित की जानी चाहिए।

कोठारी आयोग (1964-66)

- बालिकाओं के लिये अल्पकालीन तथा व्यवसायिक शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।
- बालिकाओं की अनिवार्य शिक्षा के लिये और अधिक प्रयत्न किये जाने चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1988)

- स्त्रियों की प्राथमिक शिक्षा के रास्ते में आने वाली समस्याओं का समाधान करने की उचित व्यवस्था करनी चाहिए।
- स्त्रियों की प्रगति के लिये विभिन्न कला कौशलों से सम्पन्न संस्थानों को खोलना चाहिए। विभिन्न पाठ्यक्रमों में स्त्री शिक्षा के महत्व व अध्ययन हेतु पाठ्य सामग्री को सम्मिलित करना चाहिए।

प्रो. राममूर्ति समिति (1990)

- विद्यालयों में बाल विकास, पोषण तथा स्वास्थ्य का समावेश करना चाहिए।
- स्त्रियों की शिक्षा के लिये अलग से धन की व्यवस्था करनी चाहिए।
- छात्र तथा छात्राओं के लिये छात्रवृतियों तथा मुफ्त पाठ्य पुस्तकों का वितरण करना चाहिए।
- विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में अधिक से अधिक अध्यापिकाओं की नियुक्ति करनी चाहिए।

समाज में महिलाओं का स्वास्थ्य और पोषण

भारतीय महिलाओं के स्वास्थ्य और पोषण की चर्चा करे तो यह सुझाव दिया गया है कि भारत में प्रचलित सांस्कृतिक और पारंपरिक प्रथाओं के कारण भारतीय महिलाओं का स्वास्थ्य और पोषण की स्थिति बदतर होती जा रही है। भारतीय महिलाएं आमतौर पर खराब पोषण की चपेट में आती हैं। गर्भावस्था के दौरान स्वास्थ्य देखभाल के बारे में अनभिज्ञता के परिणामस्वरूप मां और बच्चे दोनों के लिए नकारात्मक परिणाम होते हैं। सही और उचित शिक्षा माताओं का उनके पोषण स्तर और उनके स्वास्थ्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालेगा। स्वास्थ्य गर्भधारण और सुरक्षित प्रसव सुनिश्चित करने के लिए स्वास्थ्य देखभाल के महत्व के बारे में महिलाओं को शिक्षित करने के लिए निश्चित कदम उठाए जाने चाहिए।

कुपोषण

एक गंभीर स्वास्थ्य चिंता भारतीय माताओं और उनके बच्चों के अस्तित्व के लिए खतरा है। इस प्रकार पर्याप्त पोषण किसी भी व्यक्ति के स्वस्थ स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए एक आवश्यक आधारशिला है। विशेष रूप से महिलाओं के लिए कुपोषित महिलाओं से पैदा होने वाले बच्चे को कई जटिलताओं का सामना करना पड़ता है। दुनिया भर में महिलाओं में दो सबसे आम पोषण संबंधी कमियां हैं। आयरन की कमी और एनीमिया। लगभग 80ः भारतीय गर्भवती महिलाएं आयरन की कमी से होने वाले एनीमिया से पीड़ित हैं। पोषक तत्वों की कमी, जिसमें आयरन और आयोडीन की कमी और आवश्यक पोषक तत्वों का कम सेवन शामिल है। लड़कियों के बचपन के दौरान पोषण के कम सेवन से विकास अवरुद्ध हो सकता है, जो बदले में बच्चे के जन्म के दौरान और बाद में जटिलताओं के उच्च जोखिम की ओर ले जाता है। मानसिक विकार शारीरिक विकास में बाधा डालते हैं और शारीरिक रूप से नुकसान पहुंचाते हैं। मातृ कुपोषण अक्सर उनके प्रजनन चक्र के प्रकार के कारण होता है और वे घर के काम पर अधिक समय व्यतीत करती हैं। महिलाओं में कुपोषण की सर्वाधिक घटनाएं लगभग प्रत्येक क्षेत्र में देखी जा रही है।

समाज में महिला सशक्तिकरण

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार ने महिला समाज के विकास पर ध्यान दिया। जिससे कुछ प्रश्न उभर कर आते है, क्या वास्तव में हम महिलाओं को सशक्त करना चाहते हैं क्या वास्तव में इससे पहले महिला उद्धार के लिए कोई नियम कानून नहीं बनाये गये थे महिलायें किस तरह संवैधानिक जिम्मेदारी निभायेगीं और अपना कर्तव्यपालन करेगीं वे किस प्रकार से दूसरों के लिए स्वतंत्र एवं निष्पक्ष निर्णय ले सकेंगी जबकि वे अभी अनेक प्रकार से पुरुषों पर ही निर्भर रहती हैं अन्य सामाजिक संस्थायें जैसे पुलिस व न्यायालय में अपने ऊपर लगे भ्रष्टाचार के आरोपों पर अपना पक्ष किस प्रकार रखेंगी जबकि कई बार ऐसे आरोप उनकी अपनी गलती से नहीं बल्कि दूसरों की साजिश व गलती की वजह से ही लगेंगे।

समाज में महिला सशक्तीकरण के मानक

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के प्रवेश व सहभागिता को समानता तथा नारी सशक्तीकरण सम्बन्धी अनिवार्यता के परिप्रेक्ष्य में भी देखना आवश्यक है। वस्तुतः समानता का सामान्य अर्थ. सामाजिक निर्णय में बिना किसी भेदभाव के न

केवल सभी व्यक्तियों की सहभागिता बल्कि समान अवसरों की उपलब्धता भी सुनिश्चित करना। इस रूप में शिक्षा स्वास्थ्य आदि जैसे जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं तथा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन में बिना किसी विभेद के अवसरों की समान उपलब्धता ही समानता है। वास्तव में लैंगिक विषमताओं को प्रोत्साहित करने वाली परम्परागत संस्थाओं व संरचनाओं में होने वाला ऐसा परिवर्तन है जिससे कि महिलाओं की समानता सुनिश्चित हो सके, महिला सशक्तीकरण का आधार माना गया है। महिला सशक्तीकरण के कुछ परिभाषित मानकों को अधोलिखित रूपों में देखा जा सकता है। भारत व भारतीय समाज भूमण्डलीकरणः उदारीकरण के दौर में लगभग 20 वर्षों की यात्रा कर चुका है। ज्यादातर महिला जनप्रतिनिधियों के पति ही उनका काम संभालते हैं। इस कारण उनके लिए सरपंच पति या प्रधान पति जैसे शब्द प्रयोग में लाए जाते हैं। उनका कार्य चुनाव लड़ने की प्रक्रिया से ही शुरू हो जाता है।

समाज में महिला सशक्तिकरण के लिए सरकारी योजनाएं

वर्तमान में भारत सरकार ने महिला सशक्तिकरण के लिए अनेक योजनाओं को लागू किया है। ये योजनाएं भारत सरकार के बिभिन्न विभागों एवं मंत्रालयों द्वारा संचालित किये जाते हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं-एस बी आई की श्री सखी योजना, महिला समिति योजना, कामकाजी महिला मंच, उज्जवला 2007, महिला समृद्धि योजना, कामकाजी महिलाओं के लिए छात्रावास, धन लक्ष्मी 2008, बेटी पढ़ाओ बेटी बचाओ योजना, मिशन शक्ति, स्वावलंबन, सक्षम, सबला नवा बिहार योजना, सुकन्या समृद्धि योजना, महिला सम्मान बचत पत्र योजना, महिला सशक्तिकरण योजना इत्यादि अनेक योजनाएं महिला सशक्तिकरण के लिए है। भारत सरकार ने 2001 को महिलाओं के सशक्तिकरण (स्वशक्ति) वर्ष के रूप में घोषित किया है। इसके अलावा महिला सशक्तिकरण के लिए अधिकार भी दिये जिसमें समान वेतन का अधिकार, कार्य - स्थल में उत्पीड़न के खिलाफ कानून, सम्पति पर अधिकार, गरिमा और शालिनता के लिए अधिकार इत्यादि अनेक अधिकार है। भारतीय संबिधान ने अपने विभिन्न अनुच्छेदों के माध्यम से महिलाओं के लिए समान अधिकारों के द्वारा महिलाओं में शिक्षा और सशक्तिकरण को बढ़ावा देने का प्रावधान दिया गया।

सुझाव

समाज में महिला शिक्षा के लाभों को बढ़ाने की आवश्यकता है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपने बच्चों को यह शिक्षा देनी चाहिए कि लड़के और लड़कियां समान है और उनसे समान रूप से व्यवहार करना चाहिए। महिलाओं को बेहतरीन निर्णय लेने में शिक्षा बहुत ही महत्वपूर्ण है इसलिए महिला शिक्षा आवश्यक है, जिससे महिलाएं सशक्त हो सकें और देश के प्रत्येक क्षेत्र में अपना योगदान दे सकें। महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक शक्ति में वृद्धि से है। महिलाओं को विकास की मुख्य धाराओं में शामिल करना ही सशक्तिकरण का सबसे अच्छा तरीका है। सरकार एवं समाज का भी यह प्रयास होना चाहिए की लड़कियों एवं महिलाओं को इतना सशक्त बनाया जाय कि वे स्वयं के साथ समाज को भी उचित दिशा और दशा प्रदान कर सकें। महिला सशक्तिकरण तभी सम्भव होगा जब महिलाएं साथ दें और सशक्त बनानें में एक दूसरे की मदद करें।

निष्कर्ष

विभिन्न अध्ययन से हमें यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि किसी भी समाज अथवा देश के विकास के लिए महिला शिक्षा और स्वास्थ्य बहुत आवश्यक है। महिला शिक्षा, स्वास्थ्य और सशक्तिकरण के लिए महिलाओं को उचित शिक्षा मुहैया कराना जरूरी हैं। वे अपने परिवार के विकास में अहम भूमिका निभाती है। वर्तमान समय में हमारे देश की महिलाओं की स्थिति में काफी सुधार हुआ है। उनकी पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक स्थिति में परिवर्तन आया है। महिलाओं की स्थिति सुधारने और उनका प्रगतिशील विकास करने के लिए भारत सरकार के अनेक योजनाओं के लाभ प्राप्ति के साथ ही समाज

के प्रत्येक व्यक्ति को सोचना होगा और उसके लिए ठोस कदम उठाने होंगे जिससे वे शिक्षित और सशक्त बन सकें। महिलाओं को शिक्षित और सशक्त बनाने में समाज की भूमिका महत्वपूर्ण है। अच्छा स्वास्थ्य एक प्रमुख मानदंड है, जो मानव कल्याण और आर्थिक विकास में योगदान देता है। महिलाओं के लिए पर्याप्त पोषण उन्हें समाज के उत्पादक सदस्यों के रूप में सेवा करने में मदद करेगा ताकि परिणामी स्वास्थ्य पीढ़ियों का विकास हो सके। सरकार को साक्षरता दर और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में सुधार के साथ-साथ महिलाओं के लिए पर्याप्त रोजगार के अवसर प्रदान करने के लिए आवश्यक और अनिवार्य नीतियां अपनानी चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रामजी जी, डेनियल बी, महिला और एचआईवी उप-सहारा अफ्रीका में एड्स रेस 2013
2. ओनारहाइम के एच, इवर्सन जेएच, ब्लूम डीई, महिलाओं के स्वास्थ्य में निवेश के आर्थिक लाभ, एक व्यवस्थित समीक्षा 2016
3. धर्मलिंगम ए. नवनेथन के, कृष्णकुमार सीएस, भारत में माताओं की पोषण स्थिति और जन्म के समय कम वजन मातृ बाल स्वास्थ्य 2010 पू.सं. 290
4. मल्लिकार्जुन राव के. बालकृष्ण एन, अर्लप्पा एन, एट अल. समाज में महिलाओं के आहार और पोषण की स्थिति जे हम इकोल 2010 पृ.सं. 165-170
5. मकोल नीलम, संदीप शर्मा सामाजिक विकास में शिक्षित महिलाओं का योगदान, कुरूक्षेत्र, सितम्बर 2006।
6. अल्तेकर, डॉ. अनन्त सदाशिव प्राचीन भारतीय शिक्षण, नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी 1986 पृष्ठ 155
7. लवानिया, एम. एम. 1989, समाजशास्त्रीय अनुसंधान कातर्क एवं विधियों, रिसर्च पब्लिकेशन जयपुर।
8. कनिटकर मुकुल भारत में महिला शिक्षा, समाज व सरकार की भूमिका, योजना सितम्बर 2016।
9. शर्मा डॉ. शीतल भारत में महिला सशक्तिकरण एवं योजनाएं 2017
10. स्त्री सशक्तीकरण अतीत से अब तक, इन्द्र कुमारी सिन्हा, सितम्बर 2003, योजना मासिक पत्रिका।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

समकालीन कविता के परिपेक्ष्य में यथार्थवादी-चेतना

शाइस्ता सना
शोधार्थी, हिंदी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
shaistaamu272152@gmail.com

शोध सार- किसी भी साहित्य का जन्म उस काल के समाज के आवश्यकता अनुरूप होता है। किसी साहित्य या काव्य धारा का उदय अनायास या आकस्मिक घटना नहीं है बल्कि वह काव्य सृजन में धीरे-धीरे प्रसूत होता रहा है। इसमें प्रतिक्रिया और परिवर्तन दोनों साथ-साथ चलते रहते है, जब किसी वस्तु के प्रति-प्रतिक्रिया होती है तो उसमें परिवर्तन का आना स्वाभाविक हो जाता है। इस प्रकार हिंदी साहित्य में जब एक युग या काल के बाद दूसरे युग का आगमन हुआ तो प्रतिक्रिया स्वरूप परिवर्तन स्वयं ही होते चले गए। समस्त कलाओं के केंद्र में मानव जीवन की कल्पना की जाती है और साहित्य में भी यही धारणा प्रचलित है। समाज में मानव जीवन निहित होता है, इसलिए बिना समाज के मानव जीवन की कल्पना करना लगभग असंभव है। साहित्य सामाजिक यथार्थ और चेतना का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। वैसे तो साहित्य समाज के हर पहलू को लगभग छूता रहता है लेकिन सबसे ज्यादा प्रभावी वो समाज से होता है शायद इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। साहित्य को मानव जीवन के यथार्थ का दस्तावेज़ माना जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। समकालीन कविता साहित्यिक विधा के रूप में मानव के करीब होने से समाज के यथार्थ को बहुत अच्छी तरह से प्रस्तुत करती है।

बीज शब्द- आधुनिक कविता, समकालीन कविता, यथार्थवादी-चेतना, सामाजिक, राजनीतिक विषमता।

मूल आलेख- आधुनिक हिंदी कविता में समकालीन कविता का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि यह अपने युगीन परिवेश में मानव को नए ढंग से प्रस्तुत करने वाली नई काव्यधारा के रूप में वर्णित है। इसकी मूल चेतना मानतावादी है, मनुष्य को प्रमाण और प्रतिमान मान कर सतत् प्रक्रिया से अग्रसर होती हुई मानव को 'लघु मानव' के रूप में वर्णित करते हुए आगे बढ़ती है। कविता ने मानव के उस सामाजिक, राजनीतिक स्तर को उठाया जिसमें जिंदगी की कड़वाहट और उसकी विषम परिस्थितियाँ थी, लेकिन कवि और कविता की अनुभूति ने अपने काव्य कला से उसे सहज बना दिया। आधुनिक हिंदी कविता के विकास में वर्तमान काव्य आंदोलन के रूप में वर्णित है– समकालीन कविता। रघुवीर सहाय ने समकालीनता को कुछ इस तरह से परिभाषित किया- "मनुष्य की प्रतिभा और सामर्थ्य की अनन्त सम्भावनाओं का द्वार अपने अनुभव के लिए खुला रखकर सप्रयत्न उसके वर्तमान को बदलने में जो संलग्न होता है वही समकालीनता का धर्म-निर्वाह करता है।"[1]

समकालीन हिन्दी कविता समकालीन परिवेश की विसंगतियों और विडम्बनायों एक ऐसा दस्तावेज है जिसमें सामाजिक, राजनैतिक, स्वार्थ शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष आदि निहित है। इसमें एक ओर आम आदमी का विद्रोह है, तो दूसरी ओर उनकी पीड़ा, तनाव, विवशता, क्रोध आदि का अंकन किया गया है। समकालीन कविता का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। बहुमुखी प्रतिभा के कवि उसके पक्षधर रहे है। यह कविता जीवन और समाज के यथार्थ स्वरूप को व्यंजित करने में विश्वास रखती है। आज

की विसंगतियों का जैसा का वैसा वर्णन करना उसका लक्ष्य है। इन कवियों में मुक्तिबोध से लेकर कुंवर नारायण, रघुवीर सहाय, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, धूमिल, दुष्यंत कुमार, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, लीलाधर जगूड़ी, चंद्रकांत देवताले, वेणु गोपाल, मंगलेश डबराल आदि अनेक कवियों ने आम आदमी या यूं कहा जाए हाशिये पर पड़े हुए वर्ग के दुख-पीड़ा को महसूस करते हुए कविता लिखी।

धूमिल को सामाजिक और राजनैतिक चेतना का कवि माना जाता है, जो 'पटकथा' और 'संसद से सड़क तक' कविताओं के माध्यम से देखा जा सकता है। 'संसद से सड़क' तक कविता के माध्यम से धूमिल कहते हैं–

"जब कि मैं जानता हूँ की 'इनकार से भरी एक चीख'
और 'एक समझदार चुप' दोनों का मतलब एक हैं।
भविष्य गढ़ने में 'चुप' और 'चीख' अपनी-अपनी जगह एक ही किस्म से
अपना-अपना फर्ज अदा करती है।"[2]

धूमिल एक ऐसे कवि हैं जिनकी कविता का संबंध सामाजिक और राजनैतिक, दुर्दम एवं कठोर जीवंत सत्य के साक्षात्कार से है। इनकी कविताओं में बस समस्या को ही नहीं उठाया गया है बल्कि उनके मूल कारणों को खोजने का अथक प्रयास किया गया है। इन्होंने सारी समस्याएँ को अलग-अलग नहीं देखा, बल्कि उसे आम आदमी के जीवन के परिदृश्य में रखकर देखा है।

धूमिल के तीनों काव्य संग्रहों के अंतर्गत परिवेश और आम-आदमी का जन-जीवन एक दूसरे से आपस में जुड़े हुए हैं जिसमें यथार्थ के चित्रण कहीं बिम्ब के रूप में, कहीं व्यंग्य के रूप में, कहीं वक्तव्य के रूप में मिलते हैं। इनकी कविताओं में आज की वर्तमान व्यवस्था के दबाव के विरुद्ध आवाज़ उठाने और लड़ने का संकल्प है। इसमें में धूमिल अपनी जिन्दगी के संघर्ष को लेकर आम-आदमी के जीवन संघर्ष को अपनी कविता का आधार बनाते हैं।

"बाबू
सच कहूँ मेरी निगाह में
न कोई छोटा है
न कोई बड़ा है
मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने मरम्मत के लिए खड़ा है।"[3]

इस प्रकार धूमिल ने अपनी यथार्थ दृष्टि से वर्तमान राजनीति की विसंगतियों और विडम्बनाओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है और आम-आदमी के जीवन की रिक्तता और खोखलेपन का यथार्थ चित्रण अपनी कविताओं के माध्यम से किया है।

आम-आदमी का संघर्ष, पीड़ा और यातनाओं से उत्पन्न आक्रोश, वेदना, विद्रोह और विक्षोभ के स्वर समकालीन कविता का यथार्थ बोध है। धर्मवीर भारती की 'कविता और मौत' कीर्ति चौधरी की 'वक्त' मुक्तिबोध की 'अंधेरे में', 'मुझे याद आते हैं', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की 'पोस्टर और आदमी' 'बीसवीं सदी के कवि' तथा 'सौंदर्य बोध' इत्यादि कविताओं में जीवन के यथार्थ स्थितियों और सामाजिक विषमताओं, विकृतियों, असमर्थताओं को उजागर करती है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अपनी कविताएं 'भेड़िया- 1', 'भेड़िया 2' में सामाजिक यथार्थ के साथ-साथ अमानवीयता और तानाशाही को मुख्यतः अभिव्यक्ति देते हैं

"मैंने शहर को देखा और मैं मुस्कराया
वहाँ कोई कैसे रह सकता है
ये जानने मैं गया
और वापस न आया।"[4]

इस प्रकार समकालीन कविता समाज की जटिलताओं को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करके समाज को एक नई दृष्टिकोण

प्रदान की। यह वह समय था जिसने समाज को अपनी जंजीरों में जकड़ रखा था। समाज पूरी तरह से मानसिक व्यथा में उलझा हुआ था। धीर-धीरे इस काल के कवियों की कविताओं में बदलाव देखा जा सकता है। इस काल के कवियों ने अपनी कविताओं का आधार उस लोक और परिवेश पर रखा जिसमें एक सामान्य मनुष्य अपना जीवन यापन करता है, और समाज में पनप रही छोटी से छोटी वस्तु को अपनी कविता के केंद्र में रखा। उन्होंने अपने कविता में समाज के प्रत्येक पक्ष का वर्णन बड़े ही सजीवता पूर्वक किया, छोटी से छोटी समस्या को उकेरा, जिसपर उनकी दृष्टि गई। अब चाहे वह धार्मिक हो, सामाजिक हो या फिर आर्थिक, सबका आंकलन बड़ी ही गंभीरता पूर्वक किया है। 'नागार्जुन' ने अपनी एक छोटी सी कविता के माध्यम से बहुत कुछ कह दिया है–

"कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।"[5]

समकालीन काव्यधारा के कविगण यथार्थ रूप में अपनी मूल्यदृष्टि को अभिव्यंजित करते हैं, क्योंकि इस काल की कविता का रचनामर्म अनुभव, संवेदना, विचार, सामाजिक प्रथा, सौन्दर्य बोध, अन्तर्विरोध की उपज है। इस प्रकार ये भी कह सकते हैं कि समकालीन कविता में मानवीय विसंगतियों का सीधा खुलासा है। समकालीन कविता समाज, राजनीति, सभ्यता और संस्कृति पर दिखाई पड़ने वाले वाह्य यथार्थ या दिखावे को भ्रमित नहीं करती, बल्कि वर्तमान व्यवस्था और उच्चवर्ग के अंदर पनप रहे अमानवीय वीभत्स, स्वार्थपरक, घृणित, दूषित, भ्रष्टचरित्र का पर्दाफाश करती है।

इस समय के कवियों ने समाज की तत्कालीन समस्याओं और उससे जूझते हुए आम जनमानस को अपनी कविता का आधार बनाया। संघर्ष करता आम जनमानस, समस्याओं से पीड़ित मध्यम वर्ग, मानव जीवन के टूटते परिवेश, कमज़ोर पड़ते पारम्परिक संबंध आदि को अपनी कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की :

"अब तक क्या किया,
जीवन क्या जिया, ज्यादा लिया और दिया बहुत कम
मर गया देश और जीवित रह गए तुम...."[6]

समकालीन कविता मानव के लघुता को स्वीकार करके उसके मूल्य को विस्तारित होने की पूर्ण प्रेरणा देती है। इसमें महानता का स्थान लघु ने ले लिया। इस काल का कवि समाज की करुणा को यथार्थ के धरातल पर जितनी अनुभूति के साथ प्रस्तुत करता है, उनकी वाणी में उतनी ही ईमानदारी की आभा परिलक्षित होती है। इसमें मानव जीवन की विसंगतियों पर सीधा प्रहार किया गया है जिसे समकालीन कविता जीवन के बदलते हुए मूल्यों को मानवीय स्तर पर रेखांकित करती है। समकालीन कविता ने अपने समय के सम्पूर्ण परिवेश को एक साथ प्रस्तुत करने का अथक प्रयास किया है। रोजमर्रा में होने वाले घटनाओं को सामान्य जीवन से लेकर उसे विश्व पटल पर रेखांकित करने का प्रयास किया। ये किसी भी मतवाद का विश्लेषण न करते हुए उसके सामाजिक मूल्यों की बात करती है जो आम इंसान की सामान्य जीवन स्थिति से जुड़ी होती है जब ये बेचौन होती हैं तो व्यवस्था से सवाल करती है।

रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं में राजनीतिक प्रदूषण से उत्पन्न आम आदमी की जिंदगी में जो भयावह, त्रासद और पीड़ाजन्य स्थितियाँ उत्पन्न हुई है, उनको यथार्थीकृत करते हुए शोषक वर्ग के दुष्कृत्यों के, जो अपनी सत्ता को सतत् सुरक्षित रखना चाहते हैं, उनके काले कारनामों का यथार्थ चित्रण किया है। जीवन यथार्थ का जो रचना संसार उन्होंने प्रस्तुत किया है उसमें जीवन यथार्थ के संसार को समझने, बदलने और समाप्त करने की महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ हैं।

"यहाँ मेरे लोग हैं
यही मेरा देश है
इसी में रहता हूँ इन्हीं से कहता हूँ

अपने आप और बेकार।
लोग लोग लोग चारों तरफ है मार तमाम लोग
खुश और असहाय
उनके बीच सहता हूँ
उनका दुःख
अपने आप और बेकार।"[7]

समकालीन सामाजिक यथार्थ की भयंकर और दुःखद स्थिति को समझने में वर्तमान राजनीति और राष्ट्रीय व्यवस्था का योगदान सर्वाधिक है। मिलों, कारखानों में काम करने वाले मजदूर वर्ग दिनभर मशीन पर काम करने के बाद भी अपने घर पर आकर आर्थिक चिन्ताओं से ग्रस्त असहाय अवस्था में पड़े रहते हैं। प्रतिदिन जीवनयापन के लिए श्रम करने के बाद आर्थिक तंगी इतनी अधिक हो जाती कि पेट पालने की स्थिति दयनीय हो जाती। इसका कारण यह है कि न तो श्रम के हिसाब से उनको पैसा मिलता, न रहने के लिए आवास, न खाने के लिए खाद्यान्न सामग्री। "केदारनाथ सिंह के लिए कभी नए विशेषण सादृश्य विम्बों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण रहे हैं जिसके चलते उनका मूल अनुभव सम्मोहक काव्यात्मक रूपांतरण हो जाता था। लेकिन उनका अनुभव जीवंत यथार्थ से कटकर धुँधला हो जाया करता था।"[8]

समकालीन कविता के कवि जीवन की सामाजिक विसंगतियों, परिस्थितियों से संघर्ष करके अपने ही धरातल पर स्थित रहते हैं। इस कविता में मानव जीवन की सभी चिंताओं की हिस्सेदारी होने के कारण कविता में वर्णित अनुभव को कोई झुठला नहीं सकता। यही इस कविता की सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जा सकती है। समकालीन कविता में संवेदना का पुट और आत्मीयता का भाव अत्यंत गहरा है और जीवनसंघर्ष एवं जन-संघर्ष के स्तर पर अपने दोहरे उत्तरदायित्वों का सार्थक निर्वाह संकल्पित आस्था के आधार पर रचनाकार करते हैं। समकालीन कविता जीवनधमी है, यथार्थ से उसका सीधा संबंध होता है। इस प्रकार समकालीन कविता समाज में पनप रही विषमता, सामाजिक विडंबना को केंद्र में रखकर समाज को एक नई दिशा प्रदान किया।

निष्कर्ष

समकालीन कविता के कवि जीवन की सामाजिक विसंगतियों, परिस्थितियों से संघर्ष करके अपने ही धरातल पर स्थित रहते हैं। इस कविता में मानव जीवन की सभी चिंताओं की हिस्सेदारी होने के कारण कविता में वर्णित अनुभव को कोई झुठला नहीं सकता। यही इस कविता की सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जा सकती है। समकालीन कविता मूलतः विरोध, विद्रोह और आक्रोश की कविता है जिसमें राजनीतिक परिदृश्य की पूरी कथाएँ शासक वर्ग के प्रतिपक्ष में वर्णित होती हैं।

इसको ऐसे भी रेखांकित किया जा सकता है कि समकालीन युगीन कविता आज़ादी के बाद हो रहे सामाजिक बदलाव का सम्पूर्ण दस्तावेज़ है जो सामाज में तीव्र गति से हो रहे थे। क्योंकि इस काल का साहित्य भ्रष्टाचार के कारण अपने मूल रूप को खो रहा था। और इस परिस्थिति से उस काल का कवि भली-भांति परिचित था क्योंकि वह उन्हीं परिस्थितियों के बीच जीवन व्यतीत कर रहा था। अपने अस्तित्व के मांग के साथ वह समाज के अस्तित्व की भी माँग करता था और समाज मे पनप रहे भ्रष्टाचार, शोषण, अपराध, विषम परिस्थितियों आदि के विरुद्ध अपनी कलम चलाता रहा क्योंकि उनका यह मानना था कि यह सब समाज से खत्म हो, और समाज एक सुखी संपन्न जीवन व्यतीत करें वह समाज में एक सार्थक बदलाव लाना चाहते थे। इस प्रकार समकालीन युगीन कविता एक प्रकार से व्यक्तिगत प्रक्रिया मानी जा सकती है। क्योंकि यहाँ जीवन के हर मोड़ पर खुद से संघर्ष करना होता है, जिसमें व्यक्ति समाज से, परिस्थितियों से खुद ही लड़ता है और उससे स्वयं ही मुक्ति पा जाता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. समकालीन काव्ययात्रा, नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन-नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2004, पृष्ठ संख्या- 8 (भूमिका)
2. सुदामा पाण्डेय 'धूमिल', संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन-नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या, 41-42
3. वही, पृष्ठ संख्या-41
4. पहाड़ पर लालटेन, मंगलेश डबराल, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण-2009, पृष्ठ संख्या-43
5. डॉ. रामनारायण शुक्ल, डॉ० श्रीनिवास पाण्डेय, छायावादोत्तर काव्य-संग्रह, संजय बुक सेंटर, वाराणसी, पृष्ठ संख्या- 71
6. गजानन माधव मुक्तिबोध, चांद का मुँह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, चौदहवां संस्करण 2001, पृष्ठ संख्या-269
7. रघुवीर सहाय, आत्महत्या के विरुद्ध, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, तृतीय संस्करण- 1985, पृष्ठ संख्या-33
8. डॉ. तीर्थेश्वर सिंह, समकालीन हिन्दी कविता की यथार्थवादी चेतना, मानसी पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या-184

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

बिहार पर्यटन के क्षेत्र में सामाजिक एवं आर्थिक विकास की संभावनाएं : कैमूर जिला के विशेष संदर्भ में

नीतीश वर्धन
सहायक प्राध्यापक (अतिथि)
समाजशास्त्र विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव महाविद्यालय, शाहपुर पटोरी, समस्तीपुर, बिहार
ईमेल - nitishvrdhan@gmail.com

सारांश

बिहार भारत का एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध राज्य है, जहाँ पर्यटन की अपार संभावनाएँ मौजूद हैं। विशेषकर कैमूर जिला, जो प्राकृतिक संपदाओं, ऐतिहासिक गुफाओं, किले, झरनों और धार्मिक स्थलों से भरपूर है, सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए पर्यटन का एक महत्वपूर्ण केंद्र बन सकता है। यह क्षेत्र कैमूर पर्वत, मौकड़ी डैम, टुटला भवानी जलप्रपात, कर्मनासा नदी और ऐतिहासिक धरोहरों के लिए जाना जाता है। यहाँ पर्यटन को संगठित रूप से विकसित करने से स्थानीय समुदाय को रोजगार, बुनियादी ढाँचे का विस्तार, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार जैसे प्रत्यक्ष लाभ मिल सकते हैं। कैमूर जिले में पर्यटन उद्योग से सामाजिक विकास के अवसर बढ़ेंगे, जैसे ग्रामीण महिलाओं और युवाओं को स्वरोजगार, स्थानीय हस्तशिल्प और सांस्कृतिक कला का संरक्षण। आर्थिक दृष्टिकोण से यह क्षेत्र कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था को विविधता प्रदान करेगा और होटल, परिवहन, गाइडिंग सर्विस, स्थानीय बाज़ार आदि के माध्यम से अतिरिक्त आमदनी उपलब्ध कराएगा। इसके साथ ही, यहाँ इको-टूरिज्म और धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा देकर सतत विकास के लक्ष्य को भी हासिल किया जा सकता है। हालाँकि, इस क्षेत्र में अभी कई चुनौतियाँ मौजूद हैं, जैसे—बुनियादी ढांचे की कमी, सड़क और संचार व्यवस्था की कमजोरी, पर्यावरण संरक्षण की जागरूकता की कमी और सरकारी नीतियों के अपर्याप्त क्रियान्वयन। यदि इन बाधाओं को दूर किया जाए तो कैमूर न केवल बिहार बल्कि पूरे भारत के पर्यटन मानचित्र पर एक प्रमुख स्थान प्राप्त कर सकता है। इस शोध का उद्देश्य कैमूर जिले में पर्यटन की सामाजिक-आर्थिक संभावनाओं का आकलन करना है। इसमें यह समझने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार पर्यटन स्थानीय जीवनस्तर को ऊँचा उठा सकता है और सतत विकास का माध्यम बन सकता है।

मुख्य शब्द- कैमूर जिला, बिहार पर्यटन, सामाजिक विकास, आर्थिक विकास, इको-टूरिज्म, सांस्कृतिक धरोहर, सतत विकास, ग्रामीण आजीविका, रोजगार, धार्मिक पर्यटन।

परिचय

पर्यटन किसी भी क्षेत्र के सामाजिक और आर्थिक विकास में उत्प्रेरक की भूमिका निभाता है। सामाजिक विज्ञान के अनुसार, पर्यटन केवल आय का स्रोत ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक आदान-प्रदान, सामाजिक एकता और समुदाय आधारित

विकास का माध्यम भी है। बिहार जैसे राज्य, जो ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहरों से समृद्ध है, पर्यटन के माध्यम से अपनी सामाजिक संरचना और आर्थिक स्थिति को नई दिशा दे सकते हैं। विशेषकर कैमूर जिला, जहाँ प्राकृतिक सौंदर्य और ऐतिहासिक धरोहरें बड़ी संख्या में मौजूद हैं, विकास की अपार संभावनाएँ रखता है। कैमूर जिला सामाजिक दृष्टि से विविधतापूर्ण है। यहाँ अनुसूचित जाति, जनजाति और ग्रामीण आबादी की अधिकता है। पर्यटन इन समुदायों के लिए न केवल रोज़गार के अवसर प्रदान कर सकता है, बल्कि शिक्षा, महिला सशक्तिकरण और सामाजिक भागीदारी को भी बढ़ावा दे सकता है। आर्थिक दृष्टिकोण से, कैमूर पर्यटन पर आधारित सेवाओं जैसे होटल, परिवहन, हस्तशिल्प और गाइडिंग के माध्यम से क्षेत्र की आय में वृद्धि कर सकता है (मिश्रा, 2022)। सामाजिक विज्ञान यह भी बताता है कि पर्यटन स्थानीय लोगों की जीवनशैली पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। उदाहरण के लिए, स्थानीय कला, लोकगीत और पारंपरिक संस्कृति को पर्यटकों तक पहुँचाकर उसका संरक्षण किया जा सकता है (NITI Aayog, 2021)। इसके अलावा, पर्यटन के चलते बुनियादी ढांचे जैसे सड़क, बिजली, इंटरनेट और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार की संभावना भी बढ़ती है। हालाँकि, कैमूर में पर्यटन विकास के सामने कई चुनौतियाँ हैं, जैसे—अविकसित परिवहन नेटवर्क, सीमित प्रचार-प्रसार और पर्यावरणीय संरक्षण की कमी। सामाजिक विज्ञान की दृष्टि से यह आवश्यक है कि पर्यटन विकास स्थानीय समुदाय की भागीदारी के साथ किया जाए ताकि यह केवल आर्थिक लाभ तक सीमित न रहकर सामाजिक समानता और सतत विकास का भी साधन बने (कुमार, 2020)।

शोध उद्देश्य एवं लक्ष्य

इस शोध का मुख्य उद्देश्य कैमूर जिले में पर्यटन के माध्यम से सामाजिक एवं आर्थिक विकास की संभावनाओं का अध्ययन करना है। इसमें यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि पर्यटन किस प्रकार ग्रामीण आजीविका, महिला सशक्तिकरण, शिक्षा और रोजगार के अवसरों को प्रभावित करता है। साथ ही, यह भी विश्लेषण किया जाएगा कि किस प्रकार पर्यटन से स्थानीय बुनियादी ढाँचे, सांस्कृतिक संरक्षण और सतत विकास को प्रोत्साहन मिलता है। इस शोध का एक और उद्देश्य यह है कि कैमूर को बिहार और भारत के पर्यटन मानचित्र पर एक विशेष पहचान दिलाने की रणनीतियाँ प्रस्तुत की जाएँ (सिंह, 2021)।

लक्ष्य

- कैमूर जिले के प्रमुख पर्यटन स्थलों और उनकी विशेषताओं का अध्ययन करना।
- पर्यटन से होने वाले सामाजिक एवं आर्थिक लाभों का मूल्यांकन करना।
- स्थानीय समुदाय की भागीदारी और आजीविका में पर्यटन की भूमिका का विश्लेषण करना।
- पर्यटन विकास में आ रही चुनौतियों और बाधाओं को पहचानना।
- सतत और समुदाय-आधारित पर्यटन को बढ़ावा देने के उपाय सुझाना।

ये उद्देश्य सामाजिक विज्ञान की दृष्टि से कैमूर जिले के पर्यटन को केवल आर्थिक वृद्धि का साधन न मानकर, सामाजिक समावेशन और सांस्कृतिक संरक्षण के रूप में देखने में मदद करेंगे (दास, 2020)।

परिकल्पना

इस अध्ययन की मुख्य परिकल्पना यह है कि कैमूर जिले में पर्यटन सामाजिक एवं आर्थिक विकास का प्रभावी साधन बन सकता है, बशर्ते इसके लिए योजनाबद्ध प्रयास किए जाएँ।

- पहली परिकल्पना यह है कि यदि कैमूर जिले के ऐतिहासिक, धार्मिक और प्राकृतिक स्थलों को उचित प्रचार-प्रसार और बुनियादी ढाँचे से जोड़ा जाए, तो यह जिला बिहार का एक प्रमुख पर्यटन केंद्र बन सकता है। इससे न केवल स्थानीय समुदाय को रोजगार मिलेगा बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भी विविधता आएगी।

● दूसरी परिकल्पना यह है कि पर्यटन के माध्यम से कैमूर जिले की सामाजिक संरचना पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। यह महिलाओं को स्वरोजगार, युवाओं को कौशल विकास और स्थानीय कला-संस्कृति को संरक्षण देगा। सामाजिक विज्ञान के दृष्टिकोण से पर्यटन को केवल आय का साधन न मानकर सामाजिक परिवर्तन का माध्यम समझना चाहिए।

● तीसरी परिकल्पना यह है कि पर्यटन विकास से शिक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी ढांचे के स्तर में सुधार होगा। साथ ही, इको-टूरिज्म और धार्मिक पर्यटन का समन्वय करके पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास को बढ़ावा मिलेगा।

अतः यह माना जा सकता है कि यदि कैमूर जिले में पर्यटन का सुनियोजित विकास हो, तो यह क्षेत्र सामाजिक-आर्थिक उत्थान का एक सशक्त मॉडल प्रस्तुत कर सकता है।

शोध पद्धति

यह शोध मुख्यतः वर्णनात्मक (Descriptive) और विश्लेषणात्मक (Analytical) पद्धति पर आधारित है। इसमें कैमूर जिले के पर्यटन स्थलों, सामाजिक संरचना और आर्थिक परिस्थितियों का गहन अध्ययन किया गया है।

डेटा संग्रह के लिए दो प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है :

1. प्राथमिक स्रोत– स्थानीय निवासियों, पर्यटकों और पर्यटन से जुड़े उद्यमियों से साक्षात्कार और प्रश्नावली के माध्यम से जानकारी एकत्र की गई। इसके अंतर्गत रोजगार, आय में वृद्धि, सांस्कृतिक संरक्षण और सामाजिक सहभागिता से संबंधित तथ्यों को दर्ज किया गया।

द्वितीयक स्रोत– सरकारी रिपोर्ट, शोध आलेख, पुस्तकों, समाचार पत्रों और ऑनलाइन प्रकाशनों से आँकड़े और तथ्य जुटाए गए। बिहार पर्यटन विभाग और निति आयोग की रिपोर्ट भी इस शोध में महत्वपूर्ण रही (NITI Aayog, 2021)।

शोध में सामाजिक विज्ञान दृष्टिकोण अपनाया गया है, जिसके अंतर्गत पर्यटन को केवल आर्थिक लाभ के दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि सामाजिक बदलाव, सामुदायिक भागीदारी और सांस्कृतिक पुनर्जीवन के रूप में समझा गया है (झा, 2019)।

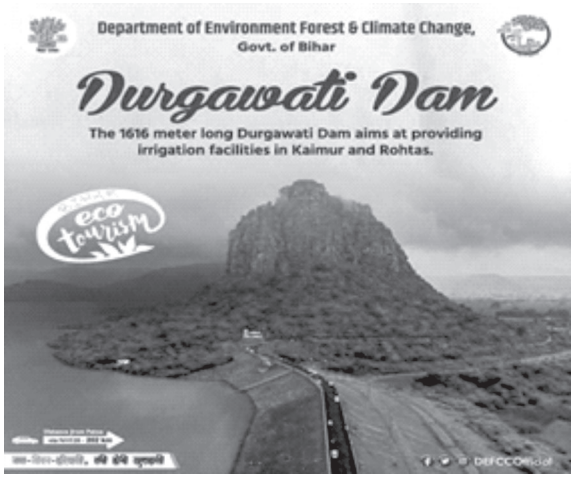

डेटा का विश्लेषण सांख्यिकीय और गुणात्मक दोनों पद्धतियों से किया गया है। प्राथमिक आंकड़ों को तालिकाओं और प्रतिशत विश्लेषण के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जबकि द्वितीयक स्रोतों को तुलनात्मक रूप से अध्ययन में शामिल किया गया।

आगे दर्शाए गए चित्रों में कैमूर जिले की प्रमुख प्राकृतिक और सांस्कृतिक पर्यटन स्थलों–जैसे कि झरने (तेलहर, करकतगढ़), ऐतिहासिक मंदिर (मुंडेश्वरी) और पहाड़ी स्थल–की खूबसूरती को दिखाया गया है।

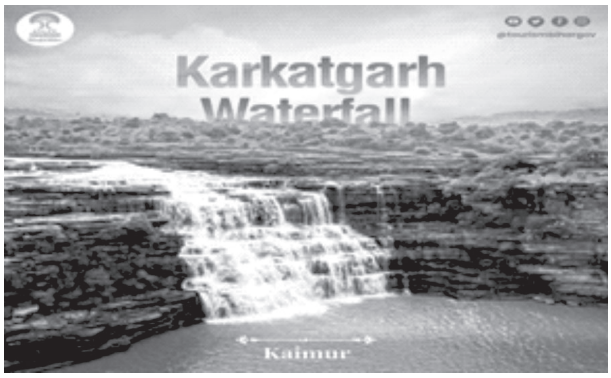

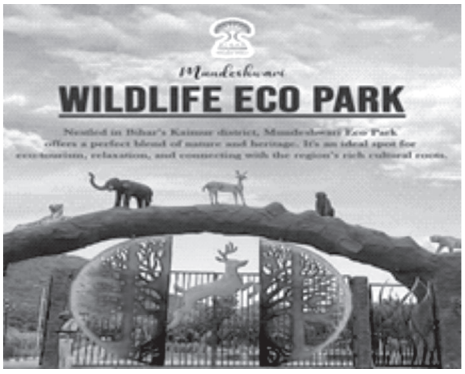

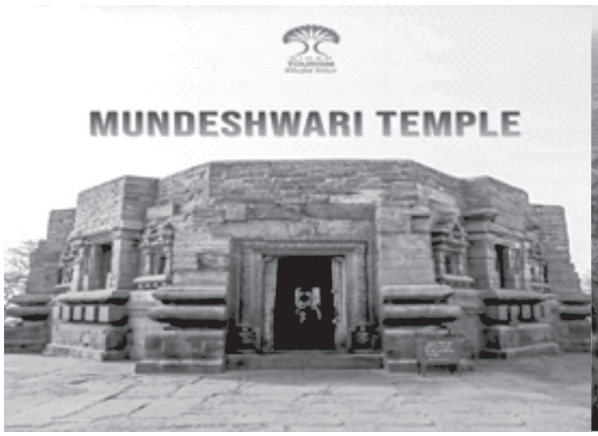

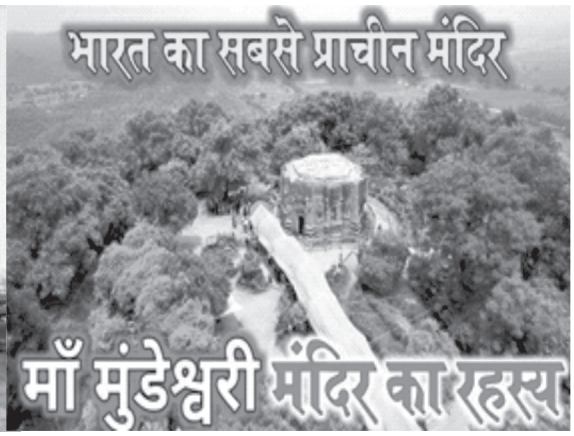

आँकड़ों की तुलना तालिका (2011 बनाम अनुमानित 2025)

बिहार में समग्र पर्यटन आंकड़ों के प्रकाश में, कैमूर जिले के लिए प्रत्यक्ष 2011-2025 डेटा उपलब्ध नहीं है। फिर भी हम बिहार के पर्यटन प्रवृत्ति और पर्यटन रोजगार मॉडल के माध्यम से आकलन कर सकते हैं। नीचे बिहार के आंकड़े एक दृष्टिकोण देने के लिए संकलित हैं :

वर्ष	घरेलू पर्यटक (लाख में)	विदेशी पर्यटक (लाख में)	कुल पर्यटक (लाख में)	अनुमानित रोजगार (लाख में)
2011	183.97	9.72	193.70	11.28 (प्रत्यक्ष)
2019	339.90	10.93	350.83	19.79 (प्रत्यक्ष)
2025 (अनुमानित)	400-450	12-15	412-465	25-28 (प्रत्यक्ष)

अनुमानित मान हैं जो आर्थिक सर्वेक्षण एवं रोजगार गुणक (employment multiplier) सूत्र पर आधारित हैं। अनुमानित वृद्धि दरों पर आधारित मॉडल—2019 की तुलना में लगभग 20-30% वृद्धि।

- 2011 में बिहार में घरेलू एवं विदेशी पर्यटकों की संख्या कुल लगभग 193.7 लाख थी, और प्रत्यक्ष रोजगार लगभग 11.28 लाख (tourism multiplier के आधार पर) हुआ था।
- 2019 में कुल पर्यटक संख्या बढ़कर लगभग 350.83 लाख हो गई, और प्रत्यक्ष रोजगार लगभग 19.79 लाख रही।

• 2025 के लिए अनुमानित आंकड़े 2019 से औसतन 20-30% की वृद्धि मानते हुए तथा रोजगार गुणक की प्रगति के आधार पर तय किए गए हैं।

इस तालिका से स्पष्ट होता है कि बिहार में पर्यटन का स्वरूप 2011 से 2019 के बीच काफी बढ़ा, और यदि विकास की यही धारा कायम रही, तो 2025 तक यह और भी आगे बढ़ सकता है।

1. पृष्ठभूमि एवं दृष्टिकोण

सामाजिक विज्ञान के दृष्टिकोण से पर्यटन केवल आर्थिक लाभ नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन, सांस्कृतिक संरक्षण और सामुदायिक सशक्तिकरण का माध्यम भी बनता है। बिहार में 2011-2019 के दौरान पर्यटक आने की दर में तेज़ी से वृद्धि हुई, जिससे क्षेत्रीय विकास में नए अवसर उभरे। कैमूर क्षेत्र में इको-टूरिज्म की संभावनाएँ अत्यंत प्रबल हैं, विशेषतः Kaimur Wildlife Sanctuary, Karkat और Telhar झरने, Mundeshwari मंदिर जैसी धरोहरों के कारण। सरकार की पहल से पिछले वर्षों में टूर पैकेज, बोटिंग सुविधा, इकॉ-पर्यटन और वन्य विकास योजनाओं को प्रारंभ किया गया है।

2. आर्थिक प्रभाव और रोजगार

बिहार में पर्यटन के विस्तार के साथ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रोजगार के अवसर बढ़े हैं। मल्टीप्लायर मॉडल के अनुसारः

• 2011 में बिहार में प्रत्यक्ष रोजगार रु. 11.28 लाख था।

• 2019 में यह बढ़कर रु. 19.79 लाख रहा।

• यदि कैमूर जिले की हिस्सेदारी भी बढ़ती है, तो यहाँ की ग्रामीण और आदिवासी आबादी को बुनियादी आजीविका, स्थानीय हस्तशिल्प, गाइडिंग, होमस्टे और ट्रांसपोर्ट जैसे क्षेत्रों में लाभ हो सकता है।

कैमूर में बोटिंग, नाइट कैंपिंग, पर्यटकों के लिए पॉकेट पैकेज विकसित करने से स्थानीय अर्थव्यवस्था में वृद्धि संभव है। उदाहरणतः, सिर्फ दिसंबर माह में दुर्गावती डैम में 12-15 हजार पर्यटकों ने बोटिंग का आनंद लिया और रु. 10 लाख से अधिक की आय हुई।

3. सामाजिक विकास एवं सांस्कृतिक संरक्षण

पर्यटन आर्थिक लाभ के साथ-साथ सामाजिक बदलाव का माध्यम भी है :

• ग्रामीण महिलाओं और युवाओं को स्वरोजगार के अवसर (हैंडलूम, लोक कला, गाइडिंग) मिल सकते हैं।

• पर्यटकों को स्थानीय संस्कृति और लोकशिल्प की जानकारी देने से सांस्कृतिक पहचान मजबूत होती है।

• 'मेरा प्रखंड-मेरा गौरव' जैसी प्रतियोगिताओं में कैमूर ने 95 प्रतिभागियों के साथ दूसरे स्थान पर रहकर स्थानीय पर्यटन को उजागर किया।

4. बुनियादी ढाँचा और प्रशासनिक पहल

पर्यटन विकास के लिए सुसंगठित बुनियादी ढाँचा—सड़क, इंटरनेट, आवास, स्वच्छता, स्वास्थ्य सेवाएँ—के साथ-साथ प्रशासनिक समर्थन आवश्यक है।

• सरकार द्वारा Sher Shah Suri Fort, Mundeshwari Temple एवं जलप्रपात के आसपास पर्यावरण-हितैषी सुविधाओं जैसे रोपवे, गेस्ट हाउस और सौर प्रकाश की व्यवस्था योजनाबद्ध रूप से की जा रही है।

5. इको-टूरिज्म एवं पर्यावरण संरक्षण

कैमूर की वन सम्पदा, जैव विविधता और जलप्रपात इको-टूरिज्म के लिए आदर्श हैं :

- सरकार Karkat Waterfall को Crocodile Conservation Reserve में परिवर्तित करने की योजना बना रही है।
- Kaimur Wildlife Sanctuary में टाइगर रिजर्व और अन्य संरक्षण योजनाएँ प्रस्तावित हैं।
- इको-पर्यटन के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ स्थानीय समुदाय की भागीदारी सुनिश्चित की जा सकती है।

कैमूर पर्यटन का सामाजिक आर्थिक प्रभाव से सम्बंधित आंकड़े

क्र.	कथन	हां	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत	कुल योग	प्रतिशत
1	क्या पर्यटन के विकास से स्थानीय लोगों को रोजगार मिला है?	39	65	21	35	60	100
2	क्या पर्यटन के विकास से बेहतर सड़क, परिवहन आदि की सुविधाएं प्राप्त हुई है?	36	60	24	40	60	100
3	क्या पर्यटन के विकास से स्थानीय हस्तशिल्प, उत्पादों एवं सेवाओं की मांग में वृद्धि हुए है?	33	55	27	45	60	100
4	क्या पर्यटन के विकास से स्थानीय संस्कृति, परंपराओं का संरक्षण किया है?	33	55	27	45	60	100
5	क्या पर्यटन के विकास से स्थानीय सामुदायिक जीवन स्तर बेहतर हुआ है?	36	60	24	40	60	100
6	क्या पर्यटन के विकास से स्थानीय लोगों की आय में वृद्धि हुई है?	39	65	21	35	60	100

समस्याएँ और समाधान

कैमूर जिले में पर्यटन की संभावनाएँ प्रबल हैं, परंतु इसके विकास में अनेक बाधाएँ सामने आती हैं।

प्रमुख समस्याएँ

- **बुनियादी ढाँचे की कमी**– सड़क, होटल, स्वास्थ्य और स्वच्छता सुविधाओं की अनुपलब्धता पर्यटन के विकास में बाधक है।
- **पर्यावरणीय चुनौतियाँ**– अव्यवस्थित पर्यटक गतिविधियों से जलप्रपात और वन्यजीव क्षेत्रों पर दबाव बढ़ता है (Verma, 2020)।
- **निवेश की कमी**– निजी और सरकारी दोनों स्तरों पर पर्याप्त निवेश नहीं हो रहा है।
- **स्थानीय भागीदारी का अभाव**– ग्रामीण समुदाय पर्यटन को अपने आर्थिक और सामाजिक विकास से जोड़ने में अभी सक्रिय रूप से शामिल नहीं है (झा, 2019)।
- **प्रचार-प्रसार की कमी**– कैमूर के प्रमुख पर्यटन स्थलों की राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान अभी सीमित है।

संभावित समाधान

- **इंफ्रास्ट्रक्चर सुधार**– सड़क, बिजली, इंटरनेट और स्वास्थ्य सुविधाओं को प्राथमिकता दी जाए।

• **सतत पर्यटन मॉडल**– इको-टूरिज्म और धार्मिक पर्यटन को प्रोत्साहित कर पर्यावरण और संस्कृति का संरक्षण किया जाए।

• **निजी क्षेत्र की भागीदारी**– PPP मॉडल के तहत होटल, रिसॉर्ट और परिवहन सेवाओं में निवेश बढ़ाया जाए।

• **स्थानीय समुदाय सशक्तिकरण**– युवाओं और महिलाओं को प्रशिक्षण देकर गाइडिंग, हस्तशिल्प और होम-स्टे से जोड़ा जाए।

• **डिजिटल प्रचार**– सोशल मीडिया, वेबसाइट और अंतर्राष्ट्रीय मेलों के माध्यम से कैमूर पर्यटन का प्रचार किया जाए (सिंह, 2021)।

इस प्रकार, यह पाया गया कि यदि उपयुक्त नीतियों और रणनीतियों का पालन किया जाए, तो कैमूर पर्यटन स्थानीय समाज और अर्थव्यवस्था दोनों को सशक्त कर सकता है।

निष्कर्ष

इस शोध से स्पष्ट होता है कि कैमूर जिला पर्यटन के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य, ऐतिहासिक धरोहरों और धार्मिक स्थलों को उचित योजनाओं और निवेश के साथ विकसित किया जाए, तो यह बिहार के पर्यटन मानचित्र को नई ऊँचाइयों तक पहुँचा सकता है। सामाजिक दृष्टिकोण से पर्यटन स्थानीय समुदाय को स्वरोजगार, महिला सशक्तिकरण, शिक्षा और सांस्कृतिक संरक्षण के अवसर प्रदान करेगा। आर्थिक दृष्टिकोण से यह कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था को विविधता देगा और होटल, परिवहन, हस्तशिल्प और अन्य सेवाओं से आय में वृद्धि होगी। हालाँकि, पर्यटन विकास तभी संभव है जब स्थानीय समुदाय की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित हो। इसके लिए सरकारी नीतियों के प्रभावी क्रियान्वयन, निजी निवेश और पर्यावरण-संवेदनशील दृष्टिकोण आवश्यक हैं। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पर्यटन न केवल आर्थिक विकास का साधन है, बल्कि सामाजिक न्याय और सतत विकास की दिशा में भी एक मजबूत कदम साबित हो सकता है। कैमूर जिले के लिए यह अवसर है कि वह अपनी प्राकृतिक और सांस्कृतिक धरोहरों को वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाकर सामाजिक-आर्थिक उत्थान का आदर्श मॉडल बने।

सुझाव

- कैमूर जिले के प्रमुख पर्यटन स्थलों के लिए समग्र मास्टर प्लान तैयार किया जाए।
- स्थानीय युवाओं और महिलाओं को प्रशिक्षण देकर पर्यटन उद्योग से जोड़ा जाए।
- पर्यटन स्थलों पर सड़क, बिजली, इंटरनेट और स्वास्थ्य सुविधाएँ सुनिश्चित की जाएँ।
- इको-टूरिज्म और धार्मिक पर्यटन को प्राथमिकता देकर सतत विकास को बढ़ावा दिया जाए।
- PPP मॉडल के तहत निजी निवेश आकर्षित किया जाए।
- कैमूर पर्यटन का डिजिटल और अंतर्राष्ट्रीय प्रचार-प्रसार किया जाए।

संदर्भ सूची

Census of India, (2011). भारत की जनगणना 2011 : बिहार राज्य रिपोर्ट. भारत सरकार प्रकाशन विभाग। पृ. 45-67।

दास, पी. (2020). ग्रामीण भारत में सतत पर्यटन और सामुदायिक सशक्तिकरण। सोशल साइंस रिव्यू, 15(4), 210-225।

झा, एम. (2019). बिहार में पर्यटन और सामुदायिक विकास। सोशल साइंस पर्सपेक्टिव्स, 14(1), 102-118।

कुमार, एस. (2020). पर्यटन विकास में सामुदायिक भागीदारी : पूर्वी भारत का एक केस स्टडी। जर्नल ऑफ सोशल डेवलपमेंट स्टडीज़, 12(3), 55-70।

मिश्रा, आर. (2022). बिहार में पर्यटन और ग्रामीण आजीविका : एक सामाजिक-आर्थिक अध्ययन, पटना : बिहार इकोनॉमिक सर्वे प्रकाशन। पृ. 80-96।

NITI Aayog, (2021). हेरिटेज एंड टूरिज्म सेक्टर रिपोर्ट 2020-21, भारत सरकार। उपलब्ध : https://www.niti.gov.in/heritage-tourism-report i- 112-135A

सिंह, ए. (2021). बिहार में पर्यटन की संभावनाएँ : एक सामाजिक-आर्थिक दृष्टिकोण। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रीजनल डेवलपमेंट, 9(2), 88-102।

Wikipedia. (2025). कैमूर जिला : पर्यटन और सामाजिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य. विकिपीडिया। उपलब्ध : https://hi.wikipedia.org/wiki/कैमूर-जिला पृ. 1-12।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका- एक अध्ययन

कुलदीप सिंह टण्डवाल
असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग
हर्ष विद्या मंदिर (पी.जी.) कॉलेज, रायसी, हरिद्वार

शोध सारांश

"एक शिक्षित महिला, एक सशक्त समाज की जननी होती है।"

महिला सशक्तिकरण एक ऐसा सामाजिक परिवर्तन है जो किसी भी राष्ट्र के समग्र विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। यह केवल महिलाओं को अधिकार देने की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि उन्हें वह शक्ति प्रदान करने का माध्यम है जिससे वें अपने जीवन के सभी निर्णय स्वयं ले सकें। जब कोई महिला सशक्त होती है, तो वह न केवल अपने जीवन में बदलाव लाती है, बल्कि वह अपनी अगली पीढ़ी, अपने समुदाय और पूरे राष्ट्र को प्रभावित करती है। इस दिशा में शिक्षा एक केंद्रीय भूमिका निभाती है। अर्थात शिक्षा वह प्रकाश है, जो सदियों से चली आ रही सामाजिक बेड़ियों को तोड़ने का साहस देती है। शिक्षा न केवल ज्ञान का स्रोत है, बल्कि यह महिलाओं के भीतर आत्मविश्वास, स्वतंत्र सोच और सामाजिक जागरूकता का संचार करती है।

शिक्षा महिला सशक्तिकरण की नींव है, जो उन्हें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है। एक शिक्षित महिला घरेलू सीमाओं से बाहर निकलकर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अपनी पहचान बना सकती है।

इस अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि शिक्षा किस प्रकार महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक और व्यक्तिगत स्तर पर सशक्त बनाती है। साथ ही यह भी विश्लेषण करना कि किन सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाओं के चलते शिक्षा आज भी कई महिलाओं की पहुँच से दूर है। आज भी समाज के कई हिस्सों में महिलाएं शिक्षा से वंचित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में लैंगिक भेदभाव, आर्थिक असमानता, सामाजिक रूढ़ियाँ और सुरक्षा की चिंता, महिला शिक्षा के मार्ग में बड़ी बाधाएँ बनी हुई हैं।

यदि महिला सशक्तिकरण को वास्तविक रूप में साकार करना है, तो सबसे पहले महिलाओं को गुणवत्तापूर्ण और समान अवसर वाली शिक्षा उपलब्ध करानी होगी। शिक्षा से न केवल महिलाओं का जीवन बदलता है, बल्कि पूरा समाज प्रगति की ओर अग्रसर होता है। अतः यह आवश्यक है कि हर लड़की को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान की जाए और शिक्षा की राह में आने वाली सभी बाधाओं को दूर किया जाए, ताकि एक समानता-आधारित, समावेशी और प्रगतिशील समाज का निर्माण संभव हो सके।

कुंजी शब्द : महिला सशक्तिकरण, शिक्षा, आत्मनिर्भरता, समानता, सामाजिक परिवर्तन, जागरूकता।

भूमिका

महिला सशक्तिकरण आज के समय की सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक आवश्यकताओं में से एक है। एक सशक्त महिला

न केवल स्वयं के जीवन को बेहतर बनाती है, बल्कि पूरे समाज और राष्ट्र के विकास में भी अपना योगदान देती है। महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य है महिलाओं को निर्णय लेने, आत्मनिर्भर बनने और समाज में समान अधिकार प्राप्त करने की स्वतंत्रता प्रदान करना। इस दिशा में शिक्षा को एक मूलभूत और प्रभावशाली माध्यम माना गया है। शिक्षा वह कुंजी है, जो महिलाओं के अंदर छिपी क्षमताओं को उजागर करने और उनके आत्मविश्वास को सशक्त बनाने में सहायक होती है।

महिला सशक्तिकरण का अर्थ और महत्व

महिला सशक्तिकरण का अर्थ है- महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और कानूनी दृष्टि से समान अधिकार प्रदान करना। जब महिलाएँ अपने जीवन के निर्णय स्वयं ले सकती हैं, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होती हैं, और अपने अधिकारों के प्रति सजग होती हैं, तभी उन्हें सशक्त माना जा सकता है।

एक सशक्त महिला-

- शिक्षा प्राप्त कर सकती है।
- रोजगार प्राप्त कर सकती है।
- घरेलू हिंसा और लैंगिक भेदभाव का विरोध कर सकती है।
- समाज में नेतृत्व की भूमिका निभा सकती है।

सशक्त महिलाएँ परिवार, समाज और राष्ट्र की नींव को मजबूत बनाती हैं। अतः महिला सशक्तिकरण एक समतामूलक और समृद्ध समाज की आवश्यकता है।

शिक्षा की भूमिका

1. आत्मनिर्भरता की ओर पहला कदम

शिक्षा महिलाओं को आत्मनिर्भर बनने का अवसर देती है। एक शिक्षित महिला नौकरी, व्यवसाय या अन्य किसी उपार्जन के माध्यम से अपने जीवन का संचालन कर सकती है। इससे वह पुरुषों पर आर्थिक रूप से निर्भर नहीं रहती और निर्णय लेने में स्वतंत्र होती है।

2. आत्मविश्वास और सामाजिक पहचान

शिक्षा महिलाओं में आत्मविश्वास पैदा करती है। शिक्षित महिलाएँ अपने विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकती हैं और समाज में अपनी एक पहचान बना सकती हैं। शिक्षा उन्हें सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों और रूढ़ियों से लड़ने की ताकत देती है।

3. स्वास्थ्य और परिवार नियोजन

शिक्षित महिलाएँ स्वास्थ्य संबंधी जानकारियाँ रखती हैं और अपने बच्चों तथा परिवार की बेहतर देखभाल कर सकती हैं। वें उचित पोषण, स्वच्छता और परिवार नियोजन की महत्ता को समझती हैं, जिससे परिवार स्वस्थ रहता है।

4. राजनीतिक और सामाजिक सहभागिता

शिक्षा महिलाओं को समाज और राजनीति में सक्रिय भागीदारी के लिए तैयार करती है। वें ग्राम पंचायत से लेकर संसद तक नेतृत्व की भूमिका निभा सकती हैं। शिक्षित महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती हैं और उनका हनन होने पर आवाज उठाने का साहस रखती हैं।

5. लैंगिक समानता की ओर बढ़ता कदम

शिक्षा लैंगिक भेदभाव को मिटाने का सशक्त माध्यम है। जब महिलाएँ शिक्षित होती हैं, तो वें यह समझ पाती हैं कि उन्हें पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हैं। इससे समाज में लैंगिक असमानता कम होती है।

भारत में महिला शिक्षा की वर्तमान स्थिति

भारत में महिला शिक्षा को लेकर पिछले कुछ दशकों में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों के माध्यम से महिला शिक्षा को बढ़ावा दिया गया है। जैसे–

- बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना।
- कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना।
- सर्व शिक्षा अभियान।
- मिड-डे मील योजना।

कुछ महत्वपूर्ण आँकड़े (2021-22 के अनुसार)

- भारत में महिला साक्षरता दर- लगभग 70.3 प्रतिशत (पुरुषों की साक्षरता दर- 84.7 प्रतिशत)
- ग्रामीण क्षेत्रों में महिला साक्षरता दर शहरी क्षेत्रों की तुलना में कम है।
- उच्च शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि हुई है जैसे–MBBS, इंजीनियरिंग, प्रशासनिक सेवाओं आदि में महिलाएँ अब बढ़-चढ़कर भाग ले रही हैं।

महिला शिक्षा में चुनौतियाँ

1. सामाजिक रूढ़ियाँ और परंपराएं

आज भी कई स्थानों पर यह माना जाता है कि लड़कियों को ज्यादा पढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। विवाह को ही उनका अंतिम उद्देश्य माना जाता है। इस मानसिकता के कारण बहुत सी लड़कियाँ शिक्षा से वंचित रह जाती हैं।

2. आर्थिक असमानता

गरीब परिवारों में संसाधनों की कमी के कारण लड़कों को प्राथमिकता दी जाती है और लड़कियों की शिक्षा को नजरअंदाज कर दिया जाता है।

3. सुरक्षा की चिंता

लड़कियों की सुरक्षा को लेकर चिंताओं के कारण कई माता-पिता उन्हें स्कूल या कॉलेज भेजने में हिचकिचाते हैं, खासकर दूर-दराज के क्षेत्रों में।

4. बुनियादी सुविधाओं की कमी

ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों के लिए शौचालय, सुरक्षित स्कूल भवन और महिला शिक्षकों की कमी भी उनकी शिक्षा में बाधा बनती है।

शिक्षा के माध्यम से महिला सशक्तिकरण के कुछ उदाहरण

शिक्षा एक ऐसा उपकरण है, जिससे महिलाएँ अपनी पहचान बना सकती हैं और समाज में नेतृत्व की भूमिका निभा सकती हैं। भारत और विश्व में कई ऐसी महिलाएँ हैं जिन्होंने शिक्षा के बल पर पारंपरिक सीमाओं को तोड़ा, रूढ़ियों को चुनौती दी, और लाखों लोगों के लिए प्रेरणा बनीं हैं–

1. कल्पना चावला-अंतरिक्ष की पहली भारतीय महिला

कल्पना चावला हरियाणा जैसे पारंपरिक राज्य से निकलकर अमेरिका में नासा की अंतरिक्ष यात्री बनीं। उन्होंने एयरोनॉटिकल इंजीनियरिंग की पढ़ाई भारत में की और आगे की उच्च शिक्षा अमेरिका में प्राप्त की। उनकी सफलता यह दिखाती है कि शिक्षा महिलाओं को वैश्विक मंच तक पहुँचने की शक्ति प्रदान करती है।

2. किरण बेदी-भारत की पहली महिला IPS अधिकारी

किरण बेदी ने दिल्ली विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में स्नातक और फिर कानून की पढ़ाई की। 1972 में वें भारतीय पुलिस

सेवा में चुनी गईं और देश की पहली महिला IPS अधिकारी बनीं। उन्होंने पुलिस सेवा में कई सुधार किए और महिला सशक्तिकरण की सशक्त आवाज बनीं। शिक्षा ने उन्हें नेतृत्व और प्रशासनिक क्षमता दी।

3. मैरी कॉम-शिक्षा और खेल का संतुलन

मणिपुर की मैरी कॉम ने कठिन परिस्थितियों में रहते हुए भी पढ़ाई जारी रखी और मुक्केबाजी में कई अंतर्राष्ट्रीय पदक जीते। उन्होंने स्नातक की पढ़ाई की और खेल के क्षेत्र में भारत का नाम रोशन किया। आज वें राज्यसभा सांसद हैं और महिला खेलों के लिए प्रेरणा हैं। शिक्षा ने उन्हें अनुशासन, आत्मबल और पहचान दी।

4. सुधा मूर्ति-लेखक, इंजीनियर और समाजसेवी

सुधा मूर्ति भारत की पहली महिला थीं जिन्हें टाटा इंजीनियरिंग एंड लोकोमोटिव कंपनी (TELCO) में बतौर महिला इंजीनियर नियुक्त किया गया। उन्होंने कंप्यूटर साइंस में उच्च शिक्षा प्राप्त की और इंफोसिस फाउंडेशन की अध्यक्ष के रूप में शिक्षा, स्वास्थ्य और महिला कल्याण के क्षेत्र में अनेक कार्य किए। उनकी पुस्तकें भी सामाजिक सशक्तिकरण की भावना को उजागर करती हैं।

5. मलाला यूसुफजई-बालिका शिक्षा की वैश्विक प्रतीक

पाकिस्तान की मलाला यूसुफजई ने बालिकाओं की शिक्षा के अधिकार के लिए आवाज उठाई। आतंकवादियों द्वारा गोली मारे जाने के बाद भी उन्होंने हार नहीं मानी और अपनी पढ़ाई जारी रखी। उन्हें नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। मलाला आज भी वैश्विक मंच पर शिक्षा के अधिकार के लिए कार्यरत हैं।

6. डॉ. टेसी थॉमस- 'मिसाइल वुमन ऑफ इंडिया'

टेसी थॉमस DRDO (Defence Research and Development Organisation) में वरिष्ठ वैज्ञानिक हैं। उन्होंने भौतिकी और मिसाइल टेक्नोलॉजी में उच्च शिक्षा प्राप्त की और भारत की मिसाइल प्रौद्योगिकी में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनका उदाहरण यह सिद्ध करता है कि विज्ञान जैसे क्षेत्रों में भी महिलाएँ शिक्षा के बल पर उत्कृष्टता प्राप्त कर सकती हैं।

7. गीता और बबीता फोगाट- शिक्षा + खेल + आत्मनिर्भरता

हरियाणा की गीता और बबीता फोगाट ने पढ़ाई के साथ-साथ कुश्ती में विश्व स्तर पर सफलता पाई। इनके जीवन पर आधारित फिल्म दंगल ने यह दिखाया कि कैसे ग्रामीण क्षेत्रों की लड़कियाँ शिक्षा और खेल दोनों में आगे बढ़ सकती हैं।

8. सुचित्रा कृष्णमूर्ति-शिक्षा से कला तक का सफर

एक शिक्षित पृष्ठभूमि से आने वाली सुचित्रा ने संगीत, अभिनय और लेखन में उल्लेखनीय कार्य किया है। उन्होंने दिखाया कि शिक्षा केवल नौकरी का जरिया नहीं है, बल्कि यह रचनात्मकता और अभिव्यक्ति को भी दिशा देती है।

9. अवनि चतुर्वेदी-भारत की पहली महिला फाइटर पायलट

अवनि ने B.Tech के बाद वायुसेना अकादमी से प्रशिक्षण प्राप्त कर, भारत की पहली महिला लड़ाकू विमान चालक बनीं। उनकी सफलता इस बात का प्रमाण है कि तकनीकी शिक्षा से महिलाएँ रक्षा क्षेत्र जैसे कठिन और चुनौतीपूर्ण क्षेत्रों में भी अग्रणी बन सकती हैं।

10. नीता अंबानी-शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक योगदान

हालाँकि नीता अंबानी एक व्यवसायिक परिवार से आती हैं, लेकिन नीता अंबानी ने शिक्षा को सामाजिक दायित्व माना और Dhirubhai Ambani International School जैसी संस्थाओं की स्थापना की। वें कई ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में स्कूलों और छात्रवृत्तियों के माध्यम से महिला शिक्षा को बढ़ावा दे रही हैं।

इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम नहीं है, बल्कि यह महिलाओं को आत्मनिर्भर, जागरूक, सशक्त और प्रेरक बनने की शक्ति देती है। चाहे वह विज्ञान, राजनीति, खेल, समाज सेवा या कला का क्षेत्र हो- शिक्षा से महिलाएँ न केवल अपने जीवन को बदल रही हैं, बल्कि लाखों अन्य महिलाओं के लिए मार्गदर्शक बन रही हैं।

महिला सशक्तिकरण हेतु सरकारी प्रयास

भारत सरकार ने महिला शिक्षा और सशक्तिकरण के लिए कई पहल की हैं–

- राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना
- महिला हेल्पलाइन 181
- निर्भया फंड
- मातृत्व लाभ योजना
- स्वयं योजना (MOOCs के माध्यम से शिक्षा)

इन पहलों का उद्देश्य महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सुरक्षा में सहयोग प्रदान करना है।

भविष्य की दिशा और सुझाव

1. लड़कियों की प्रारंभिक शिक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिए।
2. शिक्षा व्यवस्था को लैंगिक संवेदनशील बनाना चाहिए।
3. महिला शिक्षकों की नियुक्ति बढ़ाई जानी चाहिए।
4. सुरक्षित और सुविधाजनक स्कूल परिवहन की व्यवस्था होनी चाहिए।
5. महिला छात्रवृत्ति योजनाओं का विस्तार किया जाना चाहिए।
6. महिलाओं के लिए कौशल विकास और व्यावसायिक प्रशिक्षण को बढ़ावा देना चाहिए।

निष्कर्ष

महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में शिक्षा का महत्व अत्यंत व्यापक और बहुआयामी है। यह न केवल महिलाओं को व्यक्तिगत स्तर पर आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी बनाती है, बल्कि पूरे समाज की समृद्धि और विकास के लिए भी आधार तैयार करती है। एक शिक्षित महिला न केवल अपने परिवार को शिक्षित और स्वस्थ रखने में सक्षम होती है, बल्कि वह सामाजिक कुरीतियों और भेदभावों के खिलाफ भी मजबूत आवाज उठा सकती है। शिक्षा महिलाओं के व्यक्तित्व को निखारती है, उनके अंदर नेतृत्व और निर्णय लेने की क्षमता का विकास करती है, जोकि किसी भी लोकतांत्रिक और विकासशील राष्ट्र के लिए आवश्यक है।

भारत जैसे देश में जहाँ परंपरागत सोच और लैंगिक भेदभाव अभी भी व्यापक रूप में देखने को मिलता है, वहाँ महिला शिक्षा की भूमिका और भी अधिक निर्णायक होती है। शिक्षा से ही महिलाओं को सामाजिक बंधनों से मुक्ति मिलती है, और वें अपने अधिकारों, स्वास्थ्य, आर्थिक सुरक्षा, और सामाजिक सम्मान के लिए लड़ने के योग्य बनती हैं। साथ ही, शिक्षा महिलाओं को सही निर्णय लेने, परिवार नियोजन करने और अपने बच्चों को बेहतर भविष्य देने में सक्षम बनाती है, जिससे राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक विकास को भी बल मिलता है।

सरकार और समाज दोनों को मिलकर यह सुनिश्चित करना होगा कि सभी महिलाओं तक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पहुँच सके। विशेषकर ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में लड़कियों की शिक्षा के लिए उपयुक्त वातावरण, सुरक्षा, वित्तीय सहायता और समुचित संसाधन उपलब्ध कराना अत्यंत आवश्यक है। केवल तभी महिला सशक्तिकरण के प्रयास सफल होंगे और लैंगिक समानता का लक्ष्य साकार होगा।

अंततः शिक्षा ही वह सबसे सशक्त माध्यम है जिससे महिलाएँ अपने जीवन के हर क्षेत्र में समानता, सम्मान और स्वतंत्रता प्राप्त कर सकती हैं। यह न केवल एक महिला का, बल्कि पूरे समाज और राष्ट्र का उत्थान सुनिश्चित करती है। अतः हमें शिक्षा को ही महिला सशक्तिकरण की सबसे बड़ी शक्ति मानते हुए इसे सभी के लिए सुलभ, समावेशी और गुणवत्तापूर्ण बनाने का प्रयास सतत जारी रखना होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, मीनाक्षी। भारतीय महिलाओं का इतिहास और सशक्तिकरण, सतीश पुस्तकालय, 2018।
2. कुमार, राकेश। महिला सशक्तिकरणः सामाजिक और आर्थिक पहलू, ज्ञान भारती प्रकाशन, 2017।
3. मिश्रा, कुमारी पूजा। महिला शिक्षा और उसका विकास. हिंदी साहित्य सम्मेलन, 2019।
4. सिंह, सीमा। शिक्षा और लैंगिक समानता. रचनाकार प्रकाशन, 2020।
5. देसाई, नंदिनी। भारत में महिला सशक्तिकरण के संघर्ष, विश्वभारती प्रकाशन, 2016।
6. पाठक, संगीता। महिला शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन, जनसत्ता पब्लिकेशन, 2021।
7. वर्मा, राजेश। बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ-एक सामाजिक आंदोलन, लोकसत्ता प्रकाशन, 2018।
8. कुमारी, अंजलि। महिला सशक्तिकरण के आयाम, ज्ञानदीप पब्लिकेशन, 2017।
9. त्रिपाठी, शिवानी। भारतीय संविधान और महिला अधिकार, राष्ट्रीय विधि प्रकाशन, 2022।
10. सिंह, विजयलक्ष्मी। साक्षरता और महिला विकास, शिक्षण संस्थान प्रकाशन, 2019।
11. गौतम, मीनाक्षी। महिला शिक्षाः एक सामाजिक आवश्यकता, प्रगति प्रकाशन, 2020।
12. राव, संजीव। लैंगिक समानता और शिक्षा का प्रभाव, अध्ययन भारती, 2018।
13. मिश्रा, प्रिया। ''महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका : एक समालोचनात्मक अध्ययन'', सामाजिक विज्ञान पत्रिका, खंड 12, अंक 3, 2021, चचण् 45-60।
14. नायर, सीमा। महिला शिक्षा एवं रोजगार, भारत विकास प्रकाशन, 2017।
15. सिंह, अमिता। शिक्षित महिलाओं की सामाजिक भूमिका, विज्ञान और समाज, 2019।

सरकारी और संस्थागत रिपोर्ट्स

16. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020।
17. भारत सरकार, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय। राष्ट्रीय महिला आयोग की रिपोर्ट (2021-22)।
18. भारत सरकार, सामाजिक न्याय विभाग। बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना- रिपोर्ट।
19. संयुक्त राष्ट्र बाल कोष (UNICEF)। भारत में बालिका शिक्षा पर रिपोर्ट, 2020।
20. विश्व बैंक। महिला शिक्षा और आर्थिक विकासः भारत का अनुभव, 2019।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

छायावाद, मुकुटधर पाण्डेय और डॉ. बलदेव साव

सुशीला साहू
शोधार्थी (पी.एच.डी-हिंदी)
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर छत्तीसगढ़
मोबा - 9827466891

हिंदी साहित्य के इतिहास में बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक से चौथे दशक (1918-1936) के काल को छायावाद युग कहा गया है। छायावाद के प्रमुख सहित्यकारों का नाम लेते ही सर्व प्रथम पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी वर्मा का नाम बरबस ही याद आ जाता है। ये सच है कि और भी बहुत से साहित्यकार हैं, जिन्होंने छायावाद के प्रभाव में अनेक रचना की हैं। यदि उन सबके नाम भी क्रमवार लिख दिए जांय, तो भी छायावाद के कवियों की सूची उस समय तक अधूरी रहेगी, जब तक कि पद्मश्री मुकुटधर पाण्डेय का नाम न जोड़ दिया जाय।

दरअसल छायावाद को जानना है तो पं मुकुटधर पाण्डेय जानना होगा। जिनका जन्म 30 सितम्बर 1895 और स्वर्गवास 6 नवम्बर 1989 को हुआ था। और मुकुटधर पाण्डेय को जानने के लिए डॉ बलदेव को पढ़ना होगा। छायावाद को विशेष रूप से परिभाषित करने का श्रेय मुकुटधर पाण्डेय जी को ही जाता है। इसी प्रकार उनके सम्पूर्ण साहित्य को प्रकाशित कराके साहित्य विरादरी तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण योगदान डॉ बलदेव जी का है। छायावाद युग के साहित्यकारों में मुकुटधर पाण्डेय को छायावाद के प्रवर्तक के रूप में जाना जाता है। छायावाद क्या है? किस रूप में विभिन्न साहित्यकारों ने इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है? और फिर बहुत समय तक मुकुटधर पाण्डेय जी के सन्निकट रहने वाले रायगढ़ के वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. बलदेव जी का मुकुटधर पाण्डेय को लेकर क्या योगदान है? इन सभी विषयों को विवरण से देखने के पूर्व कुछ अन्य वरिष्ठ साहित्यकारों के विचार को ध्यान देने की आवश्यकता है।

जिन्होंने छायावाद और मुकुटधर पाण्डेय पर विशेष अध्ययन किया है। इस क्रम में सर्वप्रथम पं नन्द किशोर तिवारी जी का सन्दर्भ लेते हैं। जिन्होंने अपनी 'पं मुकुटधर पाण्डेय कृतित्व और व्यक्तित्व' पुस्तक के प्रारम्भ में ही लिखा है, "आधुनिक हिंदी काव्य के विकास में छायावादी काव्य का महत्त्व असंदिग्ध है। छायावाद-युग को खड़ी-बोली हिंदी का स्वर्णयुग कह कर समादृत किया जाता है। छायावादी काव्य मूलतः स्वछंदतावादी काव्य शैली की ही उपलब्धि है।"

छायावाद की रचनाओं का काल और प्रभाव पर उक्त पुस्तक में श्री तिवारी जी ने आगे लिखा है, "गीतांजलि के प्रकाशन के अनन्तर हिंदी में उससे प्रभावित रचनाएं प्रकाश में आने लगी थीं। 1915-16 ई. के आसपास स्वछंदतावाद के विकास के फलस्वरूप हिंदी में नये ढंग की कवितायें लिखी जाने लगीं। 1920 से 1936 ई. तक का 'छायावादी काव्य' इसी प्रवृति का अग्रसरीभूत रूप है। प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा प्रभृति प्रख्यात कवि छायावाद युग के गौरव हैं।"

अपनी इसी पुस्तक में पं नन्द किशोर तिवारी ने अपने लेखन उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहा है, "स्वछंदतावादी एवं छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृतियों को दृष्टिपथ में रखते हुए मैंने 'पं मुकुटधर पाण्डेय कृतित्व और व्यक्तित्व' विषय का सांगोपांग अनुशीलन उपस्थित करने का विनम्र प्रयत्न किया है।" निश्चय ही छायावाद और मुकुटधर के केंद्र में यह पुस्तक

पठनीय और हिंदी साहित्य हेतु आवश्यक दस्तावेज है। जिसमें मुकुटधर पाण्डेय के व्यक्तित्व सहित उनकी उन तमाम रचनाओं को संदर्भित हुए पं नन्द किशोर तिवारी जी ने लिखा है जो छायावाद को परिभाषित भी करते हैं और मुकुटधर पाण्डेय के योगदान को भी प्रदर्शित करते हैं।

प्रख्यात आलोचक नामवर सिंह की पुस्तक 'छायावाद' जो छायावाद के घेरे में सूक्ष्मता से किये गये अध्ययन के पश्चात लिखा निबन्ध संग्रह है। वे अपनी भूमिका में लिखते हैं, "यह निबन्ध छायावाद की काव्यगत विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए छाया-चित्रों में निहित सामाजिक सत्य का उद्घाटन करने के लिए लिखा गया है।" अपनी बात को विस्तार से बढ़ाते हुए नामवर सिंह कहते हैं, "स्वानुभूति, कल्पना, प्रकृति का मानवीकरण, आध्यात्मिक छाया, मूर्तिमत्ता, लाक्षणिक विचित्रता आदि छायावाद की विशेषताएँ कही जाती हैं। किंतु आलोचकों के विवेचन से कहीं यह स्पष्ट नहीं होता कि छायावादी स्वानुभूति संतों-भक्तों के आत्मनिवेदन से किस बात में भिन्न है।

छायावादी कल्पना में प्राचीन कवियों की अप्रस्तुत-विधायिनी कल्पना से क्या विशेषता है? प्रकृति का मानवीकरण करने में छायावाद ने संस्कृत कवियों से कितनी अधिक स्वच्छंदता दिखलाई है। छायावादी रहस्यवाद और संतों-भक्तों के अध्यात्मवाद में क्या अंतर है? छायावादी मूर्तिमत्ता में प्राचीन कवियों के दृश्यचित्रण से क्या नवीनता है और छायावाद की लाक्षणिकता में ऐसा क्या है, जो संस्कृत काव्यशास्त्र की सीमा में नहीं आ सकता? इन प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर दिए बिना छायावाद के काव्य-सौंदर्य का कोई विवेचन पूर्ण नहीं कहा जा सकता।"

इस तरह के तमाम महत्वपूर्ण प्रश्न उठाते हुए डॉ नामवर सिंह लिखते हैं, "इसका अर्थ यह है कि स्वानुभूति, कल्पना, प्रकृति का मानवीकरण आदि में कोई कार्य-कारण-संबंध. है और ये किसी एक ही मनोवृत्ति की तर्कसंगत परिणति हैं। इस मनोवृत्ति को ठीक-ठीक समझे बिना छायावाद के किसी विवेचन में सुसंगति और व्यवस्था नहीं आ सकती। इसीलिए इस निबंध में छायावाद के केंद्र बिंदु 'भावप्रबलता से प्रेरित स्वच्छंद कल्पना' पर विस्तार से विचार किया गया है।

अपनी इस पुस्तक 'छायावाद' के प्रथम रश्मि में उन्होंने पद्मश्री मुकुटधर पाण्डेय की चर्चा करते हुए ही अपने निबन्धों को आगे बढाया है। वे लिखते हैं, "छायावाद का आरंभ सामान्यतः 1920 ई. के आसापास से माना जाता है। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं से पता चलता है कि 1920 तक 'छायावाद' संज्ञा का प्रचलन हो चुका था। मुकटघर पांडेय वे 1920 की जुलाई, सितंबर, नवंबर और दिसंबर की श्रीशारदा (जबलपुर) में हिंदी में छायावाद शीर्षक से चार निबंधों की ऐक लेखमाला छपवाई थी। जब तक किसी प्राचीनतर सामग्री का पता नहीं चलता, इसी को छायावाद-संबंधी सर्वप्रथम निबंध कहा जा सकता है। 'हिंदी में उसका नितांत अभाव देखकर' मुकुटधर जी ने इधर उधर की कुछ टीका- टिप्पणियों के सहारे वह निबन्ध प्रस्तुत किया था। इससे स्पष्ट है कि उस निबंध से पहले भी छायावाद पर कुछ टीका-टिप्पणियाँ हो चकी थीं।"

डॉ. नामवर सिंह ने मुकुटधर पाण्डेय के दूसरे लेख को अधिक महत्वपूर्ण बताया। उन्होंने लिखा है, "दूसरा निबन्ध 'छायावाद क्या है?' सबसे महत्वपूर्ण है। आरंभ में ही लेखक कहता है— 'अंग्रेजी या किसी पाश्चात्य साहित्य अथवा बंग साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुछ भी जानकारी रखनेवाले तो सुनते ही समझ जाएँगे कि यह शब्द 'मिस्टिसिज्म' के लिए आया है।'' फिर भी छायावाद 'एक ऐसी मायामय सूक्ष्म वस्तु है कि शब्दों द्वारा। उसका ठीक-ठीक वर्णन करना असंभव हैष क्योंकि 'ऐसी रचनाओं में शब्द अपने स्वाभाविक मूल्य को खोकर सांकेतिक चिह्न मात्र हुआ करते हैं। छायावाद के कवि वस्तुओं को असाधारण दृष्टि से देखते हैं। उनकी रचना की संपूर्ण विशेषताएँ उनकी इस 'दृष्टि' पर ही अवलंबित रहती हैं। वह क्षण-भर में बिजली की तरह वस्तु को स्पर्श करती हुई निकल जाती है। अस्थिरता और क्षीणता के साथ उसमें एक तरह की विचित्र उन्मादकता और अंतरंगता होती है जिसके कारण वस्तु उसके प्रकृत रूप में नहीं किंतु एक अन्य रूप में दिख पड़ती है। उसके इस अन्य रूप का संबंध कवि के अंतर्जगत् से रहता है। यह अंतरंग दृष्टि ही 'छायावाद' की विचित्र प्रकाशन रीति का मूल है।'

छायावाद में प्रकृति का उपयोग प्रायः प्रतीक की तरह होता है, इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए मुकुटधर जी कहते हैं कि 'प्राकृतिक दृश्य और घटनाएँ सांकेतिक रूप से अदृश्य तथा अव्यक्त के प्रकाशन में साहाय्य पहुँचाती हैं।' छायावाद

के कलापक्ष पर विचार करते हुए मुकुटधर जी 'काव्य में चित्रकारी और संगीत का अपूर्व एकीकरण' उसका आदर्श मानते हैं। लेखमाला के शेष दो निबंधों का एक ही शीर्षक है—'हिंदी में छायावाद'। इनमें छायावाद पर लगाए गए 'अस्पष्टता' आदि आरोपों का स्पष्टीकरण करते हुए अंत में श्री मुकुटधर पांडेय ने लिखा है— 'छायावाद की आवश्यकता हम इसीलिए समझते हैं कि उससे कवियों को भाव-प्रकाशन का एक नया मार्ग मिलेगा। इस प्रकार के अनेक मार्गों-अनेक रीतियों का होना ही उन्नत साहित्य का लक्षण है।'

प्रसिद्ध आलोचक डॉ. नामवर सिंह मुकुटधर पाण्डेय के लेखों के विषय में आगे लिखते हैं कि मुकुटधर पांडेय के इस निबंध की विस्तृत चर्चा इसलिए की गई है कि यह छायावाद पर पहला निबंध होने के साथ ही अत्यंत सूझ-बूझ भरी गंभीर समीक्षा भी है। इस निबंध का ऐतिहासिक महत्त्व ही नहीं, बल्कि स्थायी महत्त्व भी है। उस युग की प्रतिनिधि पत्रिका सरस्वती में छायावाद का सर्वप्रथम उल्लेख जून 1921 के अंक में मिलता है।"

यह हमारे लिए गर्व का विषय है कि छायावाद के प्रवर्तक पं मुकुटधर पाण्डेय जी मेरे गृह जनपद रायगढ़ के बालपुर गाँव के निवासी थे। जो महानदी के पावन तट पर बसा है। आज भी वह स्थान प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूरित है। जहाँ पलाश के घने वन में रक्त वर्णित पुष्पों से बाते करते छायावादी कवि मुकुटधर पाण्डेय "किंशुक कुसुम" जैसी कविता रचते हैं—

किंशुक कुसुम आज शाखा पर फूला देख,
मेरा मन हर्ष से ये फूला न समाता है,
पूरे एक वर्ष पीछे आया फिर देखने में,
इतने दिवस भला कहाँ तू विताता है।"

जहाँ साक्षी के रूप में वह पीपल का पुरातन पेड़ आज भी विद्यमान है, जिसकी शीतल छांव में पं मुकुटधर पाण्डेय चर्चित कविता 'कुररी के प्रति' लिखते हैं—

बता मुझे ये विहग विदेशी अपने जी की बात /
पिछड़ा था तू कहाँ, आ रहा जो कर इतनी रात?

ऐसे अवसर पर छायावाद में प्रकृति को लेकर डॉ केदार नाथ सिंह की पुस्तक 'कल्पना और छायावाद' की बात करना आवश्यक हो जाता है, उन्होंने लिखा है, काव्य साहित्य में बिम्ब और प्रतीकों का अत्यन्त महत्व है, वे लिखते हैं, "छायावादी कवियों ने बिम्ब निर्माण के लिये जो क्षेत्र चुने थे, उनमें प्रकृति सबसे महत्त्वपूर्ण है। प्रकृति के अतिरिक्त प्राचीन इतिहास, पुराण, धर्म तथा दर्शन आदि से गृहीत चित्र भी मिलते हैं। प्रसाद जी के चित्रों में अतीत के गाढ़े रंगों का उभार स्पष्ट है। उन्होंने प्रायः प्राचीन संस्कृत कवियों के परम्परागत बिम्बों को एक नया रूप देकर आधुनिक साँचे में ढाल दिया है। इससे उनके बिम्बों में एक प्रकार का गहन 'क्लासिकल' रंग आ गया है। निराला के चित्रों में भावावेश और वासना का एक उद्धत प्रवाह मिलता है जो कभी-कभी बड़ी लम्बी सम्बन्धयोजना के कारण दुरूह और अस्पष्ट हो जाता है। निराला ने प्रकृति के भी प्रायः वे ही चित्र संकलित किये हैं जो सान्द्र तथा ओजस्वी हैं अथवा जिनमें तीव्र भावावेग को जगा सकने की क्षमता है।" निश्चित ही छायावाद का प्रकृति से सीधा सम्बन्ध है, जिसे मुकुटधर ने अपने लेख और साहित्य दोनों में ही महत्व प्रदान किया है।

डॉ. बलदेव जी अपने गाँव नरियरा से जब रायगढ़ में आकर रहने लगे तो साहित्य सेवा के साथ तत्कालीन वरिष्ठ साहित्यकारों के सम्पर्क में आये। इस क्रम में वे पद्मश्री मुकुटधर पाण्डेय के बहुत प्रिय हो गये। बलदेव जी का लेखन बहुत गम्भीर था। उनके विषय में उत्तर प्रदेश फतेहपुर के साहित्यकार श्री कृष्ण कुमार त्रिवेदी जी लिखते हैं कि डॉ. बलदेव एक अत्यन्त श्रमशील साहित्यकार हैं। वे न उथला लिखते हैं न उथला सोचते हैं न उथले तथ्यों से संतुष्ट होते हैं। गहरे से गहरे उतरकर सच्चे मोतियों की सच्ची खोज उन्हें सदा से प्रिय रही है, चाहे वह किसी हल्के-फुल्के लेख के लिए ही क्यों न हो। इससे उन्हें कोई विशेष लाभ मिला हो या नहीं, पर साहित्य जगत निश्चित रूप से लाभान्वित हुआ है। उन्होंने कितनी ही रचनाओं को कराल काल के भीषण जबड़ों से निकाल कर पुनर्जीवन प्रदान किया है और समस्त प्रकार के अभावों से जूझते

हुए भी युगीन भाव-सम्पदाओं को अनुप्राणिति किया है।

त्रिवेदी जी आगे लिखते है कि जब डॉ बलदेव जी रायगढ़ आये तो मुकुटधर पाण्डेय जी से मिले, "वे रायगढ़ पहुँचे तो छायावाद के प्रथम कवि साहित्य के युगावतार पं. मुकुटधर पाण्डेय का ऐसा कृपापूर्ण सानिध्य मिला कि रायगढ़ के ही होकर रह गए। यह सानिध्य उनके लिए तो लाभकारी रहा ही स्वयं पाण्डेय जी के लिए कम लाभकारी नहीं रहा। उनके मौन का अवसान मान बैठे अनेक पल्लवग्राही विद्वानों को तब प्रीतिकर झटका लगा जब डॉ. बल्देव ने 'छायावाद एवं अन्य श्रेष्ठ निबंध' सम्पादित करके दर्पण उनकी ओर कर दिया। इस लेखमाला को हिन्दी जगत को दशकों से तलाश थी, पर उसे पूर्णता देने का शायद ही किसी ने प्रयास किया हो। डॉ. बलदेव को ये लेख कहीं एक स्थान पर रखे हुए नहीं मिले, स्वयं पाण्डेय जी के पास से इनका अत्यल्प अंश ही प्राप्त हुआ। उनसे संभावित प्राप्ति स्थानों की जानकारी प्राप्त करके डॉ. बलदेव ने वह भगीरथ प्रयास किया जो उन्हें हितकारिणी सभा (जबलपुर) मुंशी नवल किशोर प्रेस (लखनऊ) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, नागरी प्रचारिणी सभा (काशी) ही नहीं नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता तक ले गया।

प्रत्येक स्थान से प्राप्त अंशों को जोड़-तोड़ कर चित्र को सम्पूर्ण करने का यह सफल प्रयास डॉ. आचार्य विनय मोहन शर्मा जी का एक वक्तव्य जो एक पुस्तक में प्रकाशित है, के अनुसार "डॉ. बलदेव सजग साहित्यकार हैं, उनके लेखन में भावुकता मात्र नहीं, वैदुस्य भी है। आपने श्रद्धेय पांडेय जी की काव्य-यात्रा का बहुत सुन्दर सविस्तार मूल्यांकन किया है। वे छायावादी कवियों के सचमुच अग्रणी हैं। आलोचकों को उनका साहित्य उनका काव्य दृष्टिगोचर नहीं हो पाया था। इसी से मत विभिन्नता पाई गई। मैने छायावादी काव्य के लक्षण के संबंध में अपनी एक कृति 'कवि प्रसाद आंसू तथा अन्य कृतियाँ' में लिखा था - रचना में आन्तरिक अनुभूतियाँ होनी चाहिए। अभिव्यक्ति में निरालापन होना चाहिए। यह निरालापन शब्द की किसी भी शक्ति से व्यक्त किया जा सकता है, प्रतीक और लक्षणा के सहारे कवियों ने अपने आन्तरिक भावों को अभिव्यक्ति दी है, प्रकृति का मानवीकरण भी उसकी एक विशेषता है। जिस समय मैंने उक्त पुस्तक लिखी थी, उस समय मैं मुकुटधर जी के काव्य से अधिक परिचित नहीं था। आपकी यह पुस्तक उनके जीवन और काव्य पर अधिकार पूर्वक प्रकाश डालती है।

जब डॉ बलदेव ने मुकुटधर पाण्डेय जी पर कार्य करना आरंभ किया तो वे लिखते हैं, "पंडित मुकुटधर पाण्डेय हिन्दी के उन यशस्वी साहित्यकारों में से हैं, जिन्हें उनकी एक-दो रचनाओं से यथेष्ट प्रसिद्धि मिली, पर सामग्री के अभाव में जिनका समग्र मूल्यांकन संभव न हो सका था। मुझे यह बात बार-बार परेशान करती थी, अस्तु पांडेय की रचनाओं की खोज में मैंने कई बड़े शहरों की साहित्यिक यात्राएं की। दिल्ली के मारवाड़ी वाचनालय, इलाहाबाद के भारत-भारती और हिन्दी साहित्य सम्मेलन, काशी विश्वविद्यालय के विशाल ग्रंथागार तथा नागरी प्रचारिणी सभा में अध्ययन के लिए मुझे अनुमति मिली, मैं सुबह 8 बजे से रात 8 बजे तक पुरानी पत्र-पत्रिकाओं के पन्ने पलटता, जरूरी बातें नोट करता और पांडेय जी की रचनाएँ मिलने पर उन्हें नकल कर लेता।

संकलन के बाद मैंने इन पर टिप्पणी लिखना शुरु किया। जैसे ही कोई लेख पूरा होता मैं पांडेय जी के पास समय बे-समय पहुँच जाता, संकोची स्वभाव के पांडेय जी कुछ बोल नहीं पाते, पर तथ्यात्मक त्रुटियों पर अन्डरलाईन अवश्य कर दिया करते थे, पूछने पर वे त्रुटियों का परिहार कर देते थे, पर अपनी ओर से कुछ भी नहीं बतलाते। पांडेय जी सदैव आत्मश्लाधा से दूर रहे। अन्य विषयों पर वे मेरे गुरु थे, मैं उनका शिष्य था, पर अपने बारे में वे सदा मौन रहे। सन् 80 के आसपास अधिकांश लेख पूरे हो गए, कुछ प्रकाशित भी हो गए। अब इच्छा हुई इन्हें पुस्तकाकार छपवाने की। भूमिका लिखने के लिए मैंने आचार्य विनयमोहन शर्मा को इसकी पांडुलिपि दे दी। उन्होंने बड़े मनोयोग से भूमिका लिखी। जिसका सारांश मेरे और पांडेय जी के नाम लिखे गए पत्रों में भी है। इसी समय के लगभग पांडेय जी गंभीर रूप से बीमार हुए, हम लोगों की चिन्ता बढ़ गई, मैंने अपनी किताब छपाने के बजाय पांडेय जी की रचनाओं को प्रकाश में लाना ज्यादा जरूरी समझा। श्री शारदा साहित्य सदन रायगढ़ ने विश्वबोध और छायावाद एवं अन्य श्रेष्ठ निबन्ध तथा छत्तीसगढ़ लेखक संघ रायगढ़ ने छत्तीसगढ़ी मेघदूत को सन् 1984 में प्रकाशित कर दिया। हमने करीब 15-16 सौ किताबें हिन्दी की सेवा में देश के विद्वानों को भेंट कर दी। हिन्दी के विद्वानों ने उन पुस्तकों की बड़ी अच्छी नोटिस ली। कई स्तरीय गोष्ठियाँ हुई।

गुरुघासीदास विश्वविद्यालय के विद्वान कुलपति शरदचन्द्र बेहार के संयोजन में 1 और 2 मार्च 1986 को रायगढ़ में छायावाद पुनर्मूल्यांकन विषयक राष्ट्रीय स्तर की संगोष्ठी हुई, इसमें देश के करीब सौ, छत्तीसगढ़ के एक सौ पचास और करीब इतने ही साहित्य अनुरागियों ने भाग लिया, जिसमें पांडेय जी सहित आचार्य विनयमोहन शर्मा, डॉ. रामकुमार वर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल, शिवमंगल सिंह सुमन, आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी आदि प्रमुख थे। इस संगोष्ठी में आधारलेख वाचन का सौभाग्य मुझे मिला। इन सबका मिला जुला परिणाम है गुरु घासीदास विश्वविद्यालय बिलासपुर द्वारा सन् 1995 में प्रकाशित 'छायावाद पुनर्मूल्यांकन' नामक ग्रंथ। इस ग्रंथ में छायावाद पर ही सभी विद्वानों के लेख केन्द्रित हैं।

निश्चय ही छायावाद के प्रवर्तक पं मुकुटधर पाण्डेय जी पर बहुत महान कार्य डा बलदेव जी ने किया है। और ये सच है कि छायावाद को जानना है पं मुकुटधर पाण्डेय को जानना होगा और मुकुटधर पाण्डेय को जानने के लिए डॉ बलदेव को पढ़ना होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

- पं मुकुटधर पाण्डेय व्यक्तित्व एवं कृतित्व- नन्द किशोर तिवारी
- छायावाद - डॉ. नामवर सिंह
- कल्पना और छायावाद -डॉ. केदार नाथ सिंह
- पं मुकुटधर पाण्डेय -व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व
- मुकुटधर पाण्डेय -डॉ. बलदेव
- विश्वबोध- सम्पादक डॉ. बलदेव
- लेख छायावाद के गाँव में एक दिन - कथा समवेत पत्रिका
- आगमन पत्रिका

सुश्री सुशीला साहू 'शोधार्थी'
हाउस नं 38 वार्ड नं 40
रुकमनी विहार, कोतरा रोड, रायगढ़ (छग)
पिन -496001
मोबा - 9827466891

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

नाटक- वेटिंग फॉर गोडो : एक अध्ययन

डॉ. संयुक्ता थोरात
विभाग अध्यक्ष एवं सहयोगी प्राध्यापक ललित कला विभाग और छंद मंदिर
राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज नागपूर विश्वविद्यालय
Email Id : sanyuktapihu@gmail.com
Mobile No- 9372163566

सारांश

सैम्युअल बेकेट द्वारा रचित "वेटिंग फॉर गोडो" बीसवीं शताब्दी के "एब्सर्ड थिएटर" का सबसे महत्त्वपूर्ण और चर्चित नाटक है। इस नाटक का मूल कथानक अत्यंत साधारण दिखाई देता है, जिसमें दो प्रमुख पात्र— व्लादिमीर और एस्ट्रागोन— सड़क किनारे एक वृक्ष के नीचे किसी गोडो नामक व्यक्ति की प्रतीक्षा करते रहते हैं। नाटक के दोनों अंकों में यही प्रतीक्षा बार-बार दिखाई देती है, किंतु गोडो कभी भी उनके सामने नहीं आता। इस बीच उनके पास पोज़ो और लकी नामक दो पात्र आते हैं, जो मानव संबंधों की जटिलताओं, शक्ति और दासता की प्रवृत्तियों को दर्शाते हैं। नाटक का शिल्प परंपरागत ढंग से अलग है, क्योंकि इसमें न कोई निश्चित कथानक है, न ही किसी घटना का स्पष्ट आरंभ या अंत। पात्र प्रतीक्षा करते हैं, समय बीतता है, संवाद दोहराए जाते हैं, किंतु समाधान कभी नहीं मिलता।

यही स्थिति आधुनिक मनुष्य की उस मानसिकता को प्रकट करती है, जिसमें जीवन निरंतर प्रतीक्षा और अनिश्चितता से भरा हुआ है। गोडो का चरित्र नाटक में प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित नहीं होता, किंतु उसका नाम ही आशा और उद्धार का प्रतीक बन जाता है। यह नाटक दर्शाता है कि मनुष्य जीवनभर किसी सहारे, मार्गदर्शन या ईश्वर की प्रतीक्षा करता है, लेकिन अंततः उसे निरर्थकता और अधूरी आशा ही प्राप्त होती है। इस प्रकार "वेटिंग फॉर गोडो" केवल रंगमंचीय प्रयोग न होकर मानव अस्तित्व का गहरा दार्शनिक अध्ययन है, जिसमें प्रतीक्षा, निराशा, आशा और निरर्थकता की भावनाएँ आधुनिक जीवन की यथार्थता के रूप में सामने आती हैं।

परिचय

साहित्य और विशेषकर नाटक विधा मानव जीवन की गुत्थियों, उसकी समस्याओं और अस्तित्वगत संकटों को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम रही है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यूरोपीय समाज ने दो विश्वयुद्धों, राजनीतिक अस्थिरता और मानवीय मूल्यों के क्षरण का गहरा अनुभव किया। इन्हीं परिस्थितियों ने "एब्सर्ड थियेटर" (Absurd Theatre) को जन्म दिया, जिसमें जीवन की निरर्थकता, अनिश्चितता और मानव की अस्तित्वगत पीड़ा को प्रमुखता से उभारा गया। इस धारा के सर्वाधिक चर्चित नाटकों में से एक है सैम्युअल बेकेट का "वेटिंग फॉर गोडो"।

यह नाटक 1953 में पहली बार मंचित हुआ और शीघ्र ही विश्वभर में प्रसिद्ध हो गया। इस नाटक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कोई ठोस घटनाक्रम नहीं दिखाई देता, बल्कि दो पात्र व्लादिमीर और एस्ट्रागोन निरंतर किसी गोडो

नामक व्यक्ति की प्रतीक्षा करते रहते हैं। गोडो कौन है, क्यों आएगा, आएगा भी या नहीं— इन प्रश्नों का उत्तर नाटक में नहीं मिलता, और यहीं से इसका दार्शनिक व प्रतीकात्मक महत्व बढ़ जाता है। यह नाटक मनुष्य की उस मानसिक अवस्था को सामने लाता है जिसमें वह जीवनभर किसी आशा, सहारे या उद्धारकर्ता की प्रतीक्षा में रहता है, किंतु अंततः उसे अनिश्चितता ही प्राप्त होती है। "वेटिंग फॉर गोडो" केवल नाटक नहीं बल्कि आधुनिक मनुष्य की मानसिक दशा का आईना है, जिसमें जीवन की निरर्थकता, समय की व्यर्थता और प्रतीक्षा का अंतहीन चक्र गहराई से चित्रित होता है। यही कारण है कि यह नाटक आज भी साहित्यकारों, दार्शनिकों और शोधकर्ताओं के अध्ययन का केंद्रीय विषय बना हुआ है।

साहित्य मानवी जीवन की जटिलताओं, अनुभवों और संघर्षों को अभिव्यक्त करने का सर्वाधिक प्रभावी माध्यम है। नाटक की विधा अपने संवाद, पात्रों और परिस्थितियों के माध्यम से समाज और व्यक्ति के बीच के अंतर्द्वंद्व को गहराई से प्रस्तुत करती है। बीसवीं शताब्दी का समय सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अस्थिरताओं का काल रहा, जिसने साहित्य और रंगमंच पर गहरा प्रभाव डाला। इसी पृष्ठभूमि में अस्तित्ववादी दर्शन और 'एब्सर्ड थिएटर' की अवधारणा विकसित हुई, जिसने जीवन की निरर्थकता, अनिश्चितता और मानव की प्रतीक्षा-मानसिकता को केंद्र में रखा। इस धारा का सबसे प्रमुख और चर्चित नाटक है सैम्युअल बेकेट का "वेटिंग फॉर गोडो"। यह नाटक 1953 में प्रस्तुत हुआ और आधुनिक रंगमंच की धारा को एक नई दिशा प्रदान की। इसमें दो पात्र व्लादिमीर और एस्ट्रागोन किसी 'गोडो' नामक व्यक्ति की प्रतीक्षा करते रहते हैं, जो कभी भी सामने नहीं आता। गोडो का चरित्र अस्पष्ट है और वह प्रतीक बन जाता है—कभी ईश्वर का, कभी आशा का, तो कभी मानव जीवन के उद्देश्य का। इस नाटक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कोई निश्चित कथानक या पारंपरिक घटना-क्रम नहीं है, बल्कि प्रतीक्षा की लंबी प्रक्रिया ही कथा बन जाती है। यह प्रतीक्षा आधुनिक मनुष्य की उस स्थिति को व्यक्त करती है, जिसमें वह जीवनभर किसी सहारे, उद्धारकर्ता या समाधान की तलाश में भटकता रहता है।

वेटिंग फॉर गोडो जीवन की उस निरर्थकता और शून्यता को प्रकट करता है, जो युद्धोत्तर समाज की वास्तविकता बन चुकी थी। इस प्रकार यह नाटक केवल साहित्यिक कृति न होकर एक दार्शनिक दस्तावेज है, जो मनुष्य की मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक स्थिति का गहरा अध्ययन प्रस्तुत करता है।

विषय का चुनाव

किसी भी शोध या अध्ययन कार्य में विषय का चुनाव अत्यंत महत्वपूर्ण चरण होता है, क्योंकि वही संपूर्ण शोध की दिशा और स्वरूप निर्धारित करता है। "वेटिंग फॉर गोडो" जैसे नाटक को अध्ययन का विषय चुनने के पीछे कई ठोस कारण हैं। सर्वप्रथम, यह नाटक बीसवीं शताब्दी के "एब्सर्ड थिएटर" का प्रतिनिधि नाटक माना जाता है, जिसमें मानव जीवन की निरर्थकता, प्रतीक्षा और अस्तित्वगत संकट को गहराई से प्रस्तुत किया गया है। युद्धोत्तर यूरोप की सामाजिक और मानसिक स्थितियों ने साहित्य को नया स्वरूप दिया, और सैम्युअल बेकेट का यह नाटक उसी समय की उपज है। दूसरे, वेटिंग फॉर गोडो का कोई निश्चित कथानक न होकर प्रतीक्षा ही उसकी कथा है, जो परंपरागत नाट्यरचना से भिन्न है। इस नवीन प्रयोग ने इसे अध्ययन योग्य बना दिया है।

तीसरे, इस नाटक के पात्र, उनके संवाद और परिस्थितियाँ मानवीय स्थिति की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति करती हैं, जो शोधार्थियों और समीक्षकों के लिए हमेशा आकर्षण का विषय रही हैं। चौथे, गोडो नामक चरित्र का प्रत्यक्ष उपस्थित न होना और उसके चारों ओर निर्मित रहस्य, नाटक को गहन दार्शनिक विमर्श की ओर ले जाता है, जिसे समझना और व्याख्यायित करना चुनौतीपूर्ण है। अतः इस नाटक का चयन न केवल आधुनिक साहित्य और रंगमंच की समझ को गहराने के लिए किया गया है, बल्कि यह जानने के लिए भी कि मानव जीवन में प्रतीक्षा, निराशा और आशा का क्या स्थान है। इस प्रकार "वेटिंग फॉर गोडो" का अध्ययन विषय के रूप में अत्यंत सार्थक और उपयोगी है।

किसी भी शोध प्रबंध की सफलता काफी हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि शोधार्थी ने अपने विषय का चुनाव किस दृष्टिकोण से किया है और वह विषय अकादमिक क्षेत्र में कितना प्रासंगिक है। साहित्य विशेषकर नाटक विधा केवल

मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि वह समाज की परिस्थितियों, व्यक्ति की मानसिकता और जीवन के गहन सत्य का दर्पण भी है। इसी दृष्टि से "वेटिंग फॉर गोडो" जैसे नाटक को अध्ययन का विषय चुनना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह नाटक 1953 में पहली बार मंचित हुआ और शीघ्र ही आधुनिक रंगमंच की धारा में एक मील का पत्थर सिद्ध हुआ। इसमें परंपरागत नाट्यरचना से हटकर जीवन की निरर्थकता, प्रतीक्षा और अनिश्चितता को केंद्र में रखा गया है।

संशोधन के उद्देश्य

1. नाटक "वेटिंग फॉर गोडो" के कथानक, संरचना और शिल्प का गहन अध्ययन करना।
2. इस नाटक में निहित "एब्सर्ड थिएटर" की विशेषताओं को समझना और उनकी व्याख्या करना।
3. गोडो नामक चरित्र की प्रतीकात्मकता को स्पष्ट करना तथा उसके दार्शनिक और सामाजिक संदर्भों की पड़ताल करना।
4. नाटक में प्रस्तुत प्रतीक्षा, निराशा और आशा की भावनाओं का आधुनिक जीवन से संबंध स्थापित करना।
5. व्लादिमीर, एस्ट्रागोन, पोज़ो और लकी जैसे पात्रों के माध्यम से मानव जीवन की मानसिक और सामाजिक स्थिति को समझना।

गृहितक

1. यह नाटक परंपरागत कथानक और शिल्प से हटकर "एब्सर्ड थिएटर" की सभी प्रमुख विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करता है।
2. नाटक में प्रस्तुत गोडो का चरित्र प्रत्यक्ष रूप से अनुपस्थित होते हुए भी आशा, उद्धार और ईश्वर का प्रतीक है।
3. नाटक के दोनों मुख्य पात्र व्लादिमीर और एस्ट्रागोन मानव जीवन की उस स्थिति के प्रतिनिधि हैं, जिसमें व्यक्ति निरंतर प्रतीक्षा करता है, किंतु उसे कोई निश्चित परिणाम प्राप्त नहीं होता।
4. यह नाटक युद्धोत्तर यूरोपीय समाज की निराशा, असुरक्षा और अस्तित्वगत संकट का सटीक चित्रण करता है।
5. प्रतीक्षा की प्रक्रिया ही नाटक का केंद्रीय बिंदु है, जो जीवन की निरर्थकता और मानव की असहायता को उजागर करती है।

अभ्यास पद्धती

- विषय उद्देश्य
- जानकारी संकलन
- विश्लेषणात्मक पद्धती
- सांख्यिकीय जानकारी
- निष्कर्ष और शिफारसी

विषय विवेचन

सैम्युअल बेकेट का "वेटिंग फॉर गोडो" आधुनिक नाटक और "एब्सर्ड थिएटर" की परंपरा में एक विशिष्ट स्थान रखता है। इस नाटक में पारंपरिक कथानक का अभाव है, किंतु इसकी संपूर्ण संरचना जीवन की निरर्थकता और अनिश्चितता के इर्द-गिर्द बुनी गई है। व्लादिमीर और एस्ट्रागोन जैसे पात्र प्रतीक्षा के माध्यम से उस मनुष्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो जीवन भर किसी आशा, सहारे अथवा उद्धारकर्ता की प्रतीक्षा करता है। गोडो का चरित्र प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित नहीं है, फिर भी वह पूरे नाटक का केंद्र है, जो प्रतीकात्मक रूप से ईश्वर, आशा और उद्धार का द्योतक माना जा सकता है। नाटक में पोज़ो और लकी जैसे पात्र शक्ति, दासता और मानव संबंधों की विडंबना को उजागर करते हैं।

संवादों की पुनरावृत्ति, घटनाओं की कमी और समय का बार-बार व्यर्थ गुजरना, इस नाटक की विशिष्ट विशेषताएँ हैं,

जो आधुनिक जीवन की शून्यता और निरर्थकता को गहराई से सामने लाती हैं। प्रतीक्षा की यह अंतहीन प्रक्रिया दर्शकों को यह सोचने पर विवश करती है कि क्या वास्तव में जीवन का कोई निश्चित उद्देश्य है या मनुष्य केवल व्यर्थ की आशाओं और अपेक्षाओं में उलझा हुआ है। यही कारण है कि "वेटिंग फॉर गोडो" को केवल एक नाटक न मानकर मानव अस्तित्व का दार्शनिक विवेचन समझा जाता है। यह नाटक न केवल युद्धोत्तर यूरोपीय समाज की मानसिक स्थिति का प्रतिबिंब है, बल्कि आज भी समकालीन जीवन की वास्तविकताओं के संदर्भ में प्रासंगिक और विचारणीय बना हुआ है।

साहित्य विशेषकर नाटक विधा केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि वह मानव जीवन के विविध पक्षों, सामाजिक परिस्थितियों और अस्तित्वगत प्रश्नों को उजागर करने का माध्यम भी है। सैम्युअल बेकेट का "वेटिंग फॉर गोडो" इसी विशेषता का ज्वलंत उदाहरण है, जिसमें परंपरागत कथानक और घटनाओं का अभाव होने के बावजूद यह नाटक आधुनिक रंगमंच का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज माना जाता है। इस नाटक का मूल आधार "प्रतीक्षा" है। व्लादिमीर और एस्ट्रागोन जैसे पात्र गोडो की प्रतीक्षा करते रहते हैं, जो अंत तक मंच पर नहीं आता। गोडो के न आने के बावजूद उसकी उपस्थिति पूरे नाटक में महसूस होती है और वह आशा, ईश्वर तथा उद्धार का प्रतीक बन जाता है। इस प्रकार प्रतीक्षा की प्रक्रिया ही नाटक का केंद्रीय कथानक है, जो आधुनिक मनुष्य के जीवन की निरर्थकता और अधूरी आशाओं को सामने लाती है।

नाटक का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू इसके पात्रों की मानसिक और सामाजिक स्थिति है। व्लादिमीर और एस्ट्रागोन मानव जीवन की असहायता और दिशाहीनता का प्रतीक हैं। पोज़ो और लकी का संबंध शक्ति और दासता की प्रवृत्तियों को उजागर करता है, जहाँ एक शोषक है और दूसरा शोषित। संवादों की पुनरावृत्ति, समय का व्यर्थ व्यतीत होना और घटनाओं का न होना—ये सभी तत्व जीवन की एकरसता और शून्यता को चित्रित करते हैं।

नाटककार सैम्युअल बेकेट

सैम्युअल बेकेट का जन्म 1906 में आयरलैंड में हुआ। उन्होंने प्रारंभिक शिक्षा डबलिन में प्राप्त की और आगे चलकर फ्रांस में बस गए। वे बहुभाषी लेखक थे और अंग्रेज़ी तथा फ्रांसीसी दोनों भाषाओं में समान दक्षता के साथ लेखन करते थे। उनका जीवन साधारण नहीं था— उन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान प्रतिरोध आंदोलन में सक्रिय भाग लिया। युद्ध का यह अनुभव उनके साहित्य में गहरे रूप में झलकता है। बेकेट के लेखन का केंद्र बिंदु है— मानव जीवन की निरर्थकता और अस्तित्ववादी संकट। उनके पात्र प्रायः अकेलेपन, प्रतीक्षा और अनिश्चितता से जूझते हैं। उनकी प्रमुख कृतियों में मोलॉय, मैलोन डाइज, द अननेमेबल और एंडगेम शामिल हैं। परंतु ष्वेटिंग फॉर गोडोष उनकी सबसे चर्चित और चर्चित कृति है।

बेकेट को 1969 में साहित्य का नोबेल पुरस्कार मिला। उनके नाटकों में संवाद छोटे-छोटे, खंडित और बार-बार दोहराए जाते हैं। वे परंपरागत नाट्यशैली से हटकर जीवन की सच्चाई को नग्न रूप में प्रस्तुत करते हैं। ष्वेटिंग फॉर गोडोष को उन्होंने 1948-49 में लिखा और 1953 में इसका पेरिस में मंचन हुआ। तब से यह नाटक न केवल यूरोप बल्कि विश्व रंगमंच पर अपनी अलग पहचान बना चुका है।

कथावस्तु

'वेटिंग फॉर गोडो' का कथानक सतही दृष्टि से देखने पर बहुत सरल प्रतीत होता है। यह दो अंकों का नाटक है। मंच पर केवल एक सूखा पेड़, एक सड़क और दो पात्र— एस्त्रागोन (गोगो) और व्लादिमीर (डीडी) दिखाई देते हैं। ये दोनों किसी गोडो नामक व्यक्ति का इंतजार कर रहे हैं। परंतु न तो उन्हें पता है कि गोडो कौन है, और न ही यह निश्चित है कि वह कब आएगा।

पहले अंक में दोनों पात्र बातचीत करते हैं— कभी झगड़ते, कभी हँसते, कभी दार्शनिक बातें करते। उनके संवादों से जीवन की निरर्थकता, भूख, थकान और आशा की झलक मिलती है। बीच में पोज़ो और उसका दास लकी प्रवेश करते हैं। पोज़ो स्वामी है और लकी पर पूर्ण नियंत्रण रखता है। लकी का लंबा, उलझा हुआ भाषण जीवन की जटिलता और असंगति

का प्रतीक है। अंत में एक लड़का आता है और कहता है कि गोडो आज नहीं आएगा, शायद कल आए।

दूसरे अंक में भी लगभग वही घटनाएँ दोहराई जाती हैं। वृक्ष पर कुछ पत्ते उग आते हैं, पर जीवन में कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं होता। अंततः फिर वही संदेश आता है– गोडो आज नहीं आएगा। इस प्रकार नाटक वहीं समाप्त होता है, जहाँ से शुरू हुआ था।

नाट्यरूप विशेषताएँ

'वेटिंग फॉर गोडो' पारंपरिक नाट्यरूप से बिल्कुल अलग है। इसमें कथानक की रेखीयता, चरमोत्कर्ष या निष्कर्ष नहीं मिलता। इसकी विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. एब्सर्ड शैली– यह 'थिएटर ऑफ एब्सर्ड' का उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें जीवन की निरर्थकता और हास्यास्पदता को मंच पर उतारा गया है।

2. संवाद प्रधानता– कथा को आगे बढ़ाने के लिए कोई ठोस घटना नहीं होती, केवल संवाद और बातचीत ही माध्यम हैं।

3. दोहराव की तकनीक– दोनों अंकों की घटनाएँ लगभग समान हैं, जिससे प्रतीक्षा की अंतहीनता का अनुभव होता है।

4. प्रतीकात्मक मंच-सज्जा– केवल एक सूखा वृक्ष और सुनसान स्थान। यह जीवन की बंजरता और शून्यता को दर्शाता है।

5. हास्य और व्यंग्य– निराशा के बीच पात्रों की बातचीत में हास्य और विडंबना भी है, जो नाटक को जीवंत बनाता है।

6. समय की अवधारणा– समय का प्रवाह अस्पष्ट है। पात्रों को न तो बीते हुए समय का ज्ञान है और न आने वाले का।

ये विशेषताएँ इस नाटक को पारंपरिक नाट्यरूप से अलग करके आधुनिक जीवन की असंगति का प्रतीक बनाती हैं।

प्रमुख पात्रों का विश्लेषण

नाटक में पाँच पात्र दिखाई देते हैं, परंतु गोडो अदृश्य रहता है।

व्लादिमीर (डीडी)– वह अपेक्षाकृत अधिक सोचने वाला, तर्कशील और दार्शनिक प्रवृत्ति का पात्र है। जीवन, ईश्वर और मुक्ति पर चिंतन करता है।

एस्त्रागोन (गोगो)– वह अधिक व्यवहारिक और शारीरिक कष्टों से ग्रस्त पात्र है। जूते और भूख की चिंता उसे सताती है। वह जल्दी निराश हो जाता है।

पोज़ो– प्रभुत्व और सत्ता का प्रतीक। वह लकी को पूरी तरह से नियंत्रित करता है।

लकी– दासता और बंधन का प्रतीक। उसका लंबा, असंगत भाषण बौद्धिक और आध्यात्मिक भ्रम का प्रतिनिधित्व करता है।

गोडो– नाटक का अदृश्य केंद्र। उसकी प्रतीक्षा ही पूरी कथा का आधार है। वह कभी मंच पर नहीं आता, परंतु उसकी अनुपस्थिति ही सबसे बड़ा प्रभाव छोड़ती है।

ये पात्र किसी न किसी मानवीय प्रवृत्ति और जीवन-दृष्टि का प्रतीक हैं।

प्रतीकवाद

'वेटिंग फॉर गोडो' में प्रतीकवाद अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

गोडो– यह ईश्वर, मुक्ति, आशा या जीवन के उद्देश्य का प्रतीक हो सकता है।
सूखा वृक्ष– जीवन की बंजरता, परंतु उस पर उगे पत्ते आशा की हल्की किरण का प्रतीक।
प्रतीक्षा– मानव जीवन का मूल स्वरूप। मनुष्य सदैव किसी भविष्य की आशा में जीता है।
दोहराव– दिनचर्या की निरर्थकता और जीवन की चक्रीय गति।
पोज़ो और लकी का संबंध– शोषण और दासता की सामाजिक व्यवस्था का प्रतीक।
इस प्रकार प्रतीकों के माध्यम से बेकेट ने मानव अस्तित्व की गहराई को व्यक्त किया है।

दार्शनिक पहलू

यह नाटक अस्तित्ववादी दर्शन से सीधे जुड़ा है। जाँ पॉल सार्त्र और अल्बेयर कामू जैसे दार्शनिकों ने जीवन की निरर्थकता पर जोर दिया। बेकेट ने उसी विचारधारा को नाट्यरूप दिया। नाटक यह प्रश्न उठाता है कि क्या जीवन का कोई अंतिम उद्देश्य है? या हम केवल समय काटने और प्रतीक्षा करने के लिए जीते हैं? गोडो की प्रतीक्षा वस्तुतः उस ष्मुक्तिष या ष्अर्थष की प्रतीक्षा है, जो कभी पूरी नहीं होती। इस प्रकार यह नाटक हमें जीवन की वास्तविकता से रूबरू कराता है। मनुष्य चाहे कितना भी प्रयास करे, जीवन की अनिश्चितता और निरर्थकता से वह बच नहीं सकता।

आधुनिक जीवन की प्रासंगिकता

यद्यपि यह नाटक 1950 के दशक में लिखा गया था, परंतु इसकी प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है। आज का मनुष्य तकनीकी प्रगति के बावजूद अकेलापन, तनाव और उद्देश्यहीनता से जूझ रहा है। हम सभी किसी न किसी ष्गोडोष की प्रतीक्षा में हैं– चाहे वह नौकरी हो, सफलता हो, शांति हो या ईश्वर। यह प्रतीक्षा कभी समाप्त नहीं होती। नाटक हमें यह एहसास कराता है कि जीवन की वास्तविकता इसी प्रतीक्षा में है।

समीक्षाएँ

आलोचकों ने इस नाटक को विविध दृष्टियों से देखा है। कुछ ने इसे ष्नाटक जिसमें कुछ नहीं होताष कहा, परंतु यही इसकी शक्ति है। मार्टिन एसलिन ने इसे 'थिएटर ऑफ एब्सर्ड' का आदर्श उदाहरण माना। दर्शकों ने इसमें अपने जीवन की झलक देखी। कई समीक्षकों ने इसे धार्मिक प्रतीकवाद से जोड़ा और कहा कि गोडो ईश्वर का प्रतीक है। कुछ ने इसे राजनीतिक और सामाजिक प्रतीक माना। परंतु सभी इस पर सहमत हैं कि यह नाटक दर्शक को गहराई से सोचने पर मजबूर करता है।

निष्कर्ष

सैम्युअल बेकेट का "वेटिंग फॉर गोडो" आधुनिक नाट्य परंपरा में एक ऐसे मोड़ का प्रतीक है, जहाँ कथानक और घटनाओं की बजाय मानव जीवन की निरर्थकता, प्रतीक्षा और अस्तित्वगत संकट को केंद्र में लाया गया है। इस नाटक के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि मानव जीवन अक्सर अधूरी आशाओं, अनिश्चितताओं और प्रतीक्षा के अंतहीन चक्र में उलझा हुआ है। व्लादिमीर और एस्ट्रागोन जैसे पात्र उस मनुष्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो किसी सहारे, उद्धारकर्ता या आशा की प्रतीक्षा करता है, किंतु अंततः उसे केवल निराशा और शून्यता ही प्राप्त होती है। गोडो का चरित्र प्रत्यक्ष रूप से अनुपस्थित होते हुए भी जीवन के अर्थ, ईश्वर की अवधारणा और मानव की आशाओं का प्रतीक बन जाता है।

पोज़ो और लकी के संबंधों के माध्यम से शक्ति, शोषण और दासता की प्रवृत्तियों का चित्रण किया गया है, जो समाज की विडंबनाओं को सामने लाता है। नाटक की संरचना, संवादों की पुनरावृत्ति और समय का व्यर्थ बीतना यह संकेत देते हैं कि जीवन का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं है और मनुष्य निरंतर असमंजस की स्थिति में जीने को विवश है। इस प्रकार यह नाटक न केवल युद्धोत्तर यूरोपीय समाज की मानसिकता का प्रतिबिंब है, बल्कि आज भी समकालीन जीवन की निरर्थकता

और अस्तित्वगत संकट को समझने का दार्शनिक और साहित्यिक आधार प्रदान करता है। अतः "वेटिंग फॉर गोडो" का अध्ययन हमें यह सिखाता है कि प्रतीक्षा, निराशा और आशा मानव जीवन का अविभाज्य हिस्सा हैं और यही तत्व जीवन की वास्तविकता तथा उसकी जटिलताओं को उजागर करते हैं।

स्त्रोत

1. बेकेट, सैम्युअल. वेटिंग फॉर गोडो, न्यूयॉर्क : ग्रोव प्रेस, 1954
2. बेकेट, सैम्युअल. वेटिंग फॉर गोडो (अनुवाद : हिंदी अकादमी संस्करण), नई दिल्ली : हिंदी अकादमी, 2005
3. एस्सलिन, मार्टिन. द थिएटर ऑफ द एब्सर्ड, लंदन : पेंगुइन बुक्स, 1961
4. भार्गव, हरीशंकर. आधुनिक यूरोपीय नाटक, इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 1987
5. रघुवंशी, प्रभाकर माचवे. पाश्चात्य नाट्यधारा, भोपाल : मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, 1992
6. कुंवर, नारायण. आधुनिक नाटक और रंगमंच, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2001
7. चौधरी, सत्येन्द्र. नाटक का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, वाराणसी : भारतीय विद्या प्रकाशन, 2010
8. Sen, Siddhartha. Beckett's Waiting for Godot: A Critical Study. New Delhi : Atlantic Publishers, 2014.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

पंचायती राज संस्थाओं में जनजातीय महिलाओं की भागीदारी

डॉ. प्रीति कुमारी
पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय पटना (बिहार)
Mohalla - sain takiya, IDH quater
P.O - Gulzarbagh District -Patna (Bihar) 800007
iampritysinha@gmail.com
9122933984

भारत एक लोकतांत्रिक देश है, जहां जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा शासन पद्धति पर जोर दिया है। महिलाओं को जागरूक बनाने तथा उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए 73वां संशोधन इस क्षेत्र में उठाया गया ठोस कदम है।[1] भारत की स्वतंत्रता के लिए देश में महिला नेतृत्व की बात की जाए तो अनुसूचित जनजातीय महिलाओं की अपेक्षा उच्च जाति की महिलाएं सामने आई। अनुसूचित जनजाति की महिला प्रतिनिधि को जागरूकता के अभाव में अपने पति/पिता के संरक्षण में कार्य करना पड़ता है। महात्मा गांधी एवं डॉ बाबा साहेब आंबेडकर ने महिलाओं को न्याय दिलाने के प्रयास किए और आधारशिला रखी। इन दोनों ने जातिगत भेदभाव एवं महिलाओं की परंपरागत स्थिति में सुधार लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[2]

अनुसूचित जनजातीय महिलाओं के लिए सामाजिक न्याय का दूसरा पक्ष पंचायती राज (13) संविधान संशोधन पारित होने के साथ प्रारंभ होता है। पंचायती राज व्यवस्था लागू होने के बाद महिलाओं को पर्याप्त आरक्षण प्रदान करने के लिए त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता में पर्याप्त विकास हुआ। पंचायतों में जनजातीय महिलाओं की सहभागिता ने उनमें चेतना एवं जागरूकता का विकास किया और महिलाओं को उनके अधिकारों से परिचित करवाया। वर्तमान समय में महिलाएं जितना राजनीति में भाग लेंगे, उतना उनका विकास होगा। ये महिलाएं अन्य महिलाओं का प्रतिनिधित्व कर महिलाओं से संबंधित कानून पारित करवाकर प्रत्येक महिला के जीवन में सुधार एवं विकास करेंगी।[3]

वर्तमान में भारत देश राजनीति के क्षेत्र में उभर कर सामने आई जनजातीय महिलाएं द्रौपदी मुर्मू देश की राष्ट्रपति बनीं, जो अन्य महिलाओं के लिए आदर्श एवं प्रेरणास्रोत बन गई।

पंचायत राज व्यवस्था द्वारा समाज में आई हुई परिवर्तन एक अवश्ध्यंभावी कल्पना है। स्वतंत्रता के पश्चात लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण में सुधार के कई प्रयास किए गए, जिनमें 73वां संविधान संशोधन अधिनियम काफी सराहनीय रहा। इस प्रयास के द्वारा जनजातीय महिलाओं को स्वशासन के स्वतंत्र इकाई के रूप में सरकार के तीसरे स्तर के रूप में कार्य कर पाना संभव हो पाया।

महिलाएं हमारे समाज के आधे भाग का प्रतिनिधित्व करती हैं। जनजातीय समाज में भी महिलाओं की संख्या पुरुष के लगभग बराबर ही हैं, लेकिन यदि जनजातीय महिलाओं की 73वां संविधान संशोधन अधिनियम व राजनीतिक सहभागिता का प्रतिशत देखा जाए तो वह नगण्य ही रही है। जनजातीय राजनीति में सक्रिय न होने के कई कारण हैं। आदिवासी समाज की महिलाएं शिक्षा और साधन के अभाव में आगे नहीं बढ़ पा रही हैं। महिलाओं के विकास न होने के

प्रमुख कारण पितृसत्तात्मक समाज की प्रधानता है। यह स्त्रियों को कठपुतली समान मानकर उन्हें अपने आदेशों का पालन करने के लिए दबाव डालता है। हिंसा, शोषण, साक्षरता दर का कम होना स्त्रियों के राजनीतिक अवसरों पर अपना प्रभाव डालता है।[4]

भारत में पंचायत चुनाव में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण प्राप्त है, लेकिन इसे आगे बढ़ाते हुए 50 प्रतिशत आरक्षण के प्रावधान लागू कर दिए गए, जिसे पंचायती राज संशोधन अधिनियम 2010 के तहत प्रदान किया गया है, जिससे स्थानीय निकायों में महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी में वृद्धि हुई। यह वृद्धि महिलाओं के प्रतिनिधित्व को बढ़ाने और उन्हें स्थानीय शासन में अधिक सक्रिय भूमिका देने के उद्देश्य से की गई। यह महिला प्रतिनिधियों के आत्मविश्वास को बढ़ाने और उन्हें स्वास्थ्य, शिक्षा तथा ग्रामीण विकास जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में प्रभावी नेतृत्व दिखाने में मदद करता है। झारखंड में आदिवासी महिलाएं सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक गतिविधियों में अधिक सक्रिय हैं। यही कारण है कि झारखंड के चार आदिवासी बहुल लोकसभा क्षेत्र में महिला मतदाताओं की निर्णायक भूमिका है, क्योंकि वहां मतदाता सूची में महिलाओं की संख्या पुरुषों से अधिक है। जिन चार लोकसभा सीट पर महिलाओं की संख्या पुरुषों से ज्यादा है, उनमें राजमहल, सिंहभूम, खूंटी और लोहरदगा शामिल हैं। ये सभी आरक्षित सीट हैं। इनसे जुड़ी कुछ सकारात्मक पहलू है, जो जनजातीय महिलाओं को राजनीतिक क्षेत्र में प्रोत्साहित करती हैं। झारखंड पंचायती राज संशोधन अधिनियम 2010 के तहत पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान है, जिनमें आदिवासी महिलाएं भी शामिल हैं। इस आरक्षण के परिणामस्वरूप महिला प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ी जिससे वे स्वास्थ्य, शिक्षा और कल्याण योजनाओं जैसी स्थानीय मुद्दों पर काम कर रही हैं। आदिवासी महिलाओं के लिए पंचायती राज प्रणाली ने उनके पारंपरिक अधिकारों को शासन में औपचारिक रूप देने का अवसर प्रदान किया।[5] हालांकि पितृसत्तात्मक समाज और पुरुष रिश्तेदारों के प्रभाव के कारण उनकी वास्तविक निर्णय लेने की शक्ति अक्सर सीमित रहती है।

चुनौतियां एवं बाधाएं

नाममात्र की उपस्थिति- आरक्षण के बावजूद पितृसत्तात्मक रीति-रिवाजों और पुरुषों के प्रभाव के कारण कई महिला प्रतिनिधि केवल नाममात्र की भूमिका निभाती है। ये केवल हस्ताक्षर तक ही सीमित रह जाती है। अशिक्षा एवं वित्तीय संसाधनों की कमीरू- शिक्षा की कमी, वित्तीय बाधाएं और पारिवारिक विरोध जैसे कारक आदिवासी महिला प्रतिनिधियों के प्रभाव और निर्णय लेने की क्षमता को बाधित करती है।

सामाजिक रूढ़ियां- महिलाओं को समाज में अभी भी पतृसत्तात्मक और रूढ़िवादी सोच का सामना करना पड़ता है, जो उनकी वास्तविक भागीदारी में बाधा डालती है।

निष्कर्ष

झारखंड में पंचायती राज संस्थाओं में जनजातीय महिलाओं की भागीदारी बढ़ रही है, लेकिन इसे मजबूत करने के लिए इन सामाजिक संरचनात्मक बाधाओं को दूर करने की आवश्यकता है। आदिवासी महिलाओं को उनके अधिकारों एवं शक्तियों और पंचायती राज कानूनों के बारे में प्रशिक्षण देना होगा, ताकि वे प्रभावी ढंग से अपनी भूमिका निभा सकें। जनजातीय महिलाओं के राजनीतिक क्षेत्र में सिर्फ आरक्षण ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि महिलाओं के वास्तविक सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है कि उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल किया जाए, उनकी आवाज को सुना जाए। महिलाओं को अधिक सशक्त बनाने और निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए निरंतर प्रयास की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. शर्मा, डॉ० श्रीनाथ एवं डॉ मनोज कुमार (2009) : पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस दिल्ली पेज नं० 113.
2. राजकुमार (2009) : नारी के बदलते आयाम, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस दिल्ली 2009 पेज नं० 121
3. सिंह, अनुज कुमार (2013) : शोषण, संघर्ष और शहादत, प्रभात प्रकाशन पेज नं० 383
4. शर्मा, डॉ० इंदु अग्रवाल, शिवाली (2011) : महिला सशक्तिकरण के नए आयाम, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
5. रघुवंशी, कमलेश (2013) : और कितना वक्त चाहिए झारखंड को, प्रभात प्रकाशन।

భక్త కథామంజరి – బసవ పురాణము

"భక్తి ఉద్యమకారుడు" అయిన పాల్కురికి సోమనాథుడు రెండు ప్రముఖమైన రచనలు చేశాడు. ఒకటి పండితారాధ్య చరిత్ర మరొకటి బసవపురాణము. మొదటిది "విజ్ఞానాంబుధి" అయితే రెండవది "భక్తిరస తరంగిణి" 63 మంది భక్తాగ్రగణ్యులు కథల సమాహారమే బసవపురాణము. తెలుగు సాహితీ చరిత్రలో తొలి స్వతంత్రకవి పాల్కురికి సోమనాథుడు. పాల్కురికి సోమన భాష విషయంలో కూడా కొత్త పుంతలు తొక్కాడు. అప్పటి వరకు సంస్కృతానికే ఆదరణ వుండేది. తెలుగంటే చిన్న చూపు.

"తెలుగు మాటలనంగ వలదు
వేదముల కొలదియ కాచుడు" అని ఆంధ్రాభిమానాన్ని మొదట చాటినవాడు కూడా పాల్కురికి సోమనే.

సోమన తనను గూర్చి

"భృంగిరిటి గోత్రుడను గురు
లింగార్య తనూజుండ శివకులీనుడ దుర్వ్యా
సంగ వివర్జిత చరితుడ
జంగమ లింగప్రసాద సత్ప్రణుండన్"

అని తన తొలి రచన అయిన "అనుభవసారం'లలో పేర్కొన్నాడు. పాల్కురికి సోమన కాలం గురించి భిన్నాభిప్రాయాలున్నాయి. కాని సుమారు 1160–1230 ప్రాంతం వాడని చాలామంది అంగీకరించారు. అనుభవసారం, బసవ పురాణం, వృషాధిపశతకం, చతుర్వేద సారం, పండితారాధ్య చరిత్ర అనే రచనలు దొరికాయి. పాల్కురికి సోమన సంస్కృతాంధ్ర కర్ణాట భాషల్లో గొప్ప విధ్వాంసుడు. సోమన చెన్నమల్లు సీసాలు, గద్యలు, ఉదాహరణలు, పచక, అష్టకం, స్తవాలు కూడా రచించాడు. సోమనాథ భాష్యం, రుద్రభాష్యం, సంస్కృత

బసవొదాహరణం, వృషభాష్టకం, త్రివిధ లింగాష్టకం అనేవి సంస్కృతంలో వ్రాసినవి కాగా సద్గురు రగడ, చెన్న బసవ రగడ, బసవలింగ నామావళి. మొదదలైనవి కన్నడభాషలో లఘు రచనలు.

బసవ పురాణమును మొట్టమొదట వాఙ్మయ ప్రపంచమున ప్రకాశ పరిచినది భాషోద్ధారకులగు చార్లెస్ ఫిలిప్ బ్రౌను దొరగారు, జంగ వాఙ్మయము యొక్క స్వరూప స్వభావములను చరిత్రను మొదట పరిశోధకులకు ఆంగ్లమున పాశ్చాత్య పండితులకు తెల్పినది బ్రౌను దొరగారే !

వీరశైవ మతమునకు ఆధార భూతమగు కన్నడ దేశమునందు వీరశైవ వాఙ్మయ పరిశోధకులందరికి మార్గదర్శకత్వమైనవాడు బ్రౌను దొరయే. వీరశైవ మత స్వరూపమును చక్కగా జీర్ణించుకొని, వ్రాసిన గ్రంథములే ఇతరులందరికి ప్రామాణికములైనవి.

"బసవ పురాణం" లో బసవుడ్ని ఈశ్వరుడుగా భావించి చెప్పిన పంక్తులు కోకొల్లలు. కింది పంక్తులు సోమన వీరశైవ మతాభిమానాన్ని ప్రకటిస్తాయి.

"బసవాయనగ విన్న బాస లొండేల ?
పసులకు నైనను బ్రబలదే భక్తి ?
బసవాయనిన జాలు బాస లొండేల ?
వెసగాలు కార్చిచ్చు వెన్నెల గాదె ?
.....
బసవ! నీ కొడలెల్ల భక్తి "

పాల్కురికి సోమనాథుడు వస్తువును (కథను) సంస్కృత పురాణాల నుంచి గ్రహింపలేదు. దేశీయమైన కథలకు మహిమలకు ప్రాధాన్యమిచ్చి రచనలు చేసాడు. శివునికి సంబంధించిన, శివుని సర్వేశ్వరునిగా వేదకర్తగా బోధించే వస్తువులే స్వీకరించాడు. శివకవుల దృష్టిలో శివభక్తులు కూడా శివునితో సమానులే. అందువల్లనే బసవన, పండితారాధ్యుల మీద కావ్యాలు రచింపబడ్డాయి. బెజ్జమహాదేవి మాతృ హృదయాన్ని వర్ణించిన తీరు అద్భుతం.

"చులకన మరి తల్లిలేని సుతుడు" అనే సూక్తిని శివుడికి అన్వయించాడు. మగ్ధ సంగయ్య కథలో ఈ పద్యం పరిశీలించ దగినది.

"జగములన్నియు దన శక్తిఁచాలించు
జగదేక సుందరి సంతతి మేము
శివరహస్యాది ప్రసిద్ధ శాస్త్రములు
శివునిచే బడసిన చెలువ శిష్యులము "

'సిరియాలుని కథ' సుప్రసిద్ధమైనది. ఈ కథ ఆనాడు సమాజంలో జరిగినట్టు భావించవలసి వస్తుంది. మాయా తపసిగా వచ్చిన పరమేశ్వరునికి కన్న కొడుకునే వంటగా తయారు చేసి ప్రసాదంగా పెట్టే తల్లిదండ్రుల వృత్తాంతం గల సిరియాలుని కథ శివభక్తి తత్పరతకి పరాకాష్ఠ. శివభక్తులు, జంగమ దేవరలు ప్రమథుల అవతారంగా భావించే తత్త్వం వారి కథల్లో కనబడుతుంది.

బసవ పురాణము తెలుగు సాహిత్యంలో శుద్ధమైన దేశి పద్ధతిలో తొలిసారి వెలువడిన స్వతంత్ర్యమైన వీరశైవ పురాణము. ఏడు అశ్వాసముల ద్విపద కావ్యము. ఇందు సి.పి.బ్రౌను ప్రకారము 6288 ద్విపదలున్నవి. ఇది రుద్రాది మహాపురాతన కథా వ్యాప్తమయినది. మహా పురుషుడగు బసవన చరిత్రయే ఇందు ప్రధానేతివృత్తము.బసవన పూర్వాచారములు జననము, వ్యవహార దక్షలు, మహాత్మ్యములు, వీరశైవ ధర్మ రక్షా ప్రచారములు, జంగమసేవ, లింగైక్యము మొదలైన వివిధ విషయములతోపాటు ప్రాసంగికముగా సుమారు 75 మంది భక్తుల కథలు చెప్పబడినవి. ఈ భక్తులు ద్రావిడాంధ్ర కర్ణాటక మహారాష్ట్ర దేశములకు సంబంధించిన వారు. బసవనకు సమకాలికులు, పూర్వులగు శివభక్తులు బసవన చరిత్రకు ఈ భక్తుల చరిత్రలు ఉపాఖ్యానములుగా జోడింపబడిన శివాంశ సంభూతులగు మహాపురుషుల మహాత్మ్యాధికములు అలౌకికములుగా వర్ణింపబడుటచే దీనిని పురాణమని పేర్కొనవచ్చును. బసవన పురాణపురుషుడు కాడు. చారిత్రక వ్యక్తి. క్రీ.శ. 1162 ప్రాంతమున చాళుక్య సామ్రాజ్యము నేలిన బిజ్జియని మంత్రి, దండనాయకుడు.

పాల్కురికి సోమన పాత్ర చిత్రణలో అందేవేసిన చెయ్యి, సోమనాథాది శివకవుల పాత్రలు సామాన్య ప్రజానీకానికి అత్యంత సన్నిహితంగా ఉంటాయి. జంగమ సేవనం ప్రధానంగా, శివభక్తులు శివునిలో సమానంగా భావించి పాత్రల్ని తలచడం వీరి ప్రత్యేకత. బసవపురాణంలో ముగ్ధనీంగయ్య, బెజ్జ మహాదేవి, గోడ గూచి, కన్నప్ప, మడివేలు మాచయ్య వంటి పాత్రల్ని గొప్ప పాత్రలుగ తీర్చిదిద్దటం గమనార్హం. శివకవుల పాత్రలు కూడా ఒకే మూసలో పోసినట్లు కాకుండా వైవిధ్యాన్ని కలిగి వుండటం మరో ప్రత్యేకత. పరమేశ్వరుడు పాట్లు పడటానికి కారణం అతనికి తల్లిలేక పోవటమే కారణమంటూ పాల్కురికి సోమన ఇలా వివరిస్తాడు – మనల్ని కదిలిస్తాడు.

"తల్లి గల్గిన నేల తపసిగా నిచ్చు ?
తల్లి గల్గిన నేల తలజడల్గట్టు?
తల్లి యున్న విషంబు ద్రావ నేవిచ్చు?
తల్లి యుండిన తోళ్ళు దాల్చ నేలిచ్చు?
తల్లి పుచ్చునె సుతువల్ల కాటికిని?

మాతృప్రేమ ఆవశ్యకతను చాటిచెప్పే ఈ పంక్తుల్లో వింత కవితాశక్తి ఇమిడివుందో! తాను తెచ్చిన పాలను శివుడు ఆరగింపలేదని గోడగూచి

"పాలేల ఆరగింపవు" అంటూ ఆవేధన చెందే దృశ్యం మనస్సును గాయపరుస్తుంది– ఆర్ద్ర పరుస్తుంది. ప్రతి పాత్ర యొక్క చిత్తవృత్తాల్ని మన కళ్ళ ముందుంచుతాడు సోమన.

'బసవ పురాణంలోని భక్తులు సాక్షాత్తు పరమశివుని సమానులే. వారి ఆస్థానాన్ని సాధించడానికి కేవలం శివునిపై వారికి గల అపారమైన నమ్మకం, ప్రేమ, వాత్సల్యం, సేవ మొదలైన సాధనాలే కాని వేదోక్త పూజలు వ్రతాలు కావు ఆ కారణం చేత ఈ కథలు జనసామాన్యంలోకి వెల్లిపోయాయి.

బసవ పురాణంలో పేర్కొన్న కొన్ని ముఖ్యమైన కథలు

1. నందికేశ్వరుడి వృత్తాంతం
2. బసవేశ్వరుడి వృత్తాంతం
3. కోటకాటని కథ
4. మొఱటద వంకయ్య కథ
5. తిరు చిట్టంబలుని కథ
6. నక్కలు గుఱ్ఱాలైన కథ
7. ముగ్ధ సంగయ్య కథ
8. రుద్ర పశుపతి కథ
9. నక్క నయనారు కథ
10. బెజ్జ మహాదేవి కథ
11. గోడగూచి కథ
12. ఉడు మూంకన్నప్ప కథ
13. సకలేశ్వర మాది రాజయ్య కథ
14. మడివేలు మాచయ్య కథ
15. జగదేక మల్లుని కథ
16. సిరియాలుని కథ
17. నిమ్మవ్వ కథ
18. కొట్టరువు చోడని కథ
19. చాణుని కథ
20. పిట్టవ్వ కథ
21. కడమల నంబికథ
22. అడిభర్తుని కథ
23. కిన్నర బ్రహ్మయ్య కథ
24. ముసిడ చౌడయ్య కథ
25. తెలుగు బొమ్మయ్య కథ
26. ఏకాంత రామయ్య కథ
27. పిల్ల నైనారు కథ
28. తేడర దాసయ్య కథ
29. సోమన్న కథ
30. వీర శంకరుని కథ
31. శివనాగుమయ్య కథ
32. ఉద్భటుని కథ
33. కక్కయ్య కథ
34. భోగయ్య కథ
35. గుడ్డవ్వ కథ

పైన చెప్పిన కథలేకాక బసవ పురాణం లోని ప్రతి కథ భక్తిరస తరంగిణి. ప్రతి కథ చదవ దగ్గదే, వినదగ్గదే కావున ఈ రచనలు చేసిన పాల్కురికి సోమనాథుడు ప్రజల నాల్కలపై సూర్యచంద్రులు ఉన్నంత వరకు మానవ జీవి ఉన్నంత వరకూ జీవిస్తూనే ఉంటాడు.

గ్రంథ సూచిక

1. **బసవ పురాణము –** పాల్కురికి సోమనాథుడు రచించిన ద్విపద కావ్యం.
2. **తెలుగు సాహిత్య చరిత్ర –** డాక్టర్ ద్వా. నా. శాస్త్రి

"వెలయ బీజములోని వృక్షంబునట్ల నలరు శబ్దంలోపలి యర్థమట్ల
పర్వతంబులలోని ప్రతిశబ్దమట్ల సర్వంబునందును శర్యుండునట్ల."

– పాల్కురికి

–Dr.Adapa.Kedari,
Telugu Lecturer,
Y.V.N.R Government Degree College,
Kaikaluru,Eluru District,
Phone Number :9542943322
E-Mail Id:adapakedari71@gmail.com

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

कबीर आज अधिक प्रासंगिक हैं (कबीर की प्रासंगिकता : वर्तमान काल में)

मोहम्मद इबादुर रहमान खान
नामांकन संख्या : AU 211536
RDC – RNTU/R-D/23/068

डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय
शोध निर्देशक
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल
मध्य प्रदेश-464993

सारांश

कबीरदास, 15 वीं सदी के एक महान संत और कवि, आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने वे अपने समय में थे। उनके विचार और शिक्षाएँ आज के समाज की कई समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती हैं। कबीर ने सामाजिक समानता पर जोर दिया और जातिवाद, धार्मिक आडंबरों और अंधविश्वासों का कड़ा विरोध किया। उन्होंने कहा कि सभी मनुष्य समान हैं और ईश्वर एक है। आज के युग में, जहाँ सांप्रदायिक और धार्मिक वैमनस्य बढ़ रहा है, उनकी शिक्षाएं हमें प्रेम, सद्भाव और सहिष्णुता का संदेश देती हैं। उन्होंने कर्मकांड की बजाय सच्चे प्रेम और भक्ति को महत्त्व दिया। उनके दोहे सरल भाषा में जीवन के गहरे अर्थ समझाते हैं। वे हमें सिखाते हैं कि बाहरी दिखावे की जगह आंतरिक शुद्धता और ईमानदारी अधिक महत्वपूर्ण है।

कबीर की शिक्षाएं आधुनिक जीवन की भागदौड़ और तनाव से भरे माहौल में आंतरिक शांति और संतोष का रास्ता दिखाती हैं। वे हमें उपभोगवाद से दूर रहने और सादा जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। उनके विचार नैतिकता और मानवीय मूल्यों पर आधारित हैं, जो आज के स्वार्थ-भरे समाज के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। इस प्रकार, कबीर केवल एक कवि नहीं, बल्कि एक ऐसे मार्गदर्शक हैं जिनके विचार हर युग में प्रासंगिक रहेंगे।

बीज शब्द : प्रासंगिक, सहिष्णुता, वितृष्णा, लिप्सा, करुणा, साक्षी, अमल।

कबीर अपने काल और समय में तो प्रासंगिक और एक समझदार उपदेशक थे ही, आजकल के समय में कबीर उससे भी कहीं अधिक प्रासंगिक और एक सबसे अधिक समझदार और सबसे अधिक उपयोगी संदेशवाहक हैं, जिनके उपदेश कालजयी तो हैं ही, आजकल इनका महत्त्व सबसे अधिक है।।

कबीर, उनके उपदेश या उनका दर्शन उनके काल में जितने उपयोगी, जितने सार्थक, जितने आवश्यक थे, उतने ही आज की आधुनिक परिस्थिति एवं काल में भी सार्थक, आवश्यक और उचित हैं या सम्भवतः यह कहना उचित होगा कि कबीर के विचार, उनके उपदेश या उनका दर्शन आधुनिक काल के सामान्य जीवन क्रम में कहीं अधिक आवश्यक, सार्थक और उचित हैं।

प्रश्न यह उठता है कि हमारे पास, हमारी संस्कृति में इतनी सशक्त और प्रभावी शिक्षाएँ उपस्थित हैं (विशेष रूप से कबीर

और उनकी 'साखी' में निहित शिक्षाएँ) तो फिर क्यों हमारे समाज में और सामान्य जीवन क्रम में इतनी अफरा-तफरी, इतनी विसंगतियाँ, इतना द्वेष, इतना भेदभाव (धार्मिक, जातिगत, सामाजिक और आर्थिक), इतनी वितृष्णा, भौतिकता के प्रति इतनी लिप्सा, मनुष्यता के ऊँचे मानदंडों से नीचे गिर जाना, क्यों है? क्या कबीर या अन्य महान संतों की वाणियाँ या हमारी अतिसमृद्ध संस्कृति अप्रभावकारी हो रही हैं? मन कहता है, ऐसा हो नहीं सकता लेकिन जो सत्य रूप में हमारे सामने आ रहा है, उन्हें नकारा भी तो नहीं जा सकता।

कबीर ने उस काल के अंधविश्वासों, धर्माडंबरों या मानवता के हनन का विरोध किया और उसपर करारी चोट की है, इससे सिद्ध होता है कि उस काल में ये बुराइयाँ समाज में उपस्थित थीं। मोह-माया, लोभ, स्वार्थ, विश्वासघात जैसी मानवीय कमजोरियाँ या बुराइयाँ तब भी समाज में थीं और यदि आधुनिक समाज का अवलोकन करें, तो ये सभी बुराइयाँ और कमजोरियाँ अब अधिक बड़े पैमाने पर अभी भी मानव में और समाज में उपस्थित हैं। यदि अन्य स्रोतों का सहारा लें, तो तब का समाज (कबीर के काल का समाज) सम्भवतः आज के समाज से मानवीय मूल्यों के आधार पर कुछ श्रेष्ठ ही था अर्थात तब बुराइयाँ कम मात्रा में और अच्छाइयाँ अधिक रही होंगी और अब इसका विपरीत है। इस प्रकार अगर हम आकलन करें, तो कबीर की रचनाओं (साखी, सबद, रमैनी) में निहित उनकी शिक्षाएँ, उपदेश या उनका दर्शन आज-कल के समाज और सामान्य जीवन के सन्दर्भ में अधिक उपयोगी है।

मोह-माया और लोभ पर ही अगर हम गौर करें, तो क्या ऐसा नहीं लगता कि मनुष्य आधुनिक सुख-सुविधाओं अर्थात विलासिता का इतना गुलाम बन गया है कि उनके साधन एकत्रित करने में पतन की हर गहराई में गिरने को तैयार बैठा है। नैतिकता के किसी भी मूल्य को त्यागकर वह सुख-सुविधाओं की वस्तुओं को प्राप्त करने में ही अपनी बुद्धिमत्ता और सफलता समझता है। जबकि कबीर ने आवश्यकता के सन्दर्भ में अपने सुंदर दर्शन को ईश-प्रार्थना के रूप में प्रकट किया है कि–

साईं इतना दीजिए, जामें कुटुम समाए।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाए।।

कबीर को बस इतना ही चाहिए कि उन्हें और उनके परिवार को भूखा न रहना पड़े और आवश्यकता का मारा कोई व्यक्ति या अतिथि आ जाए, तो उसकी भी मदद की जा सके। यह सोच या ऐसी सुंदर भावना क्या आज के लोगों में दिखाई देती है? कदापि नहीं। यहाँ तो जितना भी मिल जाए, पर संतुष्टि नहीं। 'मेरा सो मेरा, तेरा भी मेरा'- की भावनाएँ और लोभ-माया सभी में दिखाई देती है, किसी में कम तो किसी में अधिक। यह असंतोष आधुनिक मनुष्य का तनाव है; उसका रोग है; उसके मानवता से गिर जाने का साधन है; उसके अनैतिक बनने का कारण है; उसके अमानवीय अपराध करने की वजह है; या यूं कहें कि उसके उत्तम मानवीय गुणों को त्यागकर पशुता के गुणों का अपने भीतर सृजन करने का कारण है। यह लगभग सभी मनुष्यों में पनप चुका है और यही कारण है कि समाज में ये बुराइयाँ जड़ पकडे हुए हैं और इन बुराइयों से सभी को कष्ट हो रहा है। लेकिन अधिकाँश लोग आज-कल इसे बुराई नहीं मानते बल्कि इसे आधुनिकता की आवश्यकता मानते हैं, समय के साथ चलने जैसा दर्शन बताते हैं। स्पष्ट है कि एक अंधे को क्या पता कि सामने वाला अंधा है या आँखों वाला और जहाँ सभी अंधे हों, तो स्थिति बड़ी भयानक हो जाती है। लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि मनुष्य कष्ट में है। इसे सभी किसी न किसी रूप में स्वीकार करते हैं लेकिन आश्चर्य की बात है कि वे कष्ट के कारणों को नहीं ढूँढते या यदि जान भी जाते हैं, तो उसका उपचार लेने में हिचकते हैं या इनकार करते हैं। और वह उपचार तो बस एक ही है, एक ही दवा सभी बीमारियों का नाश करने के लिए काफी है–वही बस एक 'संतोष'।

गोधन, गजधन, बाजिधन, और रत्न धन खान।
जब आवै संतोष धन, सब धन धुरि समान।।

क्या कबीर का यह दर्शन या यह उपदेश आधुनिक समाज के लिए उपचार का साधन नहीं है? यह विचार करने का विषय है।

कबीर ने अपनी साखियों में हृदय की पवित्रता, नैतिकता, आत्मसम्मान, ईश-भक्ति, परोपकार, भाईचारा, बन्धुत्व, दया, क्षमा, करूणा जैसे तत्वों को मानव का सबसे मूल्यवान गुण माना है, जिसे धारण करके मनुष्य वास्तव में मनुष्य कहलाने का अधिकारी बनता है। जबकि आधुनिक काल में ये गुण प्रायरू विलुप्त ही हो चुके हैं या फिर कहीं-कहीं किन्हीं गिने-चुने लोगों में अंतिम साँस ले रहे हैं। फिर भला मानव इस पृथ्वी पर कैसे 'ईश्वर की श्रेष्ठतम कृति' कहा जाएगा, जबकि उसमें मानव जैसे वे गुण हैं ही नहीं, जिन्हें ईश्वर ने हमारे भीतर डालकर भेजा? कबीर कितने आधुनिक हैं, कबीर को कोई तनाव नहीं, कोई कष्ट नहीं, अगर कोई कष्ट है, तो बस यही कि मानव क्यों मानव नहीं रह गया? वह सांसारिकता में उलझकर उसे ही सर्वोत्तम सुख मानकर अंततरू दुःख का भागी क्यों बनता है?

सुखिया सब संसार है, खाए अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर हैं, जागै अरु रोवै।।

कबीर का यह रोना 'ज्ञान की साक्षी' है। कबीर तो संत थे, महात्मा थे, एक श्रेष्ठ मनुष्य थे फिर भी उन्हें कष्ट था कि अभी भी उनमें कमी है, उनमें बुराइयाँ हैं।

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न कोय।।

यह ईमानदारी है, यह सच्चाई है हृदय की, जो कबीर जैसा व्यक्ति ही स्वीकार कर सकता है। यहाँ तो सभी को दूसरों में बुराइयाँ ही बुराइयाँ दिखाई देती हैं और स्वयं में मात्र अच्छाई। जबकि सच्चाई यही है कि बुरा देखने वाला स्वयं में असंख्य बुराइयाँ छिपाए बैठा है फिर भी उसे लज्जा नहीं आती।

आज के आधुनिक समाज में कुछ लोगों द्वारा फिर से मन की शांति को जीवन की उपलब्धि के रूप में देखा और सोचा जाने लगा है। 'योग' का महत्त्व, कहीं फैशन के रूप में तो कहीं वास्तविक अर्थों में अर्थात मन की शान्ति के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। ऐसे लोगों के लिए कबीर एक बार पुनरू मार्गदर्शक हो सकते हैं। 'ईश-भक्ति' तथा जीवन के महान मूल्यों को ही सत्य रूप मानने की ओर लोग प्रेरित दिखाई दे रहे हैं।

यहाँ एक सच्चाई को सामने लाना चाहता हूँ। सामाजिक संचार व्यवस्था (सोशल मीडिया) तथा दूसरे संचार माध्यमों में नैतिकता की तमाम बातें की जाती हैं। हर दिन ही सैकड़ों पोस्ट मिलते हैं। हम अंगूठा दिखाकर उनका समर्थन भी करते हैं। लेकिन ये सारी बातें हैं क्या? क्या कोई इसे अपने जीवन में लागू करता है? अगर हर कोई इन नैतिकता की बड़ी-बड़ी बातों को अपने जीवन में लागू कर लेता, तो यह पृथ्वी स्वर्ग जैसा दिखाई देती लेकिन वास्तविकता क्या है? युद्ध की विभीषिका, मासूमों का नर संहार, धोखाधड़ी, भ्रष्टाचार, विश्वासघात, अंधभक्ति, अंधविश्वास जैसे राक्षस, मानवता की त्रासदी का कारण बने हुए हैं। ऐसा क्यों है?...क्योंकि आदर्शों की बड़ी-बड़ी बातें हम करते तो हैं लेकिन उसे अपने जीवन में अपनाने से हिचकते हैं या बचते हैं। अल्लामा सर मुहम्मद इकबाल ने कितनी सुन्दरता से इस बात को हमें समझाया है–

अमल से ज़िन्दगी बनाती है, जन्नत भी जहन्नुम भी
ये ख़ाकी अपनी फ़ितरत में न नूरी है न नारी है।

अमल= पालन करना, जन्नत= स्वर्ग, जहन्नुम= नर्क, ख़ाकी= ख़ाक से बना हुआ अर्थात मनुष्य, फ़ितरत= स्वभाव, नूरी= स्वर्गीय, नारी= नारकीय।

इकबाल कहते हैं कि- 'कर्मों का पालन करने से ही मनुष्य स्वर्गीय या नारकीय बनता है, केवल जानने से नहीं, क्योंकि यह मनुष्य मात्र अपने स्वभाव से न स्वर्ग में जाने वाला है, न ही नर्क में जाने वाला है।' यह तो कर्मों का पालन ही है, जो मनुष्य को राक्षस या देवता बनाता है। और आजकल हम आदर्शों या नैतिकता की बातें जानते तो बहुत हैं लेकिन उनका पालन नहीं करते, तभी पूरे विश्व में हाहाकार की स्थिति बनी हुई है। पालन तो कबीर ने किया है। वे कहते हैं कि–

हम घर जाल्या आपणा, लिया मुराड़ा हाथि।
अब घर जाल्यौ तास का, जे चले हमारे साथि।।

कबीर ने मोह, माया लालच, अहंकार रूपी सांसारिक घर को ईश्वरीय ज्ञान रूपी मशाल से जला दिया। अब वे लोगों से पूछते हैं कि अगर उन्हें भी इस साँसारिकता से मुक्ति पाकर शान्ति प्राप्त करनी है, तो ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करके जीवन में वास्तविक सुख और शान्ति प्राप्त कर लें।

आजकल हर व्यक्ति अपने को परिपूर्ण या संपूर्ण समझता है। यह अहंकार है। अहंकार है तो, सारा ज्ञान सारी प्रतिभा, सारा धन-दौलत, सारा सम्मान, सारा आभिजात्य बेकार एवं निरर्थक है, क्योंकि अहंकारियों को ईश्वर प्राप्त नहीं होता। वह बुराइयों में डूब जाता है। वह अन्धकार में डूब जाता है। कबीर ने स्पष्ट किया है कि–

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
सब अँधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माहिं।।

लेकिन उन्हें सच्चा मार्ग और मार्ग-दर्शक चाहिए, और वह कबीर से अच्छा कोई नहीं हो सकता। शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो, जहाँ समाज कल्याण, मानव कल्याण की बात कबीर से अछूती रह गई हो। जहाँ कहीं भी समस्या या व्यवधान है, वहीं कबीर समाधान हैं। जहाँ कहीं रुकावट है, वहां कबीर सहज बहते झरने की तरह स्रोत बहाते दिखाई देते हैं। कबीर हमें भ्रमित या चकित नहीं करते बल्कि चोट करते हैं। नाश करते हैं उनका, जिनमें हमारी भलाई नहीं है। वह चेतावनी देते हुए कहते हैं कि–

कबीर नौबति आपणी, दिन दस लहू बजाई।
ए पुर षटन ए गली, बहुरि न देखै आइ।।

अर्थात 'हे मानव, अभी समय है, चेत जाओ। जिस वैभव में तुम भूले हुए हो, वह केवल दस दिन का खेल है अर्थात क्षणिक है। तुम्हारी मृत्यु अवश्यम्भावी है। पुनः इस पुर, नगर या गली को न देख पाओगे। अर्थात पुनः यह जन्म संभव नहीं है।'

जीवन की क्षणभंगुरता के बारे में पुनः चेतावनी देते हुए कहते हैं–

इक दिन ऐसा होइगा, सब सूँ पड़ै बिछोह।
राजा राणा छत्रपति, सावधान किन होई।।

अर्थात चाहे कोई राजा हो, राणा हो या छत्रपति हो, सबके लिए एक दिन ऐसा आएगा, जब उन्हें यहाँ संसार छोड़ना पडेगा। अर्थात सबको एक न एक दिन साँसारिक वस्तुएँ यहीं छोड़कर जाना पडेगा। इसलिए हे मनुष्य, जीवन रहते ही सावधान क्यों नहीं हो जाते? प्रभु के प्रति लौ क्यों नहीं लगाते? कबीर ने वैभव, विलास और साँसारिकता के प्रति लोगों को चेतावनी देते हुए सावधान किया है। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट कर रहे है कि जीवन नाश्वान और क्षणभंगुर है। अतः इसको वर्षों-वर्षों तक सुरक्षित करने के समस्त साधन व्यर्थ हैं। उर्दू के एक प्रसिद्ध शायर ने एक शेर कहा है–

आगाह अपनी मौत से कोई बशर नहीं
सामान सौ बरस का है, पल की ख़बर नहीं।

आज के समय पर नजर डालें तो हमें स्पष्ट दिखाई देता है कि लोग अपनी सुख-सुविधाओं के साधन जुटाने, धन-दौलत कमाने और प्रसिद्धि पाने के लिए सभी अनैतिक मार्गों का अनुसरण करने में न संकोच करते हैं, न उन्हें कोई भय है। वह इनके लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार है। उसे शान्ति नहीं मिल पाती, फिर भी वह इन्हें छोड़ने को बिलकुल तैयार नहीं है। पूरे विश्व पटल पर आज देखें, तो अपने वर्चस्व को बचाए रखने के लिए राजनेता और अन्य सभी मानवता का बुरी तरह से हनन कर रहे हैं, अपनी मनमानी से मानवता को कुचल रहे हैं लेकिन उन्हें इसका ज़रा भी मलाल नहीं है, न ही ईश्वर का भय ही है। लगता है उन्होंने अपने लिए अलग ईश्वर का निर्माण कर लिया है। ईश्वर तो वही एक है, जो हमें मनुष्यता के मार्ग पर चलना सिखाता है, उसने मनुष्यता को ही हमारा सर्वप्रथम धर्म बनाया है।

अभी भी परिवर्तन संभव है। एक सुखद स्थिति लाई जा सकती है। शर्त यही है कि कबीर के इन महान दार्शनिक विचारों, शिक्षाओं और उपदेशों का पुनर्जागरण किया जाए, उन्हें समझा जाए और लागू किया जाए। तब उन महान मानवीय

मूल्यों को फिर से प्राप्त किया जा सकता है, जिसे पाकर मनुष्य को मन की, हृदय की और आत्मा की शान्ति मिलती है तथा जिसकी उपस्थिति से समाज और राजनीति की खोई मर्यादा पुनरू प्राप्त की जा सकती है। तब हमें ईश्वर के अंश, यानि मनुष्य होने का अर्थ मालूम होगा तथा यह जीवन, जो अभी अशांत और अभिशप्त लगता है, यही शान्ति और ईश्वर के आशीषों और वरदान से भरा-पूरा दिखाई देगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं सन्दर्भ स्रोत

1. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी
2. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुन्दर दास
3. कबीर की प्रासंगिकता, डॉ. उमा देवी
4. कबीर ग्रंथावली, माता प्रसाद गुप्त
5. वर्तमान समय में कबीर की प्रासंगिकता, डॉ. छाया सिन्हा
6. विशेष रचनाकार कबीर, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

Mohamad Ibadur Rahman Khan
Rahman Villa. Patelnagar
P-O- Barhaj, Dist- Deoria
U-P-Pin Code &274601
email- ibadur-saima@gmail.com
Tel-& (Ind) +91 9794174522 / (Bahrain) +973 39082224

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

वासुदेवशरण अग्रवाल का भारतसावित्री में गीता-दर्शन संबंधित दृष्टिकोण

मनीष ठाकुर
शोधार्थी
महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय
ई-मेल-manish2uhindi@gmail.com

राष्ट्रीय अभ्युत्थान के लिए 'महाभारत' का विशेष महत्त्व यह है कि वह प्राचीन भूगोल, समाजशास्त्र, शासन-संबंधी संस्था, नीति और धर्म के आदर्शों की खान है। वेदव्यास जिस भारत राष्ट्र की उपासना करते थे, भविष्य का प्रत्येक मानव उसका स्वप्न देखेगा। मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन और उसकी प्रकृति को पूरी तरह अध्यात्म की ओर प्रवृत्त करने से ही मानवता अपने से ऊपर उठ सकती है और उसे सच्चा, श्रेष्ठ, और उच्च जीवन प्राप्त हो सकता है। अब उच्च मानवता के लिये प्रथम पद आगे बढ़ाने का समय आ पहुंचा है। 'गीता' हमें व्यावहारिक जीवन में वैसा करने का पथ दिखलाती है। श्रीमद्भगवत 'गीता' जो श्रीकृष्ण भगवान की दिव्य वाणी है, वह तो भारतीय दर्शन का मूर्त रूप है। यह अक्षय मणियों की खान है। मणियां संग्रह की जाये तो भी भावी प्रत्येक युग में यदि खान से सन्तान सदैव नये नये अमूल्य रत्न प्राप्त करके हृष्ट और विस्मित ही होती रहेंगी। ऐसी गम्भीर और गुप्तज्ञान पूर्ण पुस्तक की भाषा सरल और सहज है। 'गीता' की हजारों व्याख्यायें होने पर भी, ऐसा समय कभी भी नहीं आएगा जबकि नवीन व्याख्या की आवश्यकता न हो। संसार के श्रेष्ठ महापण्डित या बहुत बड़े ज्ञानी 'गीता' की ऐसी इस प्रकार वर्तमान 'महाभारत' में साहित्यिक पद्धति के अनेक बीज पाए जाते हैं। वासुदेवशरण अग्रवाल ने भारत-सावित्री में महाभारत का गहन अध्ययन करके महाभारत को अध्यात्म और दर्शन का विलक्षण कोष कहा है। वेद, पुराणों और उपनिषदों में सन्निहित दर्शन की भाँति महर्षि वेद व्यास द्वारा रचित महाभारत का दर्शन भी महत्वपूर्ण है। यह धुरंधर ग्रंथ भारतीय चरित और ज्ञान का अद्भुत योग है। इसके निर्माता की प्रज्ञा सूर्य रश्मियों की तरह विराट है। सारा भारत राष्ट्र महामुनि वेदव्यास के लिए अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है। भारत-सावित्री में वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा महाभारत में सुरक्षित प्रज्ञादर्शन, नियतिवाद, प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग का दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया हैं–

"न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्मं त्यजेज्जीवितास्यापि हेतोः
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये नित्यो जीवो धातुरस्य त्वनित्यः।"

काम से, भय से, लोभ से धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए। धर्म की राह पर चल कर ही जीवन का अर्थ प्राप्त किया जा सकता है। विश्व की प्रेरक शक्ति का नाम सविता है। महाभारत ग्रंथ का जो धर्म- प्रधान उद्देश्य है, वही उसका सविता देवता है। उसकी प्रेरणात्मक भावना को इस अध्ययन में यथासंभव सुरक्षित रखा गया है। यही इस नाम का हेतु है।

"अर्थशास्त्रमिदं पुण्यं धर्मशास्त्रमिदं परम्
मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामित बुद्धि।"

महाभारत प्राचीन भारतवर्ष का ज्ञानकोश है। संसार के दिग्गज साहित्य जैसे यूनान के इलियड और ओडसी अथवा

ग्राइसलैंड और स्कैंडेनेविया के प्राचीन एड्डा और सागा इसकी तुलना में बहुत पीछे छूट जाते हैं। यह जहां एक ओर प्राचीन नीति और धर्म का अक्षय भंडार है, वहीं दूसरी ओर इसमें भारतीय गाथाशास्त्र की भी अनन्त सामग्री है।

"धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।"

भारत-सावित्री में डॉ. अग्रवाल द्वारा महाभारत में वर्णित प्रज्ञादर्शन, नियतिवाद, प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग का दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया गया हैं। चार पुरुषार्थो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से सम्बन्ध रखनेवाला यह ग्रंथ है। श्रीमद्भगवत 'गीता' में भगवान श्रीकृष्ण ने पहला अध्याय- अर्जुन का विषाद, 'गीता' की पुष्पिका, ब्रह्मविद्या और कर्मयोग का समन्वय, उपनिषदों का सार - 'गीता', दूसरा अध्याय - सांख्ययोग अध्यात्म और व्यवहार का मेल ही प्रज्ञा है, आत्मवाद और देहवाद, आत्मा के विषय में प्राचीन मतवाद, मीमांसकों का कर्मवाद, वेद का ब्रह्मवाद, कर्मयोग शास्त्र, बुद्धियोग और कर्मयोग का मेल, अभिध्या का सिद्धान्त, प्रज्ञा का अर्थ। तीसरा अध्याय - कर्मयोग, अर्जुन का खरा प्रश्न, सांख्य और योग की दो निष्ठायें, कर्म के पक्ष में युक्तियाँ, यज्ञ और 'गीता' में उसका नया उच्च अर्थ, आत्मज्ञान और कर्म, दोनों की साधना, कर्मो के दो भेद- पाप और पुण्य। चौथा अध्याय - ज्ञान कर्म संन्यास, कर्मयोग की पुरानी परम्परा, ईश्वर का अवतार। पाँचवा अध्याय - कर्म संन्यास योग, कर्म योगी का लक्षण छठा अध्याय - ध्यान योग, योग की बुद्धिगम्य व्याख्या, योग में चूक जाने का डर। सातवाँ अध्याय - ज्ञान विज्ञान योग, परा और अपरा प्रकृति का भेद और स्वरूप, ज्ञान और विज्ञान, ईश्वर तत्त्व की व्याख्या, आठवाँ अध्याय - ब्रह्म क्या? अध्यात्म क्या, कर्म क्या, अधिभूत क्या, अधिदैवत क्या, अधियज्ञ क्या, ओंकार रूप अक्षर। नवाँ अध्याय- राज्य विद्या, भगवान का दिव्य स्वभाव। दसवाँ अध्याय- विभूत योग, लोक देवता, व्रत शब्द का पारिभाषिक अर्थ, मह नामक लोकोत्सव, लोक देवता। ग्यारहवाँ अध्याय- विश्व रूप दर्शन, पुरुष और प्रकृति की अनेक संज्ञाएँ, विश्व की संज्ञा विराट है, ईश्वर की प्रचंड शक्ति, दिव्य दृष्टि क्या, विराट रूप। बारहवाँ अध्याय- भक्ति योग, सगुण निर्गुण पूजा, लक्षण, भक्ति साधना के कई मार्ग, भक्त के लक्षण, भागवत में चरित्र के गुणों की सूची तेरहवाँ अध्याय - क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विचार, क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विचार की प्राचीनता, ब्रह्मसूत्रों में क्षेत्र क्षेत्रज्ञ का विचार, 'गीता' में क्षेत्र का विचार, प्रकृति के अवयव और गुण, ज्ञान और अज्ञान का विवेचन, क्षेत्रज्ञ पुरुष, विवेक का मार्ग। चौदहवाँ अध्याय- तीन गुणों का विवेचन, तीन गुणों के लक्षण, गुणातीत व्यक्ति के लक्षण द्य पन्द्रहवाँ अध्याय- पुरुषोत्तम योग, जीव का स्वरूप, वैश्वानर विद्या, हृद्देश में ईश्वर की सत्ता, क्षर और अक्षर। सोलहवाँ अध्याय- दैवी और आसुरी सम्पद्, दैवी लक्षण। सत्रहवाँ अध्याय- तीन प्रकार की श्रद्धा, ॐ तत् की व्याख्या। अठारहवाँ अध्याय- मोक्ष संन्यास योग, कर्म के दो अंग, ज्ञान के तीन भेद, कर्म के तीन भेद, कर्त्ता के तीन भेद, तीन प्रकार की वृत्ति, चातुर्वर्ण्य के स्वाभाविक कर्म की विस्तृत व्याख्या उपलब्ध है, जिसको डॉ. अग्रवाल ने सरलतम रूप में प्रस्तुत करने का अतुलनीय प्रयास किया है।

"'गीता'में भगवान् कृष्ण ने भी कहा है कि शरीर पार्थिव है परन्तु उसके भीतर जो आत्मा है वह अविनाशी है अथवा नित्य है, अजर, अमर है। वह परमात्मा का अंश है।" कर्मयोग- शास्त्र का निचोड़ 'गीता' के एक श्लोक में आ गया है—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूमति संगोऽस्त्व-कर्मणि"

कर्म पर ही तुम्हारा अधिकार है, कर्मफल पर नहीं। अतएव तुम कर्म के हेतु बन सकते हो, कर्मफल के हेतु नहीं बन सकते। तुम्हारी शक्ति की सीमा जिस कर्म तक है, उसे कभी छोड़ कर बैठ रहने का भाव मन में मत लाओ। ऐसा करने से कर्म और कर्मफल दोनों तुम्हारे हाथ से निकल जायेंगे। सर्वव्यापी परमात्मा के स्वरूप में एक्य भाव से नित्य स्थित रहते हुए एक वासुदेव के सिवाय अन्य किसी के न होने का भाव रहना, यही सांख्ययोग का साधन है। सब कुछ भगवान का समझकर सिद्धि - असिद्धि में समत्व भाव रखते हुए आसक्ति और फल की इच्छा का त्यागकर भगवद् आज्ञानुसार केवल भगवान के लिए ही सब कर्मो का आचरण करना तथा श्रद्धा भक्ति पूर्वक मन, वाणी और शरीर से सब प्रकार भगवान के शरण में होकर नाम गुण और प्रभाव से रहित उनके स्वरूप का निरन्तर चिन्तन करना ये कर्म योग का साधन है। मोक्ष प्राप्ति के उपर्युक्त दोनों साधनों का परिणाम एक है और इसीलिए यह दोनों अभिन्न माने गये है। परन्तु साधन काल में अधिकारी भेद से दोनों में भेद होने के कारण दोनों मार्ग भिन्न-भिन्न बतलाये गये हैं। कोई पुरूष एक ही काल में दोनों मार्गो के द्वारा नहीं चल सकता।

डॉ. अग्रवाल ने महाभारत की मीमांसा करते हुए लिखा है कि जैसे गंगा जी पर जाने के लिए दो मार्ग होते हुए मनुष्य दोनों मार्गों पर एक काल में एक मनुष्य नहीं जा सकता पृथक-पृथक काल में वह दोनों मार्गों का अनुसरण कर सकता है। उपर्युक्त साधनों में कर्मयोग का साधन संन्यास आश्रम में नहीं बन सकता, क्योंकि संन्यास आश्रम में व्यक्ति को कर्मों के स्वरूप से भी त्याग करके परमात्मा को भक्ति की रीति बतायी गयी, किन्तु सांख्य योग का साधन सभी आश्रमों में बन सकता है।

"प्रज्ञा का अर्थ यह था कि जीवन की समस्याओं पर समझदारी या सूझबूझ से विचार किया जाए। जिसे आज हम बुद्धिवादी दृष्टिकोण कहते हैं, और प्रायः मनुष्य जिसे सरलता से मान लेता है, वहीं प्रज्ञावादी दृष्टिकोण था। उसे आज अंग्रेजी में 'कॉमन सेन्स अप्रोच' कहा जाता है।" प्रज्ञा-दर्शन के बारे में डॉ. अग्रवाल कहते हैं कि जीवन में नित्य काम आने वाली समझदारी का दृष्टिकोण प्रज्ञादर्शन का सार है। साधारण बुद्धि चलायमान होती है और केवल उपलब्ध तथ्यों के आधार पर ही निष्कर्ष निकाल सकती है। तीसरा नेत्र खुलने पर व्यक्ति एक ही दृष्टि में सही निष्कर्ष तक पहुँच जाता है। बुद्धि स्थिर रहती है, साधारण बुद्धि त्रिगुण के आवरण के कारण अलग-अलग अर्थ ढूंढती रहती है और इन्द्रियों के सहारे अधिक प्रभावित होती है। साधारण बुद्धि किसी वस्त्र अथवा व्यक्ति को देखती है, भिन्नता को देखती है, विशेषता को देखती है और इसी के अनुरूप अर्थ निकालती हैं। प्रज्ञा सदा समग्र दृष्टिकोण अपनाती है। यह न भेद देखती है और न ही विशेषता। यह एकात्मवाद से परे और समष्टि भाव में देखती है। बुद्धि स्थूल भाव में कार्य करती है, जबकि प्रज्ञा सूक्ष्म रूप में स्थिरता के आधार पर गतिमान होती और अन्त में गति स्थिरता में विलीन हो जाती है। बुद्धि भी प्रज्ञा से निकलती है और प्रज्ञा में ही समा जाती है। दोनों अलग नहीं है, केवल स्वरूप की भिन्नता है। बुद्धि जब प्रज्ञा में परिवर्तित होती है तब अहंकार गलित हो जाता है। इसमें व्यक्ति की महिमा, गृहस्थाश्रम, पुरूषार्थ और उत्थान की महिमा का प्रतिपादन किया गया है। यह दर्शन वैदिक परम्पराओं को अपने में समाहित किये हुए है। इसमें भाग्यवाद का समर्थन नहीं किया गया हैं। इसका कालान्तर में जो विकास हुआ वह संस्कृत के नीति साहित्य में उपलब्ध है।

सांख्य दर्शन के सम्बन्ध में श्रीकृष्ण ने कहा है, कि जगत् की उत्पत्ति पुरूष और प्रकृति के संयोग से ही चेतन और प्रकृति जड़ है। जड़ और चेतन पृथक-पृथक जगत की रचना में समर्थ संभव पुरूष नहीं हैं। यदि कहा जाये कि सांख्ययोग को भगवान ने संन्यास के नाम से कहा है, इसलिए उसका संन्यास आश्रम में ही अधिकार है और गृहस्थ आश्रम में नहीं तो यह कहना अनुचित होगा। भगवान श्रीकृष्ण ने विभिन्न स्थलों पर अर्जुन को युद्ध करने की योग्यता का उपदेश सांख्य दर्शन के आधार पर ही दिया है। यदि गृहस्थ में सांख्य योग का अधिकार भी नहीं होता तो भगवान श्रीकृष्ण का इस प्रकार कहना कैसे बन सकता? हाँ, इतनी विशेषता अवश्य है कि सांख्य मार्ग का अधिकारी देहाभिमान से रहित होना चाहिए, क्योंकि जब तक शरीर में अंहभाव रहता है, तब तक सांख्ययोग का साधन भली प्रकार समझ में नहीं आता। सांख्य दर्शन के सम्बन्ध में डॉ.अग्रवाल की धारणा कि अकेला ब्रह्मा कुछ नहीं कर सकता और न अकेली प्रकृति कुछ कर सकती है। विज्ञानात्मा का भौतिक देह में आगमन ही चेतना का लक्षण है।

"पहले अध्याय में अर्जुन का मन विषाद की जिस अवस्था में पहुंच गया था, वही तो कर्म छोड़ देनेवाले सांख्य मार्गियों की दृष्टि थी। एक प्रकार से पूरी तरह अनजान में हो उसी मार्ग का पक्का शिष्य बन गया था। पर ऊपर से उसने कृष्ण से यह भी कहा कि मैं आपका शिष्य हूं, मुझे उपदेश दीजिए। अतएव चतुर गुरु के रूप में कृष्ण ने बारीक मनोविज्ञान से काम लिया।"

"कर्मयोग की पुरानी परम्परा तीसरे अध्याय में जिस कर्मयोग-शास्त्र की नई व्याख्या अर्जुन को बताई गई है, उसे ही चौथे अध्याय में मानवीय सृष्टि के आरंभ से चली आती हुई कहा गया है। विवस्वान् सूर्य की संज्ञा है। सूर्य को ब्राह्मण ग्रन्थों में त्रयी विद्या कहा है। त्रयी का तात्पर्य त्रिकभाव से है। उसी का एक रूप ज्ञान, कर्म और भक्ति है। सूर्य में ये तीनों हैं। सूर्य विश्व का नियामक है।" " कर्म-संन्यासयोग है वह है जिसमें कर्मों का संन्यास और कर्मयोग दोनों हितकारी हैं और संसार के बन्धन से मुक्त कराने वाले हैं।" "छठे अध्याय की संज्ञा ध्यानयोग, अध्यात्मयोग, आत्मसंयमयोग, संन्यासयोग आदि हस्तलिखित प्रतियो में पाई जाती हैं। इसमें मन को एकाग्र करने के लिए ध्यान, धारणा एवं योग-साधन का उल्लेख किया गया है। मन को एकाग्र करके, पवित्र स्थान में सुकुमार आसन पर बैठ कर, मेरुदण्ड ग्रीवा और मस्तक को सीध में रखते

हुए नासाग्र दृष्टि से जो योग-साधन करता है, उसे शान्ति और सिद्धि मिलती है।" "सातवें अध्याय की संज्ञा ज्ञान-विज्ञानयोग है। एक से नाना भाव की प्राप्ति विज्ञान है। अनेक से एक की ओर जाना ज्ञान कहलाता है।" "जरा-मरण से छूटने के लिए ईश्वर को जानना ही साधन है। इसके लिए कई बातों को स्पष्ट अलग-अलग जानना चाहिए। वे छह बातें इस प्रकार हैं : ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदेव और अधियज्ञ। अर्जुन के छह प्रश्न आठवें अध्याय का नाम अक्षर ब्रह्मयोग है। उसका आरम्भ इन्हीं छह प्रश्नों की जिज्ञासा से होता है। जैसे ही भगवान् ने इन छहों का उल्लेख किया, वैसे ही अर्जुन के मन में यह स्वाभाविक इच्छा हुई कि इन छह तत्त्वों का स्वरूप और भेद जाना जाय।"

"'गीता' के नवें अध्याय का नाम राज-विद्या राजगुह्ययोग है। यह एक ऐसा योग है, जिसमें ज्ञान और विज्ञान अर्थात् व्यावहारिक लोक-जीवन और अध्यात्म मार्ग दोनों का समन्वय होता है। यह धर्म-मार्ग अत्यन्त पवित्र कहा गया है, क्योंकि इसमें आत्मा का प्रकाश भौतिक प्रकृति के क्षेत्र में भर जाता है और उसकी मलिनता को हटाकर उसमें पवित्रता भर देता है। इस मार्ग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह कहने-सुनने की बात नहीं है। इसे तो जीवन में प्रत्यक्ष उतारा जाता है। जबतक यह ज्ञान जीवन में खरा न उतरे तब तक इसका कुछ मूल्य और लाभ नहीं है।" विभूतियोग में लोक-देवता के प्रसंग में एक प्रश्न यह उठ खड़ा हुआ कि जो लोग भगवान् को छोड़ कर दूसरे देवताओं की पूजा करते हैं, उनकी क्या गति होगी? लोक में बहुत से देवता हैं और अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उनके पूजने वाले भी अनेक हैं। प्रत्येक मनुष्य के भीतर जो उसके मन की रुचि वह भी भगवान् के संकल्प का रूप है और उसके लिए विष्णुधर्मोत्तर पुराण के लेखक ने 'रोचेश' इस नये शब्द का व्यवहार किया है। जिसको जिस देवता में रुचि होती है अथवा जीवन की जिस किसी कार्य में प्रवृत्ति होती है,वही उसका 'रोचेश' है। विष्णुधर्मोत्तर अध्याय 221 में इस प्रकार के लगभग 125 देवताओं की सूची दी गई है। 'गीता' कार के सामने भी यहां इस तरह का प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि लोक-देवता कौन-कौन से हैं? यह सामग्री कुछ अध्यात्म दृष्टि से महत्व की नहीं, किन्तु लोक वार्ता-शास्त्र के लिए महत्त्व की है। पहले तो 'गीता' कार ने भगवान् के मुख से एक सामान्य नियम कहलाया है—

"यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्"

"विश्वरूपदर्शन विराट् रूप की कल्पना का आरम्भ ऋग्वेद के पुरुष सूक्त से होता है। यहां कहा है कि विराट् पुरुष के मन से चन्द्रमा, नेत्रों से सूर्य, मुख से इन्द्र- अग्नि, प्राण से वायु, नाभि से अन्तरिक्ष, मस्तक से द्युलोक, पैरों से पृथ्वी, कानों से दिशाएं और उसी प्रकार दूसरे अंगों से भिन्न-भिन्न लोकों का निर्माण हुआ विराट् का अर्थ है, महिमा या समष्टिगत विश्वात्मक रूप। इसके मूल में वैदिक सृष्टिविद्या की यह कल्पना है, कि विश्व का निर्माण करने वाले प्रजापति के दो रूप हैं एक अनिरुक्त, अपरिमित, अमूर्त और अनन्त; दूसरा निरुक्त, परिमित, मूर्त और शांत। पहला रूप अव्यक्त और दूसरा व्यक्त है। व्यक्त रूप में प्रकृति या प्रधान की सत्ता है, और अव्यक्त रूप में उससे ऊपर पुरुष की सत्ता है। पुरुष और प्रकृति के सम्मिलन से ही विश्व का निर्माण हुआ है।" "भक्तियोग नामक बारहवें अध्याय में अर्जुन ने अपक्षों के संबन्ध में प्रश्न किया कि सगुण भगवान् या ईश्वर की पूजा करने वाले घोर अव्यक्त अक्षर तत्व की पूजा करने वाले इन दो प्रकार के भक्तों में कौन श्रेष्ठ है? भक्त को चाहिए कि अपने सब कर्मों का अर्पण, भगवान् को कर दे और भगवान् का ही ध्यान करो क मन, चित्त और बुद्धि इन तीनों को यदि ईश्वर में ठहरा दिया जाय तो मनुष्य के लिए भगवान् ही उसका निवास स्थान बन जाता है।" "तेरहवें का नाम क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ योग है। इस अध्याय से 'गीता' एक ऐसे क्षेत्र में उतरती है, जहां प्राचीन वैदिक परिभाषाओं की भरमार है। उदाहरण के लिए तेरहवें अध्याय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का विचार है। चौदहवें में तीन गुणों का विचार है। पन्द्रहवें में क्षर और अक्षर और अन्य इन तीन पुरुषों का विचार है। सोलहवें में देव और आसुरी, इन दो प्रकार की सृष्टियों का विचार है। सत्रहवें में तीन प्रकार की श्रद्धाओं की व्याख्या की गई है। अठारहवें अध्याय में पुनः कई मिश्रित परिभाषाओं पर ध्यान दिया गया है।" कुछ लोगों के मन में विचार आता होगा कि इन प्राचीन ग्रंथों में ऐसा क्या है? इसका उत्तर वासुदेवशरण अग्रवाल देते हैं कि अतीतकालीन साहित्य और संस्कृति के ऊंचे स्तूप में भूत की ठठरी के कुछ फूल रखे हुए मिलेंगे। केवल- मात्र

उनमें रुचि वर्तमान मानव के लिए अधिक उपयोगी नहीं; किन्तु उसी स्तूप के मस्तक पर एक देवसदन प्रतिष्ठित है, जो अमर है, जो काल से जड़ीभूत नहीं हुआ। विचारों की उस देव-हर्मिका के मध्य में एक अमृत कुम्भ रखा है। उस अमृत-घट के साथ जब हमारा मन मिल जाता है, तब हम उस घट के मुख को जीवन के नये-नये पल्लवों से लहलहाता हुआ देख सकते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राचीन समय का प्रत्येक शास्त्र, मन्त्र, ग्रन्थ, महावाक्य इसलिए महत्त्वपूर्ण है। 'गीता' इन्हीं तत्वों को पाकर शक्तिशाली बना है। 'गीता' अध्यात्मविद्या का ग्रन्थ है। धम्मपद के समान नीति-विद्या तक यह सीमित नहीं है, बल्कि कर्म की गाथा है। एक समय ऐसा था, जब यज्ञ को श्रेष्ठ कर्म मानते थे। कर्म के प्रकार युग धर्म के अनुसार परिवर्तनशील हैं। देश, काल और व्यक्ति के अनुसार कर्म अनेक प्रकार के हो सकते हैं और रहेंगे, किंतु उन सबकी सामान्य विशेषता है-फल की आशा के साथ करनेवाले का संबंध। फल का महत्त्वकर्ता की दृष्टि में जहाँ बढ़ा, वहीं कर्म के शुद्ध रूप को ग्रहण लग जाता है। इस दृष्टि से कृष्ण के निष्काम कर्मयोग का जीवन के लिए बहुत मूल्य है। अध्यात्म से तात्पर्य मनुष्य के मन की उस समस्या से है, जो आत्मा के विषय में, उसके अमृत स्वरूप, आदि और अन्त के विषय में, शरीर और कर्म के विषय में, संसार और उसमें होनेवाले अच्छे बुरे व्यवहारों के विषय में, आत्मा और ईश्वर के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में, एवं मानवी मन की जो ज्ञान, और भक्ति रूपी तीन विशेष प्रवृत्तियाँ हैं, उनके अनुसार किसी एक को विशेष रूप से स्वीकार करके सब प्रकार के जीवन व्यवहारों को सिद्ध करने और सबके समन्वय से जीवन को सफल, उपयोगी और आनन्दमय बनाने के विषय में उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार के अत्यन्त उदात्त लक्ष्य और जिज्ञासा की पूर्ति, जिस एक शास्त्र से होती है वह भगवद्गीता है। यह कविता शैली में लिखी गई है। इसके स्वर ऐसे प्रिय लगते हैं, जैसे किसी अत्यन्त प्रिय मित्र की वाणी अमृत बरसाती है। 'गीता' की सामग्री 'गीता' में है, यही इसके नित्य मूल्य का कारण है। आज भी वह जीवन के निकट की वस्तु है, इसीलिए उसमें रस है। जीवन से परे किसी अनजान स्वर्ग की टोह में 'गीता' कार ने अपना प्रयत्न नहीं किया। नित्यप्रति जीवन में जो समस्याओं का जमघट है, जिसे संघर्ष कहा जाता है, उसे बुद्धि की सहायता से सुलझाकर निर्मल मन और स्पष्ट कर्म के द्वारा जीवन-यात्रा में अग्रसर होना, इसी लक्ष्य के साथ 'गीता' कार बार-बार हर सिद्धांत का सूत्र मिलाते हैं। यही उनका अविचल केंद्र है, जिस पर व्यक्ति को खड़ा करके वह विश्व के साथ समता प्राप्त कराना चाहते हैं। यह दृष्टिकोण मानवी बुद्धि को ग्राह्य है। हममें से प्रत्येक व्यक्ति इसे अपने लिए अपनाकर उसके साथ तन्मय हो सकता है। इसका भारतीय जीवन के साथ घनिष्ठ रूप से संबंधित रही है। हमारी उदयोन्मुखी राष्ट्रीयता के निर्माण में भी 'गीता' के दृष्टिकोण से सहायता मिली है। यह प्रेरक शक्ति के रूप में राष्ट्र का मार्गदर्शन करती है। यह इस शास्त्र की पर्याप्त प्रशंसा है कि अर्वाचीन जीवन के लिए भी इसकी उपयोगिता में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई।

"हमारे अपने युग में 'गीता' की जो प्रधान व्याख्याएँ हुई हैं, उनमें लोकमान्य तिलक ने तो निष्काम कर्मयोग को 'गीता' के मथित अर्थ के रूप में समझाने का प्रयत्न किया था, किंतु महात्मा गाँधी ने स्थितप्रज्ञ के रूप में 'गीता' के सारांश को समझाने का प्रयत्न किया। 'गीता' के शब्दों में गाँधी जी द्वारा सत्य की स्थापना को धर्म संस्थापन कहा जा सकता है। धर्म का यही वास्तविक अर्थ देश के लंबे इतिहास के भीतर से हमें प्राप्त होता है।" गीताकार की दृष्टि में लोक का बहुत महत्त्व है। लोक के विषय में श्रीकृष्ण का बहुत ही सुलझा हुआ और नवीन युग का-सा दृष्टिकोण है - लोक व्यवहार के लिए कर्म करना आवश्यक है, मैं स्वयं इसी दृष्टि से काम करता हूँ। कर्म ही व्यक्ति के जीवन का कर्तव्य है। उससे मुँह मोड़कर अपनी परिस्थितियों से अलग शांति ढूँढना निरर्थक है। अकर्मण्य जीवन अशांति पूर्ण होता है। संघर्ष में कर्तव्यपालन से जो समस्थिति मिलेगी, वही सच्ची शांति की स्थिति होगी "'गीता' की पर्याप्त प्रशंसा शब्दों में करना अशक्य-सा ही है, क्योंकि विश्व के साहित्य में कर्मशास्त्र और मोक्षशास्त्र का ऐसा रसपूर्ण ग्रंथ कोई दूसरा उपलब्ध नहीं है, जिससे 'गीता' की तुलना की जा सके।"

निष्कर्ष- डॉ. अग्रवाल ने भारतसवित्री में गीता दर्शन की समीक्षा करते हुए विचार व्यक्त किया है, इस ग्रन्थ की अन्तः कुक्षि में सत्य का कोई-न-कोई बीज-मन्त्र छिपा है। विश्व-वृक्ष सत्य का ही दूसरा रूप है। उसके प्रत्येक पत्ते पर सत्य के बीजाक्षर लिखे हैं। इस ग्रन्थ, साहित्य या वाक्य में सत्य की शक्ति विद्यमान है, जो उसकी व्याख्या करता है, वही मानव के लिए उपयोगी है। प्रवृत्ति के अभाव में प्रमादवश समय का सदुपयोग न होने से आत्मबल टूटता है। मन इच्छाओं की भूमि है, कोई ही मन

ऐसा होगा जो कामनाओं का लीला-क्षेत्र न हो। कामनाओं को लेकर हम जब कर्म में प्रवृत्त होते हैं, तो मन पर एक बोझ रहता है। वैज्ञानिक शब्दों में कहें तो कह सकते हैं कि कामना से भरा हुआ मन तनाव की स्थिति में हो जाता है। अर्जुन को उपदेश देते हुए श्रीकृष्ण ने कहा कि सांख्ययोगियों की निष्ठा तो ज्ञान योग से होती है और योगियों की निष्ठा कर्मयोग से होती है। इसीलिए अर्जुन से दसों इन्दियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करने का उपदेश दिया। प्रवृत्ति ही निवृत्ति का आधार होती है। निवृत्ति का अर्थ संन्यास नहीं है, कर्म से फल की निवृत्ति अर्थात परिणाम की चिंता किये बिना धर्म-कर्म की प्रवृत्ति रखना। 'गीता' न योगी के लिए है, न संसार छोड़कर वैराग्य साधने वालों के लिए है, न कर्मकांड में रुचि रखने वालों के लिए है, और न नाम जपने वाले भक्तों के लिए है। वह इन सबके लिए एवं इनसे भी अधिक उन सब मानवों के लिए है, जो जीवन के मार्ग पर कहीं-न-कहीं चल रहे हैं। उनमें से हर एक के जीवन की समस्या तय करने के लिए प्रकृति के दिए हुए साधनों में हमारे पास मन, शरीर, इंद्रियाँ और बुद्धि है। इनपर संयम प्राप्त कर मनुष्य जीवन में कठिनाइयों पर विजय पाता है। यह मानव जीवन की समस्या के समाधान का वैज्ञानिक कर्मशास्त्र है। यह शास्त्र मानव को कर्मवीर बनने की प्रेरणा देता है। वह कर्मवीर अपने जीवन के उद्देश्य साधन के लिये पूर्णरूप से सज्जित और सन्नद्ध होकर कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण हो जाते हैं।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

1. अग्रवाल, वासुदेवशरण.(1984).भारत सावित्री (भाग -1) . नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल,पृ.सं.(भूमिका से)
2. अग्रवाल, वासुदेवशरण.(1984).भारत सावित्री (भाग -3) . नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, पृ.सं.- 250
3. अग्रवाल, वासुदेवशरण.(1984).भारत सावित्री (भाग -3) . नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, पृ.सं.- 246
4. वृंदावनदास.(सं.).डॉ.वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र (1974).दिल्ली : साहित्य प्रकाशन, पृ.सं. -09
5. अग्रवाल, वासुदेवशरण.(1985).भारत सावित्री (भाग -2) . नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, पृ.सं. 168
6. वात्स्यायन,कपिला.(सं.).(2012).वासुदेवशरण अग्रवाल रचना-संचयन. नई दिल्ली : साहित्य अकादेमी, पृ.सं. 254
7. अग्रवाल, वासुदेवशरण.(1985).भारत सावित्री (भाग -2) . नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, पृ. सं.- 173
8. अग्रवाल, वासुदेवशरण.(1985).भारत सावित्री (भाग -2) . नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, पृ. सं.- 181
9. अग्रवाल, वासुदेवशरण.(1985).भारत सावित्री (भाग -2) . नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, पृ. सं.-183
10. अग्रवाल, वासुदेवशरण.(1985).भारत सावित्री (भाग -2) . नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, पृ. सं.- 185
11. अग्रवाल, वासुदेवशरण.(1985).भारत सावित्री (भाग -2) . नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, पृ. सं.- 188
12. अग्रवाल, वासुदेवशरण.(1985).भारत सावित्री (भाग -2) . नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, पृ. सं.- 192
13. अग्रवाल, वासुदेवशरण.(1985).भारत सावित्री (भाग -2) . नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, पृ. सं.- 198
14. अग्रवाल, वासुदेवशरण.(1985).भारत सावित्री (भाग -2) . नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, पृ. सं.- 200
15. अग्रवाल, वासुदेवशरण.(1985).भारत सावित्री (भाग -2) . नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, पृ. सं.- 204
16. अग्रवाल, वासुदेवशरण.(1985).भारत सावित्री (भाग -2) . नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, पृ. सं.- 206
17. अग्रवाल, वासुदेवशरण.(1985).भारत सावित्री (भाग -2) . नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, पृ. सं.- 212
18. वात्स्यायन, कपिला.(सं.).(2012).वासुदेवशरण अग्रवाल रचना-संचयन. नई दिल्ली : साहित्य अकादेमी, पृ.सं. -137
19. अग्रवाल, वासुदेवशरण.(1985).भारत सावित्री (भाग -2) . नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल,पृ. सं. 151

नाम-मनीष ठाकुर
पता -फ्लैट संख्या-601, शिप्रा ब्लॉक, हरिनगर हाउसिंग सोसाइटी,
समीप - पटना एम्स.पटना -801505 फ़ोन नंबर -7295961005, ई-मेल-manish2uhindi@gmail.com

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

मैथिली लोकगीतों की सीता

डॉ. नूतन कुमारी
सहायक आचार्य, जमशेदपुर, झारखंड
मोबाइल नंबर : 9835375247

शोध सार : मैथिली लोकगीत मिथिला क्षेत्र की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का अभिन्न अंग हैं, जहाँ रामायण की नायिका सीता को एक लोक-नायिका के रूप में चित्रित किया जाता है। इस आलेख में मैथिली लोकगीतों में सीता के बहुआयामी चरित्र का विश्लेषण किया गया है, जिसमें वे एक प्रेमपूर्ण पुत्री, समर्पित पत्नी, दिव्य माता और शक्ति की प्रतीक के रूप में उभरती हैं। मिथिला की लोक परंपराओं में सीता को 'किशोरी' या 'जनक दुलारी' कहकर पुकारा जाता है, जो उनके पारिवारिक और सामाजिक महत्व को दर्शाता है। इसमें मुख्य रूप से विवाह गीतों, जन्मोत्सव गीतों, छठ पूजा और सामा-चकेवा जैसे त्योहारों से जुड़े लोकगीतों का अध्ययन किया गया है। उदाहरणस्वरूप, विवाह गीतों में सीता के स्वयंवर का वर्णन होता है, जहाँ 'सीता के सुरति देखि झखथि जनक ऋषि' जैसे पद सीता की सुंदरता और पवित्रता को व्यक्त करते हैं। ये गीत राम-सीता के मिलन को जीव और ब्रह्म के संघ के रूप में व्याख्यायित करते हैं, जो वैदिक दर्शन से प्रेरित हैं। साथ ही, लोकगीतों में सीता की वनवास कथा को दुख और त्याग की भावना से जोड़ा जाता है, लेकिन वे उनकी शक्ति को भी उजागर करते हैं, जैसे अग्निपरीक्षा में उनकी विजय। मैथिली लोकगीतों में सीता मिथिला की सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक हैं, जहाँ वे प्रकृति, ऋतुचक्र और स्त्री-शक्ति से जुड़ी दिखाई देती हैं। उदाहरण के लिए, वर्षा और वसंत से जुड़े गीतों में सीता को फसल और उर्वरता की देवी के रूप में दर्शाया जाता है, जो मिथिला की कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था को प्रतिबिंबित करता है। शोध में यह तर्क दिया गया है कि ये लोकगीत पितृसत्तात्मक समाज में सीता को मात्र आज्ञाकारी पत्नी के रूप में नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र और रक्षक शक्ति के रूप में स्थापित करते हैं, जो आधुनिक नारीवादी दृष्टिकोण से मेल खाते हैं।

बीज शब्द : सांस्कृतिक विरासत, बहुआयामी चरित्र, अग्निपरीक्षा, पितृसत्तात्मक, ऋतुचक्र।

विश्लेषणरू यह सत्य है कि मैथिली भाषा में रामायण अत्यन्त विलंब से रचा गया है। महाकाव्य हो या खण्डकाव्य मैथिल कवियों की दृष्टि सीता-राम विषयक तत्त्व पर सर्वथा उदासीन ही दिखी है लेकिन, लोक ने सीता-राम को जो महत्त्व, सम्मान, स्थान दिया है वह अकल्पनीय है। लोकगीत का संपर्क हृदय से होता है और ग्रामीण महिलाओं के सामूहिक प्रयत्न से रचे ये लोकगीत महाकाव्य या खण्डकाव्य के बँधे बँधाए परिपाटी पर नहीं चलते बल्कि इसे स्त्रियों की भावुक भावनाएँ संचालित करती हैं। वास्तव में ये भाव ही लोकगीत की मुख्य विशेषता एवं प्राणतत्त्व है।

मैथिली लोकगीतों में सीता मिथिला की प्रमुख पसंदीदा नायिका है लेकिन, सीता नायिका कम मिथिला की बेटी रूप में ही ज्यादा दिखती हैं। मिथिला के विभिन्न परंपराओं एवं संस्कारों जैसे सोहर, मुंडन, उपनयन, उचिती, फूल लोढ़ना, विवाह, परिछन, चुमाओन, सिंदूरदान, कोहबर, डहकन, महुअक, समदाउन, सम्मरि, उदासी, झूमर, पराती, बटगमनी आदि तथा ऋतु संबंधी गीतों में कजली, मलार, फाउग, चौतावर, बारहमासा आदि में सीता राम इतने समाए हुए हैं कि स्त्रियों के कंठ को सुशोभित तो करते ही हैं साथ ही इन लोकगीतों से जनमानस का मन विशेष रंजित होता है तथा लोक में आनंद एवं करुणा

का सम्यक संचार भी होता रहा है। एक विशेष बात यह है कि मैथिली लोकगीतों में सीता के भूमि प्रवेश का वर्णन नहीं के बराबर मिलता है, विरले गीतों में संकेत मात्र मिलता है। इन लोकगीतों से यह स्पष्ट होता है कि सीता राम के पूर्व ही शिव धनुष बड़ी सहजता से उठा सकती थी। जनक और सुनैना के हृदय की टीस उसी दिन जाग्रत हो जाती है जब मंदिर नीपते समय सुनैना की नजर धनुष उठाकर भूमि नीपती सीता पर पड़ती है। व्याकुल सुनैना जनक से कहती है कि सीता योग्य वर और कहीं नहीं मिलेगा अब सीता कुँवारी ही रहेगी–

एक दिन आहे सीता मंडिल निपय गेली
धनुख लेल उठाय
घर से बाहर भेल माय सुनैना
बैसि गेली देहरि झमाय[1]
राजा जनक सीता को देखते ही सोचते हैं
सीता कै सुरति देखि झखथि जनक ऋषि
आब सीता रहलि कुमारि यो [2]

सीता के विवाह के संबंध में विभिन्न मान्यताएँ लोक में विद्यमान है। किसी गीत में सीता के विवाह योग्य वर ढूंढ़ने के क्रम में स्वयं राजा जनक अयोध्या पहुंचकर सीता - राम का विवाह तय करते हैं।[3] एक अन्य गीत में सीता योग्य वर के लिए राजा जनक एक ब्राह्मण को अयोध्या भेजते हैं, जो सीता के लिए राम की मांग दशरथ से करते हैं और दशरथ तिलक चढ़ाते हैं। एक दूसरे गीत में सीता योग्य हजमा कहीं वर ढूढ़ नहीं पाता है जिसे सुनकर सुनैना पलंग से गिर पड़ती है और बज्र सा कठोर केवाड़ को ठोक लेती है। यह देख चिंतित सीता स्वयं जनक को अवधपुर जाने का संकेत देती हुई बताती है–

बाबा हे अहाँ जाउ ने अवधपुर राजा दशरथ के दुआर हे
राजा दशरथ जी के चारियो पुत्र ओतहि भेटत श्री राम हे
पहिले मे राम दोसर मे लछमन तेसर भरत भूपाल हे
पान कसैली बाबा तिलक चढ़ायब तुलसी के पत्र दहेज हे[4]

एक अन्य गीत में सीता का जनक से अरजी द्रष्टव्य है–

सुनु बाबा अरजी हमार यो
कुमारी कतेक दिन राखब इहो ने उचित व्यवहार यो[5]

यह वचन सुनकर जनक ऋषि सीता योग्य वर ढूँढने का प्रयास करते हैं पर कहीं नहीं मिलता अन्त में वसिष्ठ मुनि को न्यौता देते हैं जिनके साथ राम-लक्ष्मण भी आते हैं। राम को देखने के लिये सीता व्यग्र हो ऊँचे झरोखे पर खड़ी हो जाती है। धनुष टूटता है और सीता विवाह होता है।[6]

एक गीत में धनुष भंग के समय सीता ऊँचे झरोखे पर चढ़कर जब देखती है कि कोई वीर ऐसा नहीं जो धनुष तोड़ पा रहा है तो सीता अपने माँ को संबोधित कर कहती है–'माइ हे नै कियो दुनिया मे वीर पिता प्रण राखत हे' सीता के वचन को लक्ष्मण सुन लेते हैं और व्यग्र हो स्वयं धनुष तोड़ना चाहते हैं लेकिन, गुरु आज्ञा से राम धनुष तोड़ कर सीता का वरण करते हैं।

इस प्रकार लोकगीतों की सीता व्यक्तित्व की धनी, मुखर, शक्तिशालिनी, वीरों को चुनौती देने वाली सीता है। सीता मिथिला की बेटी है इस दृष्टिकोण से सीता का ऐसा वर्णन मैथिली लोकगीतों में ही संभव है। मिथिला में सीता के विवाह के पश्चात् विदाई बेला का कारुणिक दृश्य इस समदाउन में देखा जा सकता है–

बड़ रे जतन सँ सीया धिया पोसलहुँ
सेहो रघुबंसी नेने जाय[7]

एक अन्य गीत में देखें–

जनक नगर सँ चलली हे सीता, आमा देलनि रोदना पसार
के मोरा सीता लए बसिया जोगएती, के मुख करत दुलार[8]

मिथिला में रामवनगमन के कथा को लेकर भी कई मान्यताएँ प्रचलित हैं। एक गीत में यह बताया गया है कि सीता राम के साथ वन जाना चाहती है लेकिन, राम से कहते शर्माती है। सीता राम से केवल इतना कहती है कि आप तो मधुबन चले जाएँगे, मैं कैसे रहूँगी। राम समझ जाते हैं और इस भय से कि सीता के श्राप से सबकुछ भस्म हो जाएगा इसलिए उसे रथ में बैठाकर वन ले जाते हैं।[9]

लोककंठों ने ऐसा भी गाया है कि राम के वनगमन के प्रसंग में राम जब सीता को कौसल्या के साथ रहने कहते हैं तो सीता कहती हैं- मैं आपके वचन को नहीं मानूंगी चाहे धर्म हो या पाप, चाहे मुझे कितना भी भूख प्यास लगे, वन फल खाकर जी लूँगी लेकिन, मैं वन जाऊँगी।[10] तुलसीदास की सीता में बहुओं में होने वाले गुण विशेष रूप से परिलक्षित होते हैं जबकि मैथिली लोकगीत सीता के बेटी पक्ष को बखूबी निबाहा है।

जब सीता वनगमन को जाती है तो वह विचार करती हुई जाती है कि विधाता ने कैसा मेरा करम लिखा है कि चौदह वर्ष का वनवास मिल रहा है। सीता लक्ष्मण से धीरे-धीरे चलने कहती है क्योंकि उनके पैर में दर्द हो रहा है। माता कैकेयी से मन ही मन पूछती है कि मैंने ऐसा क्या बिगाड़ा कि इस तरुण वयस में मुझे वनवास दे दिया।[11] लोकगीतों में एक अत्यन्त मार्मिक गीत है, वन में लव-कुश के जन्म के बाद सीता हजमा को अवधपुर खबर करने भेजती है जिसे पहले माता कौसल्या फिर माता सुमित्रा से देने कहती है लेकिन, राम को किसी भी हाल में पता न चले इसका संकेत देती है। कौसल्या, सुमित्रा तथा लक्ष्मण हजमा को सोना, कंगना, पाग आदि देती हैं और राम को कुछ भी पता नहीं चलता है लेकिन, एक पोखर के तट पर राम दतवन करते समय जब हजमा को देखे तो उससे पूछते हैं कि हे हजमा तुम कहाँ के हो, कौन पाती लिखा है और किसे नन्दलाल हुआ है तो हजमा से रहा नहीं जाता है और वह बता देता है कि सीता पाती लिखी है, सीता को नन्दलाल हुआ है। प्रसन्न राम यह सुनकर सीता के पास यह संवाद भेजते हैं कि सीता सुख-दुख भूल जाए और अवधपुर आ जाए। यह संवाद सीता के लिए अत्यन्त क्रोधपूर्ण तथा रोषपूर्ण था, जो सीता के उक्ति से प्रकट होता है—'आगि लगेबइ हम अजोध्या आ बज्र अवधपुर रे/ललना रे पहिल वियोग जब मोन पोड़य बनहि से बन जाई रे!' (मैं अयोध्या को आग लगाउँगी और अवधपुर पर वज्र गिराऊँगी। जब पहला वियोग याद आता है तो लगता है कि इस वन से दूसरे वन में चली जाऊँ) मैथिली लोकगीतों में सीता के भूमि प्रवेश का वर्णन नहीं के बराबर मिलता है, विरले गीतों में संकेत मात्र मिलता है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि मैथिली लोकगीतों की सीता तुलसीदास की सीता की तरह सर्वसहा सीता नहीं है। वह अपनी वेदना को प्रकट करने में तनिक भी झिझकती नहीं है। वह सीता सब को क्षमा कर देती है लेकिन, राम को नहीं। हाँ, उसी राम को जिसने गर्भावस्था में सीता को वनवास दे दिया था। आज भी सीता वनवास का दुख और क्रोध मिथिला के कथाओं और लोकगीतों में उद्दीप्त है। वह ताप आज भी मिथिलावासी के हृदय को तप्त करता रहता है। यही कारण है कि मिथिलावासी अपने बेटियों का विवाह अयोध्या या अन्य प्रान्त में नहीं करना चाहते हैं।

निष्कर्ष

मैथिली लोकगीतों में सीता का चित्रण मिथिला की सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक विरासत का एक जीवंत प्रतिबिंब है। इस शोध से स्पष्ट होता है कि सीता मात्र रामायण की एक पात्र नहीं, बल्कि लोकजीवन की एक जीवंत नायिका हैं, जो मिथिला की स्त्रियों के दुख, सुख, संघर्ष और शक्ति को प्रतिध्वनित करती हैं। मैथिली लोकगीत वैदिक और लोक परंपराओं का अनोखा मिश्रण हैं, जहाँ सीता को पितृसत्तात्मक ढांचे में भी एक स्वतंत्र शक्ति के रूप में स्थापित किया गया है। अग्निपरीक्षा जैसे प्रसंगों में उनकी विजय स्त्री-शक्ति की प्रतीक है, जो आधुनिक नारीवादी विमर्श से जुड़ती है। साथ ही, ये गीत मिथिला की कृषि-आधारित जीवनशैली को प्रतिबिंबित करते हैं, जहाँ सीता को उर्वरता और ऋतुचक्र की देवी माना जाता है। तुलनात्मक विश्लेषण से पता चलता है कि वाल्मीकि रामायण और तुलसीदास के रामचरितमानस से भिन्न, मैथिली लोकगीतों में सीता

अधिक मानवीय और स्थानीय हैं, जो मौखिक परंपरा की ताकत को रेखांकित करते हैं। हालाँकि, आधुनिकीकरण और शहरीकरण के कारण ये लोकगीत लुप्तप्राय हो रहे हैं। शोध से यह निष्कर्ष निकलता है कि मैथिली लोकगीतों का संरक्षण आवश्यक है, ताकि सीता जैसी आकृतियाँ सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखें। भविष्य में, डिजिटल अभिलेखागार और लोककला शिक्षा के माध्यम से इन गीतों को संरक्षित किया जा सकता है। इससे न केवल मिथिला की पहचान मजबूत होगी, बल्कि भारतीय लोकसाहित्य की विविधता भी संरक्षित रहेगी। अंततः, मैथिली लोकगीतों की सीता हमें सिखाती हैं कि लोकपरंपराएँ इतिहास को जीवित रखने का माध्यम हैं, जो पीढ़ी दर पीढ़ी संस्कृति को समृद्ध करती हैं। यह शोध मैथिली साहित्य के अध्ययन में एक नया आयाम जोड़ता है, जो आगे के अनुसंधानों के लिए आधार प्रदान करेगा।

संदर्भ सूची

1. दलितवर्गीय लोक व्यवहार गीत, सं. बुचरू पासवान, गीत-138
2. मैथिली लोकगीत, संकलन-अणिमा सिंह, गीत-464
3. वही, गीत-464
4. वही, गीत-454
5. वही, गीत-481
6. वही, गीत-481
7. गीतनाद, संकलन-डॉ. विभूति आनन्द, ज्योत्स्ना आनन्द, गीत-599
8. गीतनाद, संकलन-डॉ. विभूति आनन्द, ज्योत्स्ना आनन्द, गीत-594
9. दलितवर्गीय लोक व्यवहार गीत, सं. बुचरू पासवान, गीत-63
10. मैथिली लोकगीत, संकलन-अणिमा सिंह, गीत-959
11. गीतनाद, संकलन-डॉ. विभूति आनन्द, ज्योत्स्ना आनन्द, गीत-567

पत्राचार का पताः फ्लैट-7571, बद्रीनाथ 75, विजयागार्डन्स, बारीडीह,
जमशेदपुर, पूर्वी सिंहभूम, झारखण्ड, पिन-831017
मोबाइल नंबर : 9835375247

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

नव नियुक्त शिक्षकों की चुनौतियाँ और समाधान

अमित कुमार
सहायक प्राध्यापक (शिक्षा विभाग)
श्याम शिक्षा महाविद्यालय, सक्ती (छ.ग.)
ईमेलः- amitjangde786@gmail.com

सारांश

नव नियुक्त शिक्षक शिक्षा जगत में नई ऊर्जा के साथ प्रवेश करते हैं, लेकिन उन्हें अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इनमें कक्षा प्रबंधन, पाठ योजना, तकनीकी दक्षता की कमी, मूल्यांकन की जटिलता, प्रशासनिक दबाव और आत्मविश्वास की कमी प्रमुख हैं। इन चुनौतियों का समाधान उचित प्रशिक्षण, वरिष्ठों से मार्गदर्शन, समय प्रबंधन, सकारात्मक सोच और सहयोगी वातावरण के माध्यम से किया जा सकता है। यदि नव शिक्षक इन समस्याओं को सीखने के अवसर के रूप में लें, तो वे एक सफल, प्रेरणादायक और प्रभावशाली शिक्षक बन सकते हैं।

परिचय

शिक्षक समाज के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे न केवल ज्ञान का संप्रेषण करते हैं, बल्कि विद्यार्थियों के चरित्र, सोच और भविष्य का भी निर्माण करते हैं। जब कोई शिक्षक नई नियुक्ति के साथ अपने सेवा जीवन की शुरुआत करता है, तो उसके सामने कई प्रकार की व्यावहारिक, मानसिक और सामाजिक चुनौतियाँ होती हैं। अनुभव की कमी, संसाधनों की अनुपलब्धता, छात्रों और अभिभावकों की अपेक्षाएँ, तथा प्रशासनिक दबाव जैसे कई पहलू उनकी राह को कठिन बना देते हैं। इन चुनौतियों से निपटने के लिए उचित मार्गदर्शन, प्रशिक्षण और सहयोग की आवश्यकता होती है, ताकि नव नियुक्त शिक्षक न केवल स्वयं को स्थापित कर सकें, बल्कि शिक्षा की गुणवत्ता को भी बनाए रख सकें।

इस लेख में हम नव नियुक्त शिक्षकों की प्रमुख चुनौतियों और उनके प्रभावी समाधानों पर प्रकाश डालेंगे।

बीज शब्द (Keywords)- नव नियुक्त शिक्षकों की चुनौतियाँ और समाधान विषय के लिए–

नव नियुक्त शिक्षक, चुनौतियाँ, कक्षा प्रबंधन, पाठ योजना, तकनीकी ज्ञान, मूल्यांकन प्रणाली, प्रशासनिक कार्य, आत्मविश्वास, समाधान, प्रशिक्षण, मार्गदर्शन, संवाद कौशल, समय प्रबंधन सहयोग, नवाचार।

अध्ययन की आवश्यकता (Need of the Study)

नव नियुक्त शिक्षकों की चुनौतियों और समाधान पर अध्ययन की आवश्यकता निम्न कारणों से महत्वपूर्ण है–

1. शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार

नए शिक्षक शिक्षा व्यवस्था की रीढ़ होते हैं। यदि उनकी प्रारंभिक कठिनाइयों को समय रहते हल किया जाए, तो शिक्षण की गुणवत्ता और विद्यार्थियों के परिणाम बेहतर हो सकते हैं।

2. अनुभव की कमी की पूर्ति

प्रारंभिक वर्षों में शिक्षक के पास व्यावहारिक अनुभव सीमित होता है। यह अध्ययन यह समझने में मदद करेगा कि किन क्षेत्रों में प्रशिक्षण और मार्गदर्शन की अधिक आवश्यकता है।

3. शिक्षक पलायन की रोकथाम

प्रारंभिक चुनौतियों से जूझते समय कई शिक्षक नौकरी छोड़ देते हैं। अध्ययन से प्राप्त समाधान उनकी स्थिरता बढ़ा सकते हैं।

4. नीतिगत सुधार हेतु आधार

सरकार और शिक्षा विभाग इस अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर प्रशिक्षण कार्यक्रम, मेंटरशिप योजना और संसाधन वितरण को बेहतर बना सकते हैं।

5. व्यक्तिगत व व्यावसायिक विकास

अध्ययन से नए शिक्षक अपनी कमजोरियों की पहचान कर आत्मविश्वास, समय प्रबंधन, और तकनीकी दक्षता में सुधार कर पाएंगे।

6. आधुनिक शिक्षण चुनौतियों से निपटना

डिजिटल युग में ऑनलाइन क्लास, स्मार्ट टूल्स और नई शिक्षण पद्धतियों के अनुकूल होना आवश्यक है। यह अध्ययन इन क्षेत्रों में क्षमता निर्माण के मार्ग सुझाएगा।

उद्देश्य

नव नियुक्त शिक्षकों को आने वाली प्रमुख चुनौतियों की पहचान करना ताकि वे पहले से मानसिक और व्यावहारिक रूप से तैयार रह सकें।

शिक्षक बनने की चुनौतियाँ

शिक्षण में, आपका हर दिन अलग होता है, और इसके साथ चुनौतियाँ भी आ सकती हैं। आपको उपद्रवी बच्चों को संभालने, समावेशी शिक्षा के लिए नई शिक्षण विधियाँ खोजने, या स्मार्ट और डिजिटल शिक्षा की निरंतर विकसित होती दुनिया के साथ तालमेल बिठाने के लिए अपने कौशल को उन्नत करने की चुनौती का सामना करना पड़ सकता है। विभिन्न संभावित चुनौतियों को समझने से आपको अपने शिक्षार्थियों और उनके अभिभावकों, अन्य शिक्षकों और प्रशासन के साथ काम करने के लिए पर्याप्त रूप से तैयार होने में मदद मिलती है।

एक सफल शिक्षक कैसे बनें

एक सफल शिक्षक न केवल प्रभावी ढंग से ज्ञान प्रदान करता है, बल्कि छात्रों को प्रेरित और संलग्न भी करता है, जिससे एक सकारात्मक और समावेशी शिक्षण वातावरण बनता है और, अपने शिक्षण करियर में सफलता आपको अपने पेशे की बेहतर सराहना करने में मदद करती है। एक सफल शिक्षक बनने के लिए विशेषज्ञता, पारस्परिक कौशल और आजीवन सीखने की प्रतिबद्धता का संयोजन आवश्यक है।

यहाँ कुछ तरीके दिए गए हैं जिनसे आप एक सफल शिक्षक बन सकते हैं–

1. अपने छात्रों को प्रेरित करें

अपने छात्रों को हर दिन कड़ी मेहनत करने के लिए चुनौती दें और उन्हें उन उपलब्धियों को प्राप्त करने में मदद करें जिनके बारे में उन्होंने कभी सोचा भी नहीं होगा। यदि आपके छात्र एक अनुशासनप्रिय व्यक्ति हैं या खराब तरीके से किए गए असाइनमेंट पर ध्यान देते हैं, तो आप प्रोत्साहन, धैर्य और दयालुता का दृष्टिकोण अपना सकते हैं। उदाहरण के लिए,

आप हमेशा छात्रों के अच्छे काम के लिए व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से उनकी प्रशंसा करने का कोई न कोई कारण ढूँढ़ सकते हैं। इसके अलावा, आप उन विशिष्ट पहलुओं का पता लगा सकते हैं जिनमें प्रत्येक छात्र संलग्न होता है और उन्हें उन पहलुओं में अपनी रुचि विकसित करने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं।

2. अपने छात्रों की सुरक्षा को प्राथमिकता दें

आपकी जिम्मेदारियों में से एक यह सुनिश्चित करना है कि आप कक्षा के भीतर और बाहर, अपने शिक्षार्थियों के लिए एक सुरक्षित शिक्षण वातावरण सुनिश्चित करें। एक सुरक्षित वातावरण आपके सभी शिक्षार्थियों को ज्ञान की खोज में सहायता करता है, उनकी जिज्ञासा को जगाता है और उन्हें कक्षा की गतिविधियों में भाग लेने के लिए सशक्त महसूस कराता है। अपनी कक्षा में, सीखने के लिए एक अनुकूल शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक वातावरण बनाने का जानबूझकर प्रयास करें।

उदाहरण के लिए, दयालुता को बढ़ावा देने के लिए, आपका दैनिक स्वर उत्साहजनक और शांत होना चाहिए, जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि सभी छात्र सीखने पर ध्यान केंद्रित करने में सुरक्षित और सहज महसूस करें। इसके अतिरिक्त, अपनी कक्षा की भौतिक व्यवस्था को इस तरह से डिजाइन करें कि छात्रों की सुरक्षा और सीखने को अधिकतम समर्थन मिले। इसके अलावा, अपनी पाठ योजना और कक्षा गतिविधियों को आत्म-अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करने और विविधता और व्यक्तिगत शिक्षार्थी की उपलब्धियों का जश्न मनाने के इर्द-गिर्द डिजाइन करें।

3. विभिन्न शिक्षण दृष्टिकोणों का प्रयोग करें

अपनी कक्षा में विभिन्न शिक्षण रणनीतियों को अपनाने से आप विभिन्न शिक्षण शैलियों को समायोजित कर सकते हैं।

उदाहरण के लिए, आप व्याख्यान छोड़ सकते हैं और शिक्षार्थियों के लिए समूह शिक्षण गतिविधियाँ बना सकते हैं। आप विषय से संबंधित मूर्त वस्तुएँ भी ला सकते हैं ताकि आपके शिक्षार्थी उनसे बातचीत कर सकें और उनसे सीख सकें। कक्षा चर्चाओं के दौरान, अपने शिक्षार्थियों को अमूर्त विचारों और व्यावहारिक उदाहरणों का मिश्रण प्रदान करें। याद रखें कि क्षेत्र भ्रमण और व्यावहारिक शिक्षण, बेहतर अवधारणात्मकता के माध्यम से, आपके शिक्षार्थियों के लिए अवधारणाओं को अधिक यादगार बनाते हैं।

4. कक्षा के नियम निर्धारित करें

कक्षा के नियम निर्धारित करने से आपके शिक्षार्थियों की शारीरिक और भावनात्मक सुरक्षा बढ़ती है और उनके सीखने के अनुभवों में व्यवधान नहीं आते। सर्वोत्तम शिक्षा और भावनात्मक सफलता के लिए, सुनिश्चित करें कि कक्षा के नियम निष्पक्ष और उचित हों। साथ ही, कक्षा के व्यवहार की सीमाओं और अपेक्षाओं को समझने में उनकी मदद करने के लिए स्पष्ट और सुसंगत परिणामों वाले नियम निर्धारित करें।

इसके अलावा, सभी छात्रों को यह समझना और महसूस करना चाहिए कि कक्षा के नियम एक सुरक्षित शिक्षण वातावरण बनाने, उनके सीखने के अनुभवों को समृद्ध करने के लिए हैं, न कि उन्हें सीमित करने के लिए।

सर्वोत्तम नियम बनाने के लिए, निम्नलिखित पर विचार करें–

- नियम विशिष्ट होने चाहिए- यह सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण है कि शिक्षार्थी नियमों को समझें, जिससे स्पष्टता आए।
- नियम सकारात्मक होने चाहिए- इससे उन्हें स्वीकार्य चीजों की स्पष्ट तस्वीर मिलेगी। उदाहरण के लिए, आप कह सकते हैं, ''कक्षा में धीरे बोलें,'' न कि ''कक्षा में चिल्लाएँ''।
- कक्षा के नियम अनुकूलनीय होने चाहिएए– आपको समय-समय पर उनकी प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना चाहिए। यदि कोई नियम किसी विशेष समय पर काम नहीं कर रहा है, तो उसे बदल दें।
- आपके कक्षा के नियम कम होने चाहिएए– इस तरह, नियमों को समझना और याद रखना आसान होगा।
- नियमों के परिणाम होने चाहिए– परिणाम निर्धारित करने से वांछित व्यवहार को बढ़ावा मिलेगा और अवांछित

व्यवहार को हतोत्साहित किया जा सकेगा।

5. पढ़ाते समय रचनात्मक बनें

कक्षा में रचनात्मकता के लिए यह आवश्यक है कि आप पढ़ाने के मजेदार नए तरीके अपनाएँ। उदाहरण के लिए, आप तकनीक का उपयोग करके अवधारणाओं को प्रस्तुत कर सकते हैं और पाठ्यपुस्तकों को पढ़ने और अवधारणाओं पर सैद्धांतिक चर्चा करने के बजाय शिक्षार्थियों को अधिक प्रयोग करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। क्षेत्र भ्रमण भी शिक्षार्थियों के लिए अपने सीखने के माहौल को बदलने और अवधारणाओं की उनकी समझ और स्मृति को बेहतर बनाने का एक शानदार तरीका है। रचनात्मकता के लिए आपको अपने पाठों की पहले से योजना बनानी होगी और सभी शिक्षण सामग्री को पहले से व्यवस्थित करना होगा। आप जिस पाठ्यक्रम को पढ़ा रहे हैं, उसके लिए व्यापक दृष्टिकोण स्थापित करने के लिए मासिक कैलेंडर बनाएँ।

नव नियुक्त शिक्षकों की प्रमुख चुनौतियाँ

नव नियुक्त (नई भर्ती हुए) शिक्षक जब पहली बार स्कूल या शिक्षण संस्था में कार्यभार ग्रहण करते हैं, तो उन्हें कई प्रकार की व्यावसायिक, मानसिक, और सामाजिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। ये चुनौतियाँ उनके शिक्षण कार्य को प्रभावित कर सकती हैं यदि उनका समुचित समाधान न किया जाए। नीचे इन चुनौतियों का विस्तृत विवरण दिया गया है–

1. अनुभव की कमी

- नए शिक्षक अक्सर शिक्षण तकनीकों, कक्षा प्रबंधन, और विद्यार्थियों की विविध आवश्यकताओं को समझने में अनुभवहीन होते हैं।
- पाठ योजना (Lesson Plan) बनाना, मूल्यांकन करना और पढ़ाने की प्रभावी विधियाँ अपनाने में समय लगता है।

2. कक्षा प्रबंधन (Classroom Management)

- छात्र अनुशासन बनाए रखना, शोर-शराबे को नियंत्रित करना, और सभी छात्रों की भागीदारी सुनिश्चित करना एक बड़ी चुनौती होती है।
- विद्यार्थियों की विभिन्न क्षमताओं और व्यवहारों को समझना कठिन होता है।

3. समय प्रबंधन

- स्कूल के समय-सारिणी, पढ़ाई, कॉपी जांचना, अभिभावक बैठक, रिपोर्ट बनाना आदि कार्यों को संतुलित करना कठिन हो सकता है।
- कभी-कभी निजी जीवन और पेशेवर जीवन में संतुलन बनाना भी चुनौतीपूर्ण हो जाता है।

4. तकनीकी ज्ञान की कमी

आजकल की डिजिटल शिक्षा प्रणाली (Smart Classes, Online Teaching, E-Content) में तकनीकी दक्षता आवश्यक है, जो कई नव नियुक्त शिक्षकों को प्रारंभ में नहीं होती।

उन्हें समय के साथ कंप्यूटर, प्रोजेक्टर, स्लै आदि तकनीकों को सीखना होता है।

5. प्रशिक्षण व मार्गदर्शन की कमी

- कई बार स्कूलों में नव नियुक्त शिक्षकों के लिए पर्याप्त इन-हाउस प्रशिक्षण या मार्गदर्शन नहीं होता।
- मेंटरशिप और सहयोगी वातावरण की कमी उनके आत्मविश्वास को कम कर सकती है।

6. मूल्यांकन और परीक्षा प्रणाली की समझ

- नव शिक्षक को परीक्षा की योजना बनाना, प्रश्न-पत्र तैयार करना और निष्पक्ष मूल्यांकन करना सीखने में कठिनाई होती है।

7. विद्यार्थियों और अभिभावकों से संवाद

• नए शिक्षक को विद्यार्थियों की मानसिकता समझने और अभिभावकों से सकारात्मक संवाद स्थापित करने में परेशानी हो सकती है।

• कभी-कभी उन्हें विद्यार्थियों की सामाजिक या पारिवारिक पृष्ठभूमि के अनुसार व्यवहार ढालने में कठिनाई होती है।

8. कार्यस्थल पर राजनीति और दबाव

• स्कूल या संस्था के प्रशासनिक कार्य, सहकर्मियों के साथ तालमेल, और कभी-कभी कार्यस्थल की राजनीति भी तनाव का कारण बन सकती है।

• वरिष्ठों से अपेक्षाएँ और उनकी तुलना भी नए शिक्षक को दबाव में डाल सकती है।

9. निरंतर मूल्यांकन और निरीक्षण

नव शिक्षक के कार्य पर अक्सर निगरानी होती है, जिससे वे खुद को ष्जजष् होते महसूस करते हैं और उनका आत्मविश्वास डगमगा सकता है।

10. संसाधनों की कमी

कई सरकारी और ग्रामीण स्कूलों में पुस्तकें, स्मार्ट क्लास, लैब आदि सुविधाओं की कमी होती है, जिससे प्रभावी शिक्षण कठिन होता है।

नव नियुक्त शिक्षकों की चुनौतियों के समाधान के कुछ सुझाव

1. मेंटोरशिप (Mentorship) या मार्गदर्शन प्रणाली

• अनुभवी शिक्षकों को मेंटर नियुक्त करें जो नव शिक्षकों को शिक्षण शैली, कक्षा प्रबंधन, पाठ योजना आदि में मार्गदर्शन दे सकें।

• नव शिक्षक को शुरू के कुछ महीनों तक नियमित रूप से फीडबैक और सहयोग मिलना चाहिए।

2. पूर्व-सेवा और सेवा-पूर्व प्रशिक्षण (Pre-service and In-service Training)

• नियुक्ति से पहले और बाद में प्रशिक्षण कार्यक्रम अनिवार्य हों जिनमें शैक्षणिक, तकनीकी और मनोवैज्ञानिक कौशल सिखाए जाएँ।

• प्रशिक्षण में डिजिटल उपकरणों, नई शिक्षण विधियों (जैसे समूह कार्य, प्रोजेक्ट आधारित शिक्षण) और मूल्यांकन तकनीकों पर विशेष ध्यान दिया जाए।

3. सकारात्मक कार्यस्थल वातावरण

• स्कूल प्रशासन को सहयोगी और प्रोत्साहन देने वाला माहौल बनाना चाहिए जहाँ नव शिक्षक बिना डर के अपनी समस्याएँ साझा कर सकें।

• स्वस्थ संवाद और सहकमी सहयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

4. समय प्रबंधन कौशल में सुधार

• नव शिक्षकों को टाइम मैनेजमेंट और प्राथमिकता निर्धारण के कौशल सिखाए जाएँ ताकि वे शैक्षिक कार्यों और व्यक्तिगत जीवन में संतुलन बना सकें।

• समय-सारणी के अनुसार कार्य करना सिखाया जाए।

5. तकनीकी दक्षता विकसित करना

• नव शिक्षकों को ऑनलाइन टूल्स, ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म, स्मार्ट बोर्ड, और अन्य तकनीकी उपकरणों का प्रशिक्षण दिया जाए।

• उन्हें स्कूल के प्ज्ू संसाधनों का प्रभावी उपयोग करना सिखाया जाए।

6. मूल्यांकन एवं परीक्षा प्रणाली की समझ

- नव शिक्षकों को मूल्यांकन की विभिन्न विधियाँ (Objective, Formative, Summative) सिखाई जाएँ।
- फेयर और समुचित मूल्यांकन तकनीक को अपनाने के लिए कार्यशालाएँ आयोजित की जाएँ।

7. आत्म-सुधार व निरंतर अध्ययन

- नव शिक्षकों को निरंतर अध्ययन और आत्म-मूल्यांकन की आदत डालनी चाहिए।
- शैक्षिक पत्रिकाएँ पढ़ना, वेबिनार में भाग लेना और नवीनतम शैक्षिक शोध से जुड़े रहना उनके विकास में सहायक होगा।

8. संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करना

शिक्षकों को पाठ्य-पुस्तकें, टीचिंग एड्स, डिजिटल संसाधन आदि समय पर उपलब्ध कराना।
संसाधनों की कमी होने पर स्थानीय नवाचार (Local Innovations) को प्रोत्साहित करना।

9. सकारात्मक अभिप्रेरणा (Motivation) देना

- नव शिक्षकों के छोटे-छोटे प्रयासों को भी मान्यता देना और उनका मनोबल बढ़ाना।
- उन्हें आत्मविश्वास दिलाने के लिए सफलता की कहानियाँ और सकारात्मक उदाहरण साझा करना।

10. अभिभावक और समुदाय से संवाद कौशल

- नव शिक्षक को सकारात्मक संवाद की कला सिखाई जाए जिससे वे अभिभावकों और समुदाय से स्वस्थ संबंध बना सकें।
- छात्र की सामाजिक पृष्ठभूमि को समझकर शिक्षण शैली में लचीलापन लाना।

निष्कर्ष

नव नियुक्त शिक्षक किसी भी शिक्षा व्यवस्था की रीढ़ होते हैं, लेकिन अपनी नियुक्ति के शुरुआती चरण में वे अनेक शैक्षणिक, मानसिक, सामाजिक और तकनीकी चुनौतियों का सामना करते हैं। अनुभव की कमी, कक्षा प्रबंधन की दिक्कतें, तकनीकी ज्ञान में पिछड़ापन, और कार्यस्थल पर सहयोग की कमी जैसी समस्याएँ उनके आत्मविश्वास और कार्यक्षमता को प्रभावित कर सकती हैं। इन चुनौतियों का समाधान केवल शिक्षक के व्यक्तिगत प्रयास से नहीं, बल्कि प्रशासनिक सहयोग, सुनियोजित प्रशिक्षण, मार्गदर्शन, और सकारात्मक कार्य संस्कृति से ही संभव है। यदि स्कूल प्रशासन, वरिष्ठ शिक्षक और नीति निर्माता नव शिक्षकों के लिए उपयुक्त संसाधन, प्रशिक्षण और समर्थन प्रदान करें, तो वे न केवल इन चुनौतियों को सफलतापूर्वक पार कर सकते हैं, बल्कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान कर भविष्य की पीढ़ियों को बेहतर आकार दे सकते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि नव नियुक्त शिक्षकों को बोझ नहीं, बल्कि भविष्य के राष्ट्रनिर्माता के रूप में देखा जाए और उनके विकास में पूरा सहयोग दिया जाए।

संदर्भ ग्रंथ

1. https://acacia-edu.translate.goog/blog/5-problems-teachers-face-at-work/?_x_tr_ sl=en-_x_tr_ tl=hi-_x_tr_hl=hi&_x_tr_pto=tc
2. https://openpublichealthjournal-com.
   https://www-teachersoftomorrow-org.translate.goog/blog/insights/challesnges-of-becoming-a-teacher/?_x_tr_sl=en&_x_tr_tl=hi&_x_tr_hl=hi&_x_tr_pto=tc

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

पारिवारिक वातावरण एवं शैक्षिक उपलब्धि का संबंध

जयश्री वर्मा
पी. एच. डी. शोधार्थी (शिक्षा)
भारती विश्वविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)

डॉ. मंजू साहू
सह-प्राध्यापक (शिक्षा संकाय)
भारती विश्वविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)

सारांश :

प्रस्तुत शोध लेख में पारिवारिक वातावरण एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य संबंध का अध्ययन किया गया है। प्रायः देखा जाता है कि बालकों के अध्ययन-अध्यापन को प्रभावित करने के लिए (हेतु) पारिवारिक संबंध, मूलभूत सुविधाएँ व पारिवारिक प्रोत्साहन आदि महत्वपूर्ण कारक होते है। अतः शोधकर्ता के द्वारा विभिन्न प्रकाशित तथा अप्रकाशित ग्रंथों का अध्ययन किया गया तत्पश्चात् अपने अनुभवों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला (प्राप्त किया) कि पारिवारिक वातावरण, परिवार के व्यक्तियों का विद्यार्थियों के प्रति व्यवहार उसके शैक्षिक विकास को प्रभावित करता है।

मुख्य शब्दावली - पारिवारिक वातावरण, शैक्षिक उपलब्धि।

प्रस्तावना :

बाल्याकाल में बालक अधिकांशतः अपने माता-पिता के संपर्क में रहता है क्योंकि माता-पिता ही उसके भविश्य के निर्माण में सहायक होते है। माता-पिता का व्यक्तित्व, सामाजिक व्यवहार, बातचीत का तरीका, पारस्परिक आचरण एवं रूचि से बालक का व्यक्तित्व प्रभावित होता है। माता का सहयोग बालक के लिए महत्वपूर्ण होता है, जिससे बालक का भविश्य उज्जवल होता है। माता-पिता के द्वारा ही बालकों में संस्कारों का उद्भव होता है।

वर्तमान काल में प्रतिस्पर्धाओं की होड़ सी लगी है। बाल्यावस्था से ही माता-पिता बालक के कैरियर के प्रति चिंतित रहते है जिसका प्रभाव बालक के शैक्षिक विकास पर पड़ता है। पारिवारिक वातावरण में बालक समाज में निर्दिष्ट मूल्यों, आचरणों एवं व्यवहारों का अवलोकन करते हुए, माता-पिता तथा विद्यालय के द्वारा निर्देशित कार्यों को करते हुए जीवन पथ पर अग्रसर होता है। परिवार में शिक्षा एवं प्रशिक्षण के साथ-साथ अनुदेशन की प्रक्रिया भी चलती है। अतः परिवार के सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक वातावरण का बालक के मन मस्तिष्क पर विशेश प्रभाव पड़ता है। माता-पिता के बीच मधुर संबंध होने पर बालक में भी अच्छे गुणों का विकास होता है और उसके अंदर आत्मविश्वास भी उत्पन्न होगा और संबंध मधुर नही होने पर बालक में आत्मविश्वास की कमी होगी और उसके शैक्षिक विकास में बाधा उत्पन्न होगी अतः पारिवारिक संबंध, मूलभूत सुविधाएँ व पारिवारिक प्रोत्साहन आदि कारक बालक के अध्ययन-अध्यापन को प्रभावित करते हैं।

अभिभावक बालक के अतःकरण में जिस छवि को स्थापित करते हैं, बालक भविश्य में वही बनने की कोशिश करता है। इस कार्य में शिक्षक का व्यवहार, बालक की रूचि, सामाजिक एवं आर्थिक स्तर का गहरा प्रभाव पड़ता है। ये सभी कारक सकारात्मक होने से बालक की शैक्षिक उपलब्धि उच्च होती है। अध्ययनरत् बालक को अभिप्रेरणा, प्रोत्साहन व पुर्नबलन मिलने से उसका शैक्षिक गतिविधियों की प्रकृति एवं व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है।

पारिवारिक वातावरण बालक के प्रारंभिक शिक्षा का आधार बनता है जिसमें बालक अपने पारिवारिक सदस्यों के साथ अपना व्यवहार निर्धारित करता है साथ ही पारिवारिक वातावरण स्वस्थ होने पर बालक का सर्वांगीण विकास उचित ढ़ंग से होता है। पारिवारिक सदस्यों का रहन-सहन उनकी आदतें, अभिवृत्तियॉ, आकांक्षाएँ आदि बालक के शैक्षिक विकास को प्रभावित करते हैं। यदि ये सभी कारक सकारात्मक हो तो बालक के व्यवहार को भी सकारात्मक बनाया जा सकता है जिससे बालक का शैक्षिक विकास प्रभावित होता है।

बालक का अधिकांश समय अपने परिवारिक वातावरण में ही बीतता है। परिवार ही बालक की प्रथम पाठशाला है। बालक परिवार में ही अपनी शिक्षा का आधार तैयार करता है। वह विद्यालय में सीमित अवधि के लिए ही जुड़ा रहता है। अतः बालक पारिवारिक वातावरण में रहते हुए शैक्षिक उपलब्धियों को प्राप्त करते हुए अन्य क्षेत्रों में विकास करता है।

डॉ. वेणी प्रसाद के अनुसार :-

''परिवार व्यक्ति से भी प्राचीन है। व्यक्ति का जन्म परिवार में होता है उसका पालन पोषण भी परिवार में होता है। यही उसे सामाजिकता का पाठ भी पढ़ाया जाता है। परिवार, समाज का सबसे महत्वपूर्ण इकाई है। यह मानव जाति की सबसे आदिम संस्था है।''

वील्स तथा स्टोर के अनुसार :-

जिन परिवारों में स्नेह, सहयोग तथा प्रजातंत्र की भावना पायी जाती है। उस परिवार के बालक की शैक्षिक उपलब्धि भी उच्च स्तर की होती है तथा बालक बड़ी सरलता से वातावरण में समायोजन स्थापित कर लेते है। इसके विपरीत स्थिति में बालक बाह्य वातावरण से समायोजन स्थापित करने में असमर्थता प्रकट करते हैं एवं कठिनाई का अनुभव करते हैं।

मनुष्य की व्यक्तिगत विशेषताएँ, पारिवारिक अनुभवों के द्वारा ही प्राप्त होती है। पारिवारिक वातावरण के अनुभवों पर ही किसी भी व्यक्ति में विशिष्ट गुणों का विकास निर्भर करता है। बालक के जीवन के प्रारंभिक पारिवारिक अनुभवों का प्रभाव उसके सम्पूर्ण जीवन के विभिन्न पक्षों पर विशेष रूप से पड़ता है। इस संबंध में रेनवार महोदय का कहना है कि–

''बालक के पर्यावरण के अंतर्गत महत्वपूर्ण व्यक्ति विशेष के प्रारंभ में माता-पिता बाद में परिवार के अन्य सदस्यों तथा बालक के मध्य होने वाले परस्पर व्यवहार से व्यक्तित्व बनता है।''

माता-पिता की अभिवृत्तियों का बालक की उपलब्धि पर प्रभाव

सायमण्डस (1936) ने माता-पिता द्वारा स्वीकृत तथा अस्वीकृत बालकों का अध्ययन के पश्चात् पाया कि स्वीकृत बालकों का व्यवहार, अस्वीकृत बालकों की अपेक्षा अधिक सामाजिक, मैत्रीपूर्ण, विश्वासपात्र, लोकप्रिय तथा प्रसन्नचित तथा सर्वोतम शैक्षिक उपलब्धि ज्यादा होता है। ऐसे बालक प्रत्येक कार्य को रूचिपूर्ण करने वाले, वास्तविकता से संबंध रखने वाले तथा आत्मविश्वास से परिपूर्ण होते हैं जिससे उनके व्यक्तित्व का पूर्णतः विकास होता है।

इसके विपरीत अस्वीकृत बालकों में असुरक्षा तथा आत्महीनता की भावना पायी जाती है। ऐसे बालक सदैव उपेक्षित होने के कारण माता-पिता का ध्यान अपनी ओर आकर्शित करने के लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न करते हैं जैसे बात-बात में क्रोधित होना, बात नहीं मानना, उद्दण्डता दिखाना, सबके सामने ही माता-पिता को भला बुरा कहना, कभी-कभी एकदम से चुप रहना इत्यादि।

इस प्रकार स्पष्ट है कि माता-पिता की अभिवृत्तियों का प्रभाव बालक के बौद्धिक स्तर, व्यक्तित्व का विकास, शैक्षिक उपलब्धि तथा उनकी योग्यताओं पर पड़ता है। बालक यदि परीक्षा के उपरान्त उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण होता है तो उसका प्रभाव भी माता-पिता पर पड़ता है।

यदि उच्च शिक्षा प्राप्त माता-पिता हैं तो उनकी आकांक्षाएँ अपने बालकों के प्रति अत्याधिक उच्च होती है लेकिन अशिक्षित माता-पिता के द्वारा बालकों से ज्यादा अपेक्षा नहीं रहती है। इसी प्रकार यदि पारिवारिक वातावरण अच्छा होगा तो विद्यालय में भी बालक की शैक्षिक उपलब्धि और अभिव्यक्ति अच्छे प्रकार से होगी।

भारतीय सांस्कृतिक गतिशीलता के कारण परिवार में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। अब एकल परिवार की अधिकता पायी जाती है। व्यावसायिक गतिशीलता अधिक होने के कारण परिवार की संरचना बदल रही है। माता-पिता, बालकों की शिक्षा की ओर अत्यधिक ध्यान देते हैं परंतु उनके मन में सदैव यह संदेह बना रहता है कि क्या पढ़ने के बाद उनके बालकों को कोई अच्छा कार्य मिल पायेगा।

वर्तमान युग में प्रतिस्पर्धा की अधिकता पाई जाती है। माता-पिता बाल्यकाल से ही बालक के कैरियर के प्रति अत्यधिक चिंतित रहते है जिसका प्रभाव बालकों के शैक्षिक विकास पर पड़ता है।

पारिवारिक वातावरण से बालक के शैक्षिक उपलब्धि पर निम्न प्रभाव पड़ते है -

1) कुछ बच्चों को माता-पिता अत्यधिक लाड-प्यार से पालते है जिससे बच्चे अपनी हर जरूरत के लिए माता-पिता पर आश्रित होते है और अपना शैक्षिक विकास सही ढ़ंग से नहीं कर पाते है।

2) अत्यधिक आजादी मिलने पर भी बच्चे अपने रास्ते से भटक जाते है और वे शिक्षा के प्रति लापरवाह हो जाते है।

3) माता-पिता द्वारा बच्चों से जरूरत से ज्यादा अपेक्षाएँ रखी जाती है जिससे बच्चे मानसिक दबाव का अनुभव करते है और उनका शैक्षिक विकास बाधित होता है।

4) परिवार में कलहपूर्ण वातावरण से भी बच्चे का शैक्षिक विकास प्रभावित होता है।

5) बहुत अधिक पाबंदियॉ, रोक-टोक करने पर भी मानसिक तथा शैक्षिक विकास प्रभावित होता है।

6) बालकों की उत्तम शैक्षिक उपलब्धि के लिए आवश्यक है कि उन्हे संतुलित पारिवारिक वातावरण प्राप्त हो। माता-पिता, बच्चों की कुशलताओं एवं क्षमताओं को समझे और उन्हे सर्वांगीण विकास हेतु पूर्ण अवसर प्रदान करें। उन पर किसी प्रकार का मानसिक दबाव न डालें और ना ही अत्यधिक अपेक्षा रखें।

अतः निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि पारिवारिक वातावरण, परिवार के व्यक्तियों का बच्चों के प्रति व्यवहार तथा बच्चों के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार उसके शैक्षिक विकास को प्रभावित करता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रोफेसर एस.पी. एवं गुप्ता डॉ. अल्का - उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद
2. सिंह, डॉ. अरुण कुमार - शिक्षा मनोविज्ञान, मोती लाल बनारसीदास वाराणसी
3. लाल, आर एवं जैन - शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारंभिक सांख्यिकी लॉयल बुक डिपो, मेरठ
4. वार्षिक रिपोर्ट, डी.पी.ई.पी. 2012-2013- राजस्थान प्राथमिक शिक्षा परिषद जयपुर
5. ऑबेरॉय डॉ. एस.सी. - शिक्षा मनोविज्ञान, आर्य बुक डिपो, करोलबाग नई दिल्ली
6. बत्रा दीनानाथ - शिक्षा का भारतीयकरण
7. Sharma, R. (1998), Universal Elementry Education: The Question of How Economic and Political Weekly. Vol.33(26).
8. Shukla S. (1994), Attainment of Primary School Children in India, NCERT, New Delhi.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

सिंधु घाटी सभ्यता में धार्मिक आस्थाएँ और सांस्कृतिक जीवन का तुलनात्मक अध्ययन

अनुराग कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग
बी. एन. सी. कॉलेज, धमदाहा, पूर्णियाँ, बिहार
(पूर्णियाँ विश्वविद्यालय, पूर्णियाँ)

Abstract (सारांश)

भारतीय इतिहास की प्राचीनतम सभ्यताओं में सिंधु घाटी सभ्यता (2500 ईसा पूर्व – 1750 ईसा पूर्व) का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। यह विश्व की उन चुनिंदा सभ्यताओं में सम्मिलित है जिन्होंने मानव जीवन को संगठित, अनुशासित और सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध बनाया। इस सभ्यता का अध्ययन विशेष रूप से इसकी धार्मिक आस्थाओं और सांस्कृतिक जीवन के तुलनात्मक विश्लेषण के कारण महत्वपूर्ण है, क्योंकि ये दोनों पक्ष न केवल सामाजिक संगठन की नींव थे, बल्कि भारतीय संस्कृति की निरंतरता को भी प्रकट करते हैं।

धार्मिक आस्थाओं के संदर्भ में पुरातात्त्विक अवशेष – मुहरें, मूर्तियाँ, अग्निकुण्ड, स्नानगृह और समाधियाँ – यह दर्शाते हैं कि उस समय मातृदेवी की पूजा, पशुपति महादेव का प्रारंभिक रूप, वृक्ष व पशु उपासना, नागपूजा और अग्नि–जल पूजा प्रचलित थी। समाधियों से प्राप्त वस्तुएँ यह संकेत देती हैं कि लोग मृत्योत्तर जीवन में विश्वास रखते थे। इस प्रकार धर्म केवल पूजा-पद्धति तक सीमित नहीं था, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का आधार था।

सांस्कृतिक जीवन भी उतना ही समृद्ध था। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की नगर-योजना, पकी हुई ईंटों से बने भवन, जल निकासी प्रणाली और विशाल स्नानगृह उनकी उन्नत स्थापत्य कला का प्रमाण हैं। कांस्य की "नृत्य करती हुई कन्या" मूर्ति, मिट्टी के खिलौने, आभूषण और मुहरें उनकी कलात्मक संवेदनशीलता को प्रकट करती हैं। मातृदेवी की पूजा और नारी संबंधी अवशेष यह दर्शाते हैं कि स्त्रियों को सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से सम्मान प्राप्त था।

धर्म और संस्कृति के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि दोनों का संबंध अविभाज्य था। धार्मिक विश्वासों ने संस्कृति को आध्यात्मिक दिशा दी और संस्कृति ने धर्म को सामाजिक जीवन में प्रतिष्ठित किया। स्नानगृह धार्मिक शुद्धि का प्रतीक होने के साथ-साथ सांस्कृतिक स्वच्छता का द्योतक भी था। इसी प्रकार वृक्ष और पशु पूजा धार्मिक आस्था तो थी ही, साथ ही प्रकृति-सम्मान की सांस्कृतिक परंपरा को भी दर्शाती थी।

प्रमुख शब्द : सिंधु घाटी सभ्यता, धार्मिक आस्थाएँ, सांस्कृतिक जीवन, हड़प्पा सभ्यता, मोहनजोदड़ो, पुरातात्विक प्रमाण,कला एवं शिल्प, सामाजिक जीवन, धर्म एवं संस्कृति, तुलनात्मक अध्ययन।

प्रस्तावना

1. भूमिका

मानव सभ्यता के विकास का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि मानव अस्तित्व स्वयं। सभ्यता का अर्थ केवल नगरों, भवनों या भौतिक प्रगति से नहीं लगाया जा सकता, बल्कि इसमें मनुष्य का आध्यात्मिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक उत्कर्ष भी सम्मिलित होता है। जब हम प्राचीन सभ्यताओं की बात करते हैं, तो मिस्र, मेसोपोटामिया, चीन और भारत की सिंधु घाटी सभ्यता को सबसे प्राचीन और गौरवशाली स्थान प्राप्त है।

भारत के इतिहास में सिंधु घाटी सभ्यता (Indus Valley Civilization) या हड़प्पा सभ्यता (Harappan Civilization) का विशेष महत्व है। यह सभ्यता भारतीय उपमहाद्वीप की सांस्कृतिक जड़ों को समझने का पहला आधार है। इस सभ्यता का काल सामान्यतः 2500 ईसा पूर्व से 1750 ईसा पूर्व माना जाता है। इसका विस्तार आज के पाकिस्तान, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात और पश्चिमी उत्तर प्रदेश तक था।

1921 ई. में हड़प्पा और 1922 ई. में मोहनजोदड़ो की खोज ने न केवल भारतीय इतिहास की धारा को बदल दिया, बल्कि यह भी सिद्ध कर दिया कि भारतीय संस्कृति का इतिहास अत्यंत प्राचीन और गौरवशाली रहा है।

सिंधु घाटी सभ्यता का अध्ययन केवल राजनीतिक या आर्थिक दृष्टि से नहीं, बल्कि धार्मिक आस्थाओं और सांस्कृतिक जीवन की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस सभ्यता के पुरातात्विक अवशेष – मुहरें, मूर्तियाँ, अग्निकुण्ड, विशाल स्नानगृह, आभूषण, खिलौने और नगर-योजना – हमें उस युग के लोगों के धार्मिक विश्वासों और सांस्कृतिक जीवन की गहरी झलक प्रदान करते हैं।

2. शोध विषय का महत्व

इस शोध का विषय है – "सिंधु घाटी सभ्यता में धार्मिक आस्थाएँ और सांस्कृतिक जीवन का तुलनात्मक अध्ययन।"

यह विषय कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है –

1. यह हमें यह समझने में मदद करता है कि उस समय के लोग धर्म को किस रूप में देखते थे।
2. संस्कृति और धर्म का आपसी संबंध किस प्रकार था और कैसे दोनों ने एक-दूसरे को प्रभावित किया।
3. धार्मिक विश्वासों का सामाजिक जीवन, कला, शिल्प और स्थापत्य पर क्या प्रभाव पड़ा।
4. भारतीय संस्कृति की निरंतरता (continuity) को समझने का अवसर मिलता है, क्योंकि बाद की वैदिक सभ्यता और आधुनिक भारतीय संस्कृति पर भी इसके चिन्ह स्पष्ट दिखाई देते हैं।

इस प्रकार यह अध्ययन न केवल इतिहासकारों के लिए बल्कि समाजशास्त्रियों, सांस्कृतिक चिंतकों और धर्मशास्त्रियों के लिए भी प्रासंगिक है।

3. धार्मिक आस्थाओं का स्वरूप

सिंधु घाटी सभ्यता में धर्म की झलक हमें मुख्यतः पुरातात्विक अवशेषों से मिलती है। यहाँ कोई लिखित धार्मिक ग्रंथ उपलब्ध नहीं हुए हैं, इसलिए मुहरों, मूर्तियों और भवनों के आधार पर ही निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

3.1 मातृदेवी की उपासना

मातृदेवी की अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियाँ प्रजनन, उर्वरता और मातृत्व की शक्ति का प्रतीक मानी जाती हैं। इससे पता चलता है कि उस युग में नारी शक्ति को सृजन और जीवनदायिनी शक्ति के रूप में पूजा जाता था।

3.2 पशुपति महादेव

एक प्रमुख मुहर पर त्रिभंग मुद्रा में बैठे देवता की आकृति मिली है, जिसके चारों ओर बाघ, हाथी, गैंडा और अन्य पशु अंकित हैं। विद्वानों ने इसे पशुपति महादेव (शिव का प्रारंभिक रूप) माना है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस युग में शिव-परंपरा की जड़ें गहरी थीं।

3.3 वृक्ष पूजा

पीपल का वृक्ष पवित्र माना जाता था। एक मुहर पर पीपल के नीचे पूजा करते हुए व्यक्ति की आकृति अंकित है। यह दर्शाता है कि प्रकृति और वृक्षों को धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।

3.4 नागपूजा

कुछ मुहरों और मूर्तियों से सर्प की पूजा के प्रमाण मिलते हैं। नाग आज भी भारतीय संस्कृति में पवित्र माने जाते हैं।

3.5 अग्नि एवं जल पूजा

हवनकुण्ड और स्नानगृह से यह प्रतीत होता है कि अग्नि और जल दोनों को पवित्रता और धार्मिक अनुष्ठानों में विशेष स्थान प्राप्त था। विशाल स्नानगृह संभवतः धार्मिक स्नान या यज्ञ के पूर्व शुद्धिकरण के लिए प्रयुक्त होता होगा।

3.6 मृत्युपरांत जीवन

कब्रों से प्राप्त अवशेषों से यह संकेत मिलता है कि लोग मृत्यु के बाद जीवन (life after death) में विश्वास रखते थे। कब्रों में रखी गई मिट्टी की वस्तुएँ और आभूषण इस बात का प्रमाण हैं।

4. सांस्कृतिक जीवन का स्वरूप

धार्मिक आस्थाओं के समान ही सांस्कृतिक जीवन की झलक भी पुरातात्विक अवशेषों से मिलती है।

4.1 नगर-योजना

हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की नगर-योजना अत्यंत सुव्यवस्थित थी। चौड़ी सड़कें, जल निकासी की पक्की नालियाँ, ईंटों से बने मकान और स्नानगृह इस बात के प्रमाण हैं कि लोग स्वच्छता और अनुशासन को महत्व देते थे।

4.2 वास्तुकला

पकी हुई ईंटों का प्रयोग, बहुमंजिली इमारतें और किलेबंदी जैसी विशेषताएँ उनकी उन्नत स्थापत्य कला को दर्शाती हैं।

4.3 कला एवं शिल्प

कांस्य की "नृत्य करती हुई कन्या" मूर्ति, आभूषण, मिट्टी के खिलौने और मुहरें उनकी उच्च कोटि की कला और शिल्प का परिचायक हैं। यह दर्शाता है कि उस युग के लोग सौंदर्य-बोध और कलात्मकता से परिपूर्ण थे।

4.4 सामाजिक जीवन

समाज में विभिन्न वर्ग थे – कृषक, व्यापारी, शिल्पकार, राजनैतिक अधिकारी आदि। लोग सामुदायिक जीवन जीते थे और परस्पर सहयोग की भावना प्रबल थी।

4.5 नारी की स्थिति

मातृदेवी की पूजा और आभूषणों की प्रचुरता से स्पष्ट होता है कि स्त्रियों को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था।

4.6 संगीत और नृत्य

नृत्य करती हुई मूर्ति तथा वाद्ययंत्रों के अवशेष संगीत और नृत्य की परंपरा को दर्शाते हैं।

5. तुलनात्मक अध्ययन : धर्म और संस्कृति

अब यदि हम धार्मिक आस्थाओं और सांस्कृतिक जीवन का तुलनात्मक अध्ययन करें, तो स्पष्ट होता है कि –

1. धर्म और संस्कृति परस्पर अभिन्न थे। धार्मिक आस्थाएँ संस्कृति को दिशा देती थीं और संस्कृति धार्मिक विश्वासों को जीवंत बनाती थी।

2. मातृदेवी की पूजा ने नारी को सांस्कृतिक जीवन में विशेष स्थान दिया।

3. पशुपति महादेव की उपासना ने पशु और प्रकृति के प्रति श्रद्धा का भाव उत्पन्न किया, जो सांस्कृतिक परंपरा का अंग बन गया।

4. स्नानगृह और अग्निकुण्ड धार्मिक पवित्रता और सांस्कृतिक स्वच्छता – दोनों के प्रतीक थे।

5. कला और शिल्प में धार्मिक प्रतीकों का व्यापक प्रयोग हुआ, जिससे यह सिद्ध होता है कि संस्कृति और धर्म का समन्वय अत्यंत गहरा था।

6. आधुनिक परिप्रेक्ष्य में महत्व

आज भी भारतीय संस्कृति में जिन धार्मिक परंपराओं और सांस्कृतिक मूल्यों को महत्व दिया जाता है – जैसे मातृशक्ति

की पूजा, शिव की उपासना, वृक्ष और नाग पूजा, स्वच्छता और शुद्धिकरण के अनुष्ठान – उनकी जड़ें सिंधु घाटी सभ्यता में निहित हैं।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि भारतीय संस्कृति निरंतरता की धारा में बहती रही है, जिसमें प्राचीन और आधुनिक का सहज संगम है।

उद्देश्य

1. सिंधु घाटी सभ्यता की धार्मिक आस्थाओं का अध्ययन करना – मातृदेवी, पशुपति महादेव, वृक्ष व पशु पूजा, नागपूजा तथा अग्नि–जल उपासना जैसी परंपराओं को स्पष्ट करना।

2. सांस्कृतिक जीवन की प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण करना – नगर-योजना, कला, शिल्प, सामाजिक ढाँचा, नारी की स्थिति तथा संगीत–नृत्य परंपरा को समझना।

3. धर्म और संस्कृति के परस्पर संबंधों का तुलनात्मक अध्ययन करना – यह जानना कि धार्मिक विश्वासों ने सांस्कृतिक जीवन को कैसे प्रभावित किया और संस्कृति ने धर्म को सामाजिक व्यवहार में किस प्रकार प्रतिष्ठित किया।

4. भारतीय संस्कृति में निरंतरता का मूल्यांकन करना – यह स्पष्ट करना कि सिंधु घाटी सभ्यता की धार्मिक व सांस्कृतिक परंपराएँ आधुनिक भारतीय जीवन में किस रूप में विद्यमान हैं।

शोध पद्धति

प्राथमिक स्रोत (Primary Sources)

पुरातात्विक अवशेष (मूर्तियाँ, मुहरें, बर्तन, लिपियाँ, भवन अवशेष)।

खुदाई रिपोर्ट्स (Marshall, Wheeler आदि की Excavation Reports)

द्वितीयक स्रोत (Secondary Sources)

शोध ग्रंथ, इतिहास की पुस्तकें, पत्रिकाएँ और शोध-पत्र।

ऑनलाइन डेटाबेस, संग्रहालय कैटलॉग और इतिहास परिषद द्वारा प्रकाशित सामग्री।

परिणाम एवं चर्चा

1. धार्मिक आस्थाओं से संबंधित परिणाम

खुदाई से प्राप्त मातृदेवी की मूर्तियाँ दर्शाती हैं कि उर्वरता और जनन-क्षमता की पूजा मुख्य आस्था थी।

पशुपति महादेव जैसी मुहरें इस बात का संकेत देती हैं कि शिव-उपासना की परंपरा प्राचीन काल से विद्यमान थी।

वृक्ष, पशु-पक्षी और नाग की पूजा से स्पष्ट है कि प्रकृति और पर्यावरण को धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता था।

स्नानागार और जल-व्यवस्था का धार्मिक महत्व दर्शाता है कि शुद्धि और पवित्रता धार्मिक जीवन का अभिन्न अंग था।

2. सांस्कृतिक जीवन से संबंधित परिणाम

नगर-योजना और जल-निकासी प्रणाली से यह निष्कर्ष निकलता है कि समाज अत्यंत संगठित और वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाला था।

शिल्प, कला और आभूषणों की प्रचुरता से उनकी सांस्कृतिक उन्नति और सौंदर्यबोध का प्रमाण मिलता है।

समाज में स्त्रियों की प्रतिष्ठा उच्च थी, जिसका प्रमाण मातृदेवी पूजा और आभूषण निर्माण से मिलता है।

संगीत, नृत्य और खिलौनों से बच्चों के प्रति संवेदनशीलता का पता चलता है, जिससे जीवन की सांस्कृतिक समृद्धि प्रकट होती है।

3. तुलनात्मक चर्चा (Comparative Discussion)

धार्मिक आस्थाएँ और सांस्कृतिक जीवन एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए थे।
धार्मिक मान्यताओं ने सामाजिक व्यवहार, कला और वास्तुकला पर गहरा प्रभाव डाला।
सिंधु सभ्यता की कई परंपराएँ, जैसे शिव और शक्ति पूजा, आज भी भारतीय संस्कृति में विद्यमान हैं।
यह सभ्यता केवल धार्मिक दृष्टि से नहीं, बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से भी भारतीय संस्कृति की नींव थी।

निष्कर्ष एवं सुझाव

निष्कर्ष

सिंधु घाटी सभ्यता केवल प्राचीन नगर-योजना और व्यापारिक व्यवस्था की प्रतीक नहीं थी, बल्कि यह भारतीय धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन की प्रथम ठोस झलक प्रस्तुत करती है। धार्मिक आस्थाओं में मातृदेवी, पशुपति महादेव, वृक्ष एवं नाग-पूजा जैसी मान्यताएँ प्रमुख थीं, जो बाद की भारतीय परंपराओं में भी जीवित रहीं। सांस्कृतिक जीवन में नगर-योजना, कला, शिल्प, आभूषण, नृत्य और संगीत ने एक समृद्ध एवं विकसित समाज का चित्र प्रस्तुत किया। धर्म और संस्कृति परस्पर पूरक रहे; धार्मिक विश्वासों ने सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को दिशा दी और संस्कृति ने धर्म को व्यवहार में प्रतिष्ठित किया। सिंधु सभ्यता की कई परंपराएँ आज भी भारतीय संस्कृति में दिखाई देती हैं, जिससे यह स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति की जड़ें बहुत गहरी और प्राचीन हैं।

सुझाव

1. लिपि अध्ययन को बढ़ावा दिया जाए – सिंधु लिपि का पूर्ण पठन अब भी संभव नहीं हुआ है। इसके लिए आधुनिक तकनीक (AI, Machine Learning, Linguistic Models) का उपयोग किया जाना चाहिए।

2. पुरातात्विक अनुसंधान को और विस्तारित किया जाए – अभी भी कई स्थलों की खुदाई शेष है। सरकार और शैक्षणिक संस्थानों को इस दिशा में निवेश करना चाहिए।

3. तुलनात्मक अध्ययन जारी रहे – सिंधु घाटी और अन्य प्राचीन सभ्यताओं (मेसोपोटामिया, मिस्र) का तुलनात्मक अध्ययन वैश्विक सांस्कृतिक धारा को समझने में सहायक होगा।

4. सांस्कृतिक धरोहर संरक्षण – खुदाई से प्राप्त अवशेषों और कलाकृतियों को सुरक्षित रखने हेतु संग्रहालयों और डिजिटल आर्काइव का विस्तार किया जाए।

5. शैक्षिक पाठ्यक्रम में समावेश – विद्यालय और विश्वविद्यालय स्तर पर सिंधु सभ्यता की धार्मिक और सांस्कृतिक धरोहर को व्यापक रूप से पढ़ाया जाए।

संदर्भ सूची

1. मार्शल, जॉन (1931), मोहनजोदड़ो और सिंधु सभ्यता, (अनुवादित संस्करण), भारत सरकार प्रकाशन।
2. मॅके, ई. जे. एच. (1937), मोहनजोदड़ो में आगे की खुदाई, भारत सरकार।
3. व्हीलर, मॉर्टिमर (1947), हड़प्पा 1946 : प्राचीर एवं कब्रिस्तान आर-37, पुरातत्व विभाग, भारत सरकार।
4. बशम, ए. एल. (1954), भारत की अद्‌भुत संस्कृति, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
5. कोसांबी, दामोदर धर्मानंद (1956), भारतीय इतिहास का अध्ययन, मुंबई : पॉपुलर प्रकाशन।
6. लाल, बी. बी. (1970), हड़प्पा और वैदिक संस्कृति, नई दिल्ली : भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण।
7. सिंह, उपेन्द्र (1978), प्राचीन भारत का इतिहास और संस्कृति, दिल्ली : पिपुल्स पब्लिशिंग हाउस।

8. त्रिपाठी, रामशरण शर्मा (1980), भारतीय सभ्यता का इतिहास, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।
9. पाठक, वी. एस. (1985), भारतीय संस्कृति का इतिहास, वाराणसी : चौखंबा।
10. मिश्रा, के. पी. (1989), सिंधु घाटी सभ्यता और भारतीय संस्कृति, लखनऊ : भारतीय विद्या संस्थान।
11. त्रिपाठी, रामशरण शर्मा (1992), प्राचीन भारत : सामाजिक एवं आर्थिक संरचना, दिल्ली : मुनशीराम मनोहरलाल।
12. गुप्ता, एस. पी. (1996), हड़प्पा सभ्यता : कला और संस्कृति, नई दिल्ली : आर्यन बुक्स इंटरनेशनल।
13. सिंह, उपेन्द्र (2000), प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत, नई दिल्ली : पियरसन।
14. थापर, रोमिला (2002), प्राचीन भारत (अनुवादित संस्करण), नई दिल्ली : पेंगुइन/राजकमल।
15. रत्नागिर, शकुंतला (2002), हड़प्पा सभ्यता का अंत. नई दिल्ली : मानव संसाधन प्रकाशन।
16. मेहता, हरिहर (2005), सिंधु घाटी : धर्म और संस्कृति. पटना : प्रकाशन भारती।
17. वर्मा, राजेश (2008), भारतीय संस्कृति की जड़ें : हड़प्पा और वैदिक परंपरा, वाराणसी : चौखंबा सुरभारती।
18. राइट, रिचर्ड (2010), प्राचीन सिंधु : नगरीय जीवन और समाज (हिंदी अनुवाद), कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
19. कुमार, प्रमोद (2015), सिंधु सभ्यता की धार्मिक मान्यताएँ और सांस्कृतिक धरोहर. जयपुर : सनराइज पब्लिकेशन।
20. श्रीराम, रवि (2022), सिंधु घाटी की धार्मिक परंपराएँ, दिल्ली : एन्साइक्लोपीडिया प्रकाशन।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट की नज्मों में सामाजिक एवं दार्शनिक दृष्टिकोण

डॉ. प्रवीण कुमारी
हिन्दी विभाग खुशाल दास विश्वविद्यालय हनुमान गढ़ राजस्थान

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य की विधाओं में नज्म ने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। नज्म केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति भर नहीं होती, बल्कि वह सामाजिक यथार्थ, मानवीय पीड़ा, जीवन संघर्ष, समय की सच्चाई और बदलते परिवेश का संवेदनशील चित्रण भी प्रस्तुत करती है। आधुनिक हिंदी नज्मों में कई ऐसे रचनाकार हुए हैं जिन्होंने समाज और समय को आईना दिखाने का कार्य किया। इसी परंपरा में डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे अपनी नज्मों में गाँव और शहर की जीवन-स्थितियों, रिश्तों के बदलते स्वरूप, वक्त और इंसान के रिश्ते, इंसानियत बनाम फायदे का द्वंद्व तथा जीवन की कठोर सच्चाइयों को गहरी संवेदना और तीखे व्यंग्य के साथ सामने रखते हैं।

नज्मों का वैचारिक स्वर

डॉ. नरेश सिहाग की नज्में मूलतः 'सामाजिक और दार्शनिक दृष्टिकोण' से लिखी गई रचनाएँ हैं। इनमें जीवन की अस्थायीता, वक्त की निर्णायक शक्ति, गाँव-शहर का अंतर, मानवीय रिश्तों का क्षरण, और इंसानियत बनाम पैसे का संघर्ष बार-बार उभरता है। उदाहरण के लिए—

- "बादशाह सिर्फ़ वक्त होता है,
- इंसान तो यूँ ही गुरूर करता है..."

इन पंक्तियों में वक्त को सर्वोपरि सत्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ सत्ता, दौलत और शोहरत को क्षणभंगुर बताकर मनुष्य के अहंकार पर गहरी चोट की गई है।

संघर्ष और हिम्मत का स्वर

एक दूसरी नज्म में कवि लिखते हैं—

- "हिम्मत की लौ जलाए रख,
- अंधेरों में भी उजाले दिख जाएँगे..."

यहाँ नज्म एक 'प्रेरणात्मक स्वर' ग्रहण कर लेती है। डॉ. सिहाग निराशा और अंधकार में भी उम्मीद की किरण जलाए रखने की बात करते हैं। उनके लिए इंसान का साहस और धैर्य ही वास्तविक पूँजी है, जो हर कठिनाई को आसान बना सकता है।

गाँव की स्मृतियाँ और लोक का सौंदर्य

डॉ. सिहाग की नज्मों में 'गाँव का चित्रण' अत्यंत भावपूर्ण है।

- "मैं अकेला नहीं, जिसने गाँव छोड़ा है,
- हर आँख में एक चौपाल बसी है...."

इन पंक्तियों में गाँव केवल भौगोलिक स्थान नहीं, बल्कि रूह का आईना बन जाता है। कवि शहर की भागदौड़ में रहकर भी गाँव की गंध, खेतों की पगडंडियों, नीम की छाँव और माँ की रोटियों की याद से जुड़ा रहता है। यह उनकी संवेदनाओं की जड़ों से जुड़े होने का प्रमाण है।

शहर का यथार्थ और रिश्तों का क्षरण

शहरों पर लिखी उनकी नज्में रिश्तों और अपनत्व की कमी को मार्मिक ढंग से सामने लाती हैं।

- "शहरों में लोग घरों में कम,
- किरायों पर ज्यादा रहते हैं..."

यहाँ शहर की कृत्रिमता और अस्थिरता पर व्यंग्य किया गया है। मकान अब 'घर' नहीं रहे, वे महज़ किरायेदारों के लिए अस्थायी ठिकाने बन गए हैं। रिश्तों की गर्माहट और अपनापन यहाँ खो गया है।

व्यंग्य और सामाजिक कटाक्ष

डॉ. सिहाग की नज्मों में 'व्यंग्य का तीखा स्वर' भी मौजूद है। खासकर "फ़ायदा" विषयक नज्मों में वे समाज की गिरी हुई मानसिकता पर चोट करते हैं।

- "फ़ायदा बड़ी गिरी हुई चीज़ है,
- हर मोड़ पर, हर राह पर
- लोग झाड़ू की तरह
- उसे समेटते रहते हैं।"

यहाँ "फ़ायदा" को झाड़ू से तुलना करके कवि ने अद्भुत व्यंग्य रचा है। रिश्ते, धर्म, जाति और सत्ता—सब जगह फ़ायदे के नाम पर इंसान का चरित्र गिरता दिखाई देता है।

प्रकृति और प्रतीकात्मकता

नीम पर लिखी उनकी नज्म प्रकृति के माध्यम से मानवीय संवेदना को छूती है—

- "आख़िर कितना बुरा लगता होगा उस नीम को,
- जिसकी छाँव में बैठकर लोग उसे कड़वा कहते हैं।"

यहाँ नीम एक प्रतीक है—त्याग और सेवा का। लेकिन समाज उसका मूल्य 'कड़वाहट' में खोजता है। यह पंक्तियाँ मानव स्वभाव के कटु सत्य को उजागर करती हैं कि हम अपने सबसे हितकारी तत्वों को भी पहचान नहीं पाते।

समय और जीवन-दर्शन

उनकी नज्मों में समय की अपरिहार्यता बार-बार दिखाई देती है।

- "ज़िन्दगी ढेरों तक़ाज़ों का भ्रम रखती है,
- हर पल हमें हिसाब में उलझाती है।"

यहाँ जीवन को नदी के बहाव की तरह प्रस्तुत किया गया है—जिसे रोका नहीं जा सकता। यह गहन दार्शनिक दृष्टि

उनकी रचनाओं को विशिष्ट बनाती है।

भाषा और शैली

डॉ. सिहाग की नज्मों की भाषा सरल, प्रवाहमयी और संवादात्मक है। इसमें न तो जटिल बिंबों का प्रयोग है और न ही कठिन शब्दावली का बोझ। वे 'लोकभाषा, प्रतीकों और सहज रूपकों' का इस्तेमाल करते हैं। "नीम", "चूल्हे की आँच", "पगडंडी", "सिक्कों की खनक" आदि बिंब उनकी शैली को जीवन्त बनाते हैं।

सामाजिक सच्चाई और जन-चेतना

उनकी नज्में केवल व्यक्तिगत भावनाओं तक सीमित नहीं, बल्कि समाज की सामूहिक चेतना को जगाने का काम करती हैं। भ्रष्टाचार, रिश्तों की बिकाऊ मानसिकता, पैसों का घमंड, गाँव-शहर का द्वंद्व—ये सब उनकी नज्मों में समकालीन समाज की सच्चाई के रूप में उपस्थित हैं।

निष्कर्ष

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट की नज्में हिंदी साहित्य की समकालीन काव्यधारा में अपनी सशक्त पहचान रखती हैं। इनमें गाँव का अपनापन, शहर की कृत्रिमता, समय की निर्णायक सत्ता, रिश्तों का क्षरण, इंसानियत की कसौटी और व्यंग्यात्मक कटाक्ष—सब कुछ मिलता है। वे अपने सहज, प्रवाहपूर्ण और सच्चाई को उजागर करने वाले लेखन से पाठकों के हृदय को छूते हैं।

उनकी नज्मों में 'विचार की गहराई, संवेदना की ऊष्मा और व्यंग्य की धार'—तीनों का अद्‌भुत संतुलन दिखाई देता है। यही कारण है कि उनकी नज्में सिर्फ पढ़ी नहीं जातीं, बल्कि सोचने पर विवश करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. नरेश सिहाग बोहल फेसबुक
2. बोहल शोध मंजूषा फेसबुक
3. संगम मासिक पटियाला प्रधान संपादक डॉ. नरेश सिहाग
4. शांति धर्मी मासिक जींद संपादक सहदेव समर्पित
5. डॉक्टर नरेश सिहाग की चयनित कविताएं संपादक डॉ. प्रवीण कुमारी
6. बोहल की कविताएं लेखक डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

विभिन्न वर्गो की बालिकाओं की जिज्ञासा का अध्ययन

अर्चना शर्मा
पी-एच.डी. (छात्रा)
आईएएसई मानित विश्वविद्यालय

डॉ. अल्पना शर्मा
शोध निर्देशिका

शोध आलेख सार

बालिकाएँ स्वभाव से अति संवेदनशील व भावुक होती है। ऐसे में यदि उन्हें घरेलू वातावरण भी संकुचित मिलता है तो उनमें असुरक्षा की भावना घर कर जाती है जो उन्हें मानसिक रूप से अपरिपक्व तथा सांवेगिक रूप से अस्थिर बना देती है। वे समय पर स्वयं निर्णय नहीं ले पाती है या निर्णय लेने में असमंजस की स्थिति रहती है।

कैरियर को लेकर भी वे पूर्णतया अपने पिता या भाई पर निर्भर रहती है। अपनी रूचियों तथा अभिवृत्तियों को जानते हुए भी व्यक्त नहीं कर पाती है। इसके विपरीत जिन परिवारों में बालिकाओं को समान रूप से पढ़ने-लिखने के अवसर दिये जाते हैं वे पिता या भाई से अथवा अपने अन्य परिवारजनों से अपनी रुचि तथा अभिवृत्ति के अनुसार व्यवसाय चुनने में अपनी इच्छा जाहिर कर पाती है। वे स्वयं निर्णय लेने से नहीं हिचकिचाती है अपितु वे दूसरों को भी मार्गदर्शन देती है।

यही अन्तर बालिका विद्यालयों में पढ़ने वाली बालिकाओं तथा सह-शैक्षिक विद्यालयों में पढ़ने वाली बालिकाओं में देखने को मिलता है। जिस प्रकार पारिवारिक वातावरण बालक-बालिकाओं को प्रभावित करता है उसी प्रकार विद्यालयी वातावरण का प्रभाव भी बालक-बालिकाओं पर पड़ता है।

मूल शब्द - वर्ग, बालिका एवं जिज्ञासा।

प्रस्तावना

बालिकाओं की शिक्षा के चिन्तक और चिन्तनीय उपागम भारत के सन्दर्भ में अनेक है। प्रश्न ये उठ खड़ा होता है कि बालिका शिक्षा के सन्दर्भो में जो निर्णय लिए जाते है उन निर्णयों में बालिकाओं की कितनी भूमिका हैं? विकास की दृष्टि से बालिकाओं को शिक्षा के मार्ग पर सभी देखना चाहते है लेकिन इस दिशा में उनकी स्वतंत्रता, निर्णय व सोच को पूर्ण सामाजिक मान्यता नहीं मिल पायी हैं। इस पृष्ठ भूमि में शोधकर्त्री के मानस पटल पर ये शोध प्रश्न प्रस्फुटित होते है कि समाज के विभिन्न वर्गो की बालिकाओं की शिक्षा में दशा क्या है–

इन सभी अनसुलझे प्रश्नों की तलाश में शोधकर्त्री ने उक्त शीर्षक ''विभिन्न वर्गो की बालिकाओं की जिज्ञासा का अध्ययन'' अनेक सन्दर्भो के पुनर्रावलोकन के बाद में रेखांकित किया गया। इन सन्दर्भो के पुनरावलोकन की पृष्ठभूमि में उक्त शोध प्रश्न, प्रश्नों पर आधारित एवं निर्धारित शोध शीर्षक बालिका शिक्षा की ज्ञान की रिक्तता को पूर्ण करता है।

अध्ययन का महत्व

जिज्ञासा मानव जाति का विशिष्ट गुण है। आदि मानव से लेकर वर्तमान में सुसंस्कारित सभ्य मानव तथा तकनीकी

व प्रौद्योगिकी उन्नति का मार्ग प्रशस्त करने वाली मानव मन की मूल प्रवृत्ति जिज्ञासा ही है जिसने मनुष्य को आज अन्तरिक्ष में पहुँचा दिया है। जिज्ञासा ज्ञान प्राप्त करने का विशिष्ट गुण माना गया है। गीता में भी ज्ञान का पात्र वही माना गया है जिसमें जिज्ञासा है।

जिज्ञासा जो कि मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है और सभी मनुष्यों का विशेश गुण है। जिज्ञासा जन्मजात ही पायी जाती है। यही सभी तरह के विकास चाहे वह शारीरिक हो, मानसिक संज्ञानात्मक, सामाजिक या नैतिक विकास सबका मूल है। जिज्ञासा का स्वर जिस बालक में ज्यादा होगा वह ज्यादा अधिगम करेगा। फलतः उसमें परिपक्वता भी जल्दी व ज्यादा होगी। उसकी बुद्धिमता का विकास भी अधिक होगा। अन्य व्यक्तित्व के कारक भी इससे प्रभावित होगें। जन्मजात व स्वाभाविक गुण होने के कारण जिज्ञासा सभी में पायी जाती है। देश काल परिस्थिति तथा कुछ आनुवांशिकतानुसार प्रभावित होती है। जिज्ञासा के विकास में सर्वप्रथम माता-पिता फिर परिवार, समाज व विद्यालय महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। इसलिए ऐसे वातावरण के निर्माण की महत्ती आवश्यकता है जो बालक की जिज्ञासा को बढाने में सहायक हो।

अध्ययन का औचित्य

बालिका शिक्षा के क्षेत्र में अब तक हुए शोध कार्यो एवं संदर्भो का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि कुमार राजीव (2022) एवं शर्मा, विपिन (2024) ने बालक-बालिकाओं की जिज्ञासा का अध्ययन किया। लेकिन शोधकर्त्री ने पाया कि विभिन्न वर्गों की बालिकाओं की जिज्ञासा को लेकर अभी तक कोई अध्ययन नहीं किया है, अतः शोधकर्त्री ने इस विषय को लिया है।

समस्या कथन :

''विभिन्न वर्गो की बालिकाओं की जिज्ञासा का अध्ययन''

अध्ययन के उद्देश्य

1. अनुसूचित जाति व सामान्य वर्ग की बालिकाओं की जिज्ञासा मापनी का अध्ययन करना।
2. अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति की बालिकाओं की जिज्ञासा मापनी का अध्ययन करना।
3. अनुसूचित जनजाति व सामान्य वर्ग की बालिकाओं की जिज्ञासा मापनी का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ

1. अनुसूचित जाति व सामान्य वर्ग की बालिकाओ की जिज्ञासा मापनी में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
2. अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति की बालिकाओ की जिज्ञासा मापनी में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
3. अनुसूचित जनजाति व सामान्य वर्ग की बालिकाओ की जिज्ञासा मापनी में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

परिसीमन

प्रस्तुत शोधकार्य राजस्थान राज्य के झुंझुनूं जिले की 600 विभिन्न वर्ग की बालिकाओं तक सीमित है।

न्यादर्श एवं चयन विधि

शोधकर्त्री द्वारा विद्यार्थियों के चयन हेतु सभी माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में से अनुसूचित जाति व अनूसूचित जनजाति की बालिकाओं को उद्देश्यात्मक विधि के माध्यम से न्यादर्श के रूप में चुना गया तथा सामान्य वर्ग की बालिकाओं के लिए यादृच्छिक विधि का प्रयोग किया गया।

शोधविधि

प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है क्योंकि अनुसंधान की यह एक वैज्ञानिक विधि है। इस विधि द्वारा प्राप्त निष्कर्ष वैध एवं विश्वसनीय होते हैं।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

जिज्ञासा मापनी :-

शोधकर्त्री द्वारा स्वनिर्मित जिज्ञासा मापनी का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकी

प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकी मध्यमान प्रमाणिक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात मान एवं सहसम्बन्ध की गणना की जायेगी।

समंकों का सारणीयन एवं विश्लेषण

प्रस्तुत शोधकार्य में अनुसंधानकर्त्री ने संकलित एवं व्यवस्थित आंकड़ों का विश्लेषण जिस प्रकार किया है, उसका परिकल्पनानुसार विवरण निम्न प्रकार है -

सारणी संख्या - 1

अनुसूचित जाति व सामान्य वर्ग की बालिकाओं की जिज्ञासा मापनी के फलांको के सम्बन्ध में मध्यमान अन्तर की सार्थकता

न्यादर्श (बालिका)	संख्या (N)	माध्य (Mean)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक अनुपात मान (C.R..Value)	सार्थकता स्तर .05	.01
अनुसूचित जाति	150	87.31	11.85	2.95		सार्थक
सामान्य वर्ग	150	90.15	10.80			अन्तर हैं।

$(df=kN_1+N_2-2=k150+150-2=k298)$

विश्लेषण :

उपर्युक्त सारणी में गणना द्वारा प्राप्त मान तालिका मान से अधिक है। इस आधार पर परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है। अर्थात् अनुसूचित जाति व सामान्य वर्ग की बालिकाओ की जिज्ञासा में सार्थक अंतर है।

सारणी संख्या - 2

अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति की बालिकाओ की जिज्ञासा मापनी के फलांको के सम्बन्ध में मध्यमान अन्तर की सार्थकता

न्यादर्श (बालिका)	संख्या (N)	माध्य (Mean)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक अनुपात मान (C.R..Value)	सार्थकता स्तर .05	.01
अनुसूचित जाति	150	85.57	14.41	3.71		सार्थक
सामान्य वर्ग	150	91.03	11.01			अन्तर हैं।

$(df=kN_1+N_2-2=k150+150-2=k298)$

विश्लेषण

उपर्युक्त सारणी में गणना द्वारा प्राप्त मान तालिका मान से अधिक है। इस आधार पर परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है। अर्थात् अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति की बालिकाओं की जिज्ञासा में सार्थक अंतर है।

सारणी संख्या - 3

अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति की बालिकाओं की जिज्ञासा मापनी के फलांको के सम्बन्ध में मध्यमान अन्तर की सार्थकता

न्यादर्श (बालिका)	संख्या (N)	माध्य (Mean)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक अनुपात मान (C.R..Value)	सार्थकता स्तर .05	.01
अनुसूचित जाति	150	90.37	12.30	0.37		सार्थक
सामान्य वर्ग	150	90.08	11.01			अन्तर हैं।

$(df=kN_1+N_2-2=k150+150-2=k298)$

विश्लेषण : उपर्युक्त सारणी में गणना द्वारा प्राप्त मान तालिका मान से कम है। इस आधार पर परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है। अर्थात् अनुसूचित जनजाति एवं सामान्य वर्ग की बालिकाओं की जिज्ञासा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

प्रस्तुत अध्ययन की शैक्षिक उपयोगिता : अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति की बालिकाओं के अभिभावक शिक्षा के क्षेत्र में बालिकाओं की भूमिका सुनिश्चित कर सकेंगे साथ ही राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के क्षेत्र में इन बालिकाओं के उत्थान हेतु अन्य कार्यक्रमों का निर्माण हो सकेगा। सामाजिक कार्यकर्ता जन साधारण में सामाजिक चेतना का निर्माण कर शैक्षिक क्षेत्र में पिछड़ी बालिकाओं को आगे लाने में सहयोग प्रदान कर सकेंगे।

उक्त शोध राष्ट्रीय शिक्षा नीति को नई दिशा प्रदान करने में मार्ग प्रशस्त करेगा। शोध कार्य विद्यालय सन्तुष्टि संबंधी निष्कर्ष प्रदान कर विद्यालय के शैक्षिक वातावरण में सुधार का मार्ग प्रशस्त कर समाज को आवश्यकता आधारित विद्यालय प्रदान करने में सहयोग प्रदान करेगा। विद्यालय में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता से अवगत करवा कर अभिभावक को व विद्यालय प्रशासन को सचेत करेगा इससे विद्यालय तथा समाज गंभीर समस्या पर विचार करने के लिए प्रवृत हो सकेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अग्रवाल सुभाष चन्द : ''अनुसूचित जाति, पिछडी जाति एवं सामान्य जाति के छात्रों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन'' भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका वर्ष 21 अंक 1 जनवरी-जून 2002. पृ. सं. 71

अग्रवाल यश : ''अनुसूचित जातियों में साक्षरता की प्रवृतियॉ'' परिप्रेक्ष्य वर्ष 1 अंक 2

अरविन्द आर गेसू और संजय शर्मा : ''शिक्षा, सामाजिक गतिशीलता एवं दलित अन्तसम्बन्ध की पड़ताल'' परिपेक्ष्य वर्ष 15 अंक 1 अप्रैल 2008 नीपा नई दिल्ली

ऐकरा जैकब : ''शैक्षिक अवसरों की समानता भारत में अनुसूचित जातियों का दृष्टांत'' परिप्रेक्ष्य अंक 2

कमल और के. एल. : ''बाबा तुमने मेरा स्कूल क्यों छुड़वा दिया /'' शिविरा पत्रिका अगस्त 1990 बीकानेर

कुमार कृष्ण एवं गुप्ता लतिका : ''बालिका सशक्तीकरण में कमी क्या है / शिक्षा, विमर्श, जयपुर वर्ष 10 अंक 3 जून 2008

कुमार डॉ. सतीश : ''शैक्षिक विकास में बाधक स्कूल फोबिया'' शिविरा पत्रिका मई-जून 1998 बीकानेर.

कुमार कृष्ण : ''शिक्षा का उद्देश्य और आज की व्यवस्था'' भारतीय आधुनिक शिक्षा, वर्ष 23 अंक 4 अप्रैल 2005

कोठारी डी. एस. खन्ना इन्द्रजीत व वर्मा डॉ. पन्नालाल : ''एजुकेशन एण्ड नेशनल डेवलपमेंट'' शिक्षा आयोग 1964-66 का प्रतिवेदन, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली

''राजस्थान में शिक्षा अनुसंधान सम्प्राप्तियां एवं संभावनाएं'' ए/3, शिक्षा विभाग राजस्थान पृ. सं 72

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

बलराम दास कृत ओड़िआ 'लक्ष्मी पुराण' में स्त्री एवं दलित अस्मिता

विशाल साहु
शोधार्थी

प्रो. अंजुमन आरा
शोध निर्देशिका :
हिंदी विभाग
रेवेंशॉ विश्वविद्यालय
कटक-753003, ओड़िशा, भारत
साभार : MRIP 2023 (मुख्यमंत्री शोध एवं नवाचार योजना, ओड़िशा सरकार)

ओड़िआ साहित्य इतिहास के काल विभाजन में पूर्वमध्य युग का धार्मिक साहित्यिक रचनाओं की दृष्टिकोण से विशेष अवदान रहा है। यह युग मुख्यतः पाँच कवियों के नाम से विशेष रूप से परिचय पाता है। पाँच कवियों के नामानुसार परिचित होने के कारण इस युग को 'पंचसखा' युग कहा जाता है। कुल पाँच कवियों को पंचसखा की आख्या दी गई है, जिनके नाम इस प्रकार हैं– 'बलराम दास', 'जगन्नाथ दास', 'यशोबंत दास', 'शिशु अनंत दास' एवं 'अच्युतानंद दास'। इन कवियों ने 'चैतन्य दास' के साथ मिलकर अपना सख्य स्थापित किया। अतः यह पाँच कवि ओड़िआ साहित्य तथा समाज में 'पंचसखा' के नाम से जाने गए। इन पाँच कवियों के आराध्य देवता 'पुरी' के 'श्री जगन्नाथ महाप्रभु' थे। इन पाँच कवियों की काव्यगत विशेषताएँ परस्पर से भिन्न हैं। इनकी वैशिष्ट्यता निम्नलिखित काव्य पंक्तियों में देखी जा सकती है–

"आगम्य भाब जाणे यशोबंत
गारकटा यंत्र जाणे अनंत
आगत नागत अच्युत भणे
बलराम दास तत्त्व बखाणे
भक्तिर भाब जाणे जगन्नाथ
पंचसखा ए ओड़िशा महंत।"[1]

(अर्थात यशोबंत दास आनेवाली घटनाओं की बात करते हैं। अनंत दास व्यंग्यात्मक बात करने में पारंगत हैं। अच्युत दास भूत एवं भविष्य की कथा कहते हैं। बलराम दास सम्पूर्ण तत्त्व पर आलोचना करते हैं। जगन्नाथ दास भक्ति भाव में लीन हैं। यह पंचसखा ओड़िशा के महंत कहलाते हैं।)

उपर्युक्त पंचसखाओं में 'बलराम दास' अग्रज अर्थात बड़े हैं। इनके जन्म समय एवं जन्म स्थान को लेकर आलोचकों में मतभेद है। परन्तु बहुमत के अनुसार यह माना गया है कि उनका जन्म 1482 ई. को 'चंद्रपुर' नामक गाँव में हुआ। इनके पिता-माता का नाम क्रमशः 'सोमनाथ महापात्र' और 'महामाया देवी' है। इनके पिता पुरी राजा के राज दरवार परिषद् में सदस्य थे। बलराम दास पुरी के 'गन्धर्व मठ' में रहते थे एवं उन्होंने कई रचनाएँ कीं, जिनमें 'गीता अबकाश', 'भाब समुद्र', 'दांडी रामायण', 'गुप्त गीता', 'बेदांत सार', 'मृगुणी स्तुति', 'सप्तांग योगसार टीका', 'बेदांत सार ओ ब्रह्म टीका', 'बउला गाईर गीत'

एवं 'लक्ष्मी पुराण' आदि प्रमुख हैं। उनकी ज्यादातर रचनाओं में जगन्नाथ प्रेम एवं जगन्नाथ संस्कृति की झलक अनायास दिखाई पड़ती है। वे हिंसा भाव के कट्टर विरोधी थे। 'दांडी रामायण' के अयोध्याकाण्ड में उन्होंने हिंसा को सबसे बड़े पाप के रूप में चित्रित किया है। काव्य में उपमान प्रयोग करने में उनकी अलग रुचि थी तथा अपनी कविताओं में उपमान प्रयोग करने में वे सिद्धहस्त थे। उनकी इसी विशेषता पर डॉ. कृष्णचरण साहु लिखते हैं, "बलराम उपमान प्रयोगरे अत्यंत पारंगम थिले। एथिपाइँ पुराण शैलीरे रचित ग्रन्थ उपयुक्त क्षेत्र न हेले बि बलारामंक कबि मन एहि शृंखलाकु भांगि देइथिला।"[2] (अर्थात बलराम उपमान प्रयोग करने में अति पारंगम थे। इस लिए पुराण शैली में रचित ग्रन्थ उपयुक्त क्षेत्र न होते हुए भी बलराम का कवि मन इस श्रंखला को बार-बार तोड़ा था।) बलराम दास पुराणकार के रूप में ओड़िशा में प्रसिद्ध हैं, साथ ही ओड़िशा के प्रथम पदावली लेखक के रूप में भी उनकी प्रसिद्धि है। अपनी कविताओं में प्राकृतिक वर्णन को वे जीवंत रूप देने में कुशल हैं। उनकी वर्णन शैली एक-एक ऋतु को जीवंत बना देती है। 'परिगणनात्मक शैली' बलराम दास के लेखन कर्म की एक प्रधान विशेषता है। वे केवल एक वस्तु अथवा एक व्यक्ति की बात न बोलकर एक साथ सबको मिलाकर लिखते थे। अपनी कविता के मध्य तरह-तरह के नीति-वाक्य देने में वे कभी चूकते नहीं थे। यह नीति-वाक्य की संयोजना पुराण रचना की एक विशिष्ट शैली है। पुराणों के मध्य नीति-वाक्य के प्रयोग से वह प्रसंग सर्वथा गाम्भीर्यपूर्ण हो जाता है। बलराम दास 'पंचसखा युग' के एक मूर्धन्य कवि होने के साथ-साथ वे सोलहवीं शताब्दी के ओड़िशा के एक विशिष्ट दार्शनिक भी थे। अपने इस दार्शनिक चिंतन को उन्होंने अपनी किताब 'ब्रह्माण्ड भूगोल' में स्थान दिया। उनकी भक्ति भावना पर प्रकाश डालते हुए डॉ. कृष्णचरण साहु कहते हैं, "भगाबानंक सेबक भाबे रहिबा हिँ थिला कबिंक जीबनर श्रेष्ठ लक्ष्य। जगन्नाथ थिले तान्कर एकमात्र प्रभु। तांकरि सेबक भाबे तांकरि ठारे सम्पूर्ण आत्मसमर्पण करि से तांक जीबनकु सार्थक करिथिले।"[3] (भगवान के सेवक के तौर पर रहना ही कवि के जीवन का श्रेष्ठ लक्ष्य था। जगन्नाथ उनके एकमात्र प्रभु थे। उनके सेवक के रूप में उनके पास सम्पूर्ण आत्मसमर्पण कर उन्होंने अपना जीवन सार्थक किया।) उपर्युक्त उक्ति से महाप्रभु श्री जगन्नाथ के प्रति उनके दास्य भाव की भक्ति की स्पष्ट झलक मिलती है।

बलराम दास द्वारा रचित 'लक्ष्मी पुराण' उनकी अनन्य एवं महत्त्वपूर्ण कृति है। ओड़िआ साहित्य में यह महत्त्वपूर्ण होने के साथ-साथ ओड़िशा के प्रत्येक घर में यह कृति अपना एक स्वतंत्र परिचय रखती है। ओड़िशा में अगहन (मार्गशीर) महीना लक्ष्मी पूजा के लिए उत्तम माना गया है। इस महीने के प्रत्येक वृहस्पति दिवस को घर-घर में लक्ष्मी देवी का आवाहन किया जाता है। ओड़िशा एक कृषि प्रधान राज्य है। यहाँ मुख्य रूप से धान की खेती अधिक मात्रा में की जाती है। इसीलिए साल के पहले जो धान की फसल उगाई जाती है उसे देवी लक्ष्मी का प्रतीक मानते हुए ओड़िशा के लोग उसी धान की पूजा करते हैं। यह पूजा ओड़िशा में 'मार्गशीर गुरुबार' नाम से सुप्रसिद्ध है। इस पूजा में 'लक्ष्मी पुराण' का स्थान सर्वोपरि है। भारतीय पुराणों से यह बात सिद्ध है कि देवी लक्ष्मी सुख, समृद्धि एवं ऐश्वर्य की देवी हैं। उनकी कृपा लाभ करने के कारण ओड़िशा की सभी विवाहित सुहागन स्त्रियाँ इस पूजा के लिए तत्पर रहती हैं। इस पूजा के दौरान 'लक्ष्मी पुराण' पाठ करने का विधान है। सभी इस पुराण को मन में भक्ति एवं श्रद्धा का भाव लिए पढ़ते हैं। यह सर्वविदित है कि प्रत्येक साहित्यिक कृति समाज की किसी समस्या पर केन्द्रित होती है। साहित्यिक कृति के जरिए कोई न कोई सामाजिक पाखण्ड का स्वरूप दिखाया जाता है। वह कृति उस पाखण्ड का विखंडन करने का सन्देश देती है। अगर कोई साहित्यकार कुछ पाखण्ड को उस जाति के आदर्श एवं आराध्य के जरिए खंडन करवाता है तब उस साहित्यिक कृति के पाठक वर्णित पाखंडता पर आगे विश्वास नहीं करते। फलस्वरूप समाज में व्याप्त एक कुप्रथा का नाश हो जाता है। उसी तरह यह 'लक्ष्मी पुराण' मूलभूत रूप से 'स्त्री अधिकार' एवं 'दलित अधिकार' के मद्देनजर लिखा गया है। इस 'लक्ष्मी पुराण' पर सत्य प्रकाश अपने अंग्रेजी आलेख 'द ओरिया लक्ष्मी पुराण एज र्याडिकल पेड़ागोजी' (The Oriya LaÛmi Purana As Radical Pedagogy) में लिखते हैं, "Balaram Das's Laxmi Purana, however is a counter hegemonic text . Das attempts to articulate a subaltern consciousness of the oppressed and their common identity. His explicitly feminist narrative centres on the action of a strong goddess who challenges male Brahmanical authority and advocates both

feminism and caste equality."[4] यह कथन यह स्पष्ट कर देता है कि बलराम दास की यह कृति पुरुष वर्चस्व का विरोध तथा दलितों के अधिकार के प्रति उत्सर्गीकृत है। इस कृति में कहीं न कहीं अंधे ब्राह्मणवाद का विरोध किया गया है।

'लक्ष्मी पुराण' की संक्षिप्त विषयवस्तु

'लक्ष्मी पुराण' की कथा पारिवारिक होते हुए सामाजिक है। पारिवारिक कथा को आधार बना कर यहाँ सामाजिक रुढ़िवादिता का खंडन किया गया है। यहाँ कथा के मुख्य पात्र ओड़िआ जाति के आराध्य महाप्रभु जगन्नाथ एवं महालक्ष्मी हैं। महाप्रभु जगन्नाथ समग्र पुरुष जाति और माँ लक्ष्मी सम्पूर्ण स्त्री जाति का प्रतीक हैं। आराध्य की मानवीय लीला को कवि ने प्रदर्शित किया है। कथा का प्रारम्भ अगहन महीने के वृहस्पति दिवस से हुआ है। अगहन महीने के प्रत्येक वृहस्पति दिवस माँ लक्ष्मी को अत्यंत प्रिय है। लोगों में यह विश्वास है कि इसी दिन माता प्रत्येक घर में विराजमान होती हैं। कथा के प्रारम्भ में लक्ष्मी अपने पति श्री जगन्नाथ की अनुमति ले कर नगर भ्रमण पर निकलती हैं। परन्तु किसी घर में उन्हें शुचिता नहीं दिखी। फिर वह चंडालों की बस्ती में पहुँचती हैं। यह चंडाल (ऐसी जाति जो इंसान की गंदगी साफ़ करते हैं) बस्ती निम्न जाति होने के कारण नगर के बाहर स्थापित है। उस बस्ती की एक स्त्री 'श्रीया' नीच कुल की होने के बावजूद सामाजिक नियमों के विरुद्ध जा कर लक्ष्मी व्रत रखा था। उसकी निष्ठा देखकर लक्ष्मी प्रसन्न हो कर उन्हें धनवती, पुत्रवती एवं लाख गायों की अधिकारिणी होने का आशीर्वाद देती हैं। इन घटनाओं को जगन्नाथ के बड़े भाई अर्थात लक्ष्मी के जेठ अपने योग बल से देख लेते हैं। फिर वे जगन्नाथ से आग्रह करते हैं कि वह अपनी पत्नी का त्याग कर उसे मंदिर से निकाल दें। इसका कारण यह था लक्ष्मी एक अछूत के घर चली गयीं और इस कारण लक्ष्मी ने अपनी जाति खो दी। अपना मन न होते हुए भी जगन्नाथ अपने बड़े भाई की वाणी को नकार नहीं पाए एवं लक्ष्मी को बाहर ही बाहर विदा कर देने के उद्देश्य से सिंहद्वार पर आ पहुँचे। लक्ष्मी के आने पर महाप्रभु ने उन्हें मंदिर के भीतर जाने से रोका और सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। यह सुनकर लक्ष्मी क्रोधित हो जाती हैं एवं श्री जगन्नाथ को उनके जाति-गोत्र के बारे में पूछती हैं। फिर जगन्नाथ क्रोधित हो कर लक्ष्मी के पिता को बीच में ले आते हैं, जो यह लक्ष्मी के लिए असह्य हो जाता है। लक्ष्मी, जगन्नाथ एवं बलभद्र को भूखा और श्रीहीन होने का अभिशाप दे कर सारा अलंकार लौटा कर वहां से निकल जाती हैं। परन्तु वहाँ से वह अपने मायके न जा कर विश्वकर्मा को अपने लिए एक मंदिर बनाने की आज्ञा देती हैं। विश्वकर्मा के महल निर्माण करने के बाद माँ लक्ष्मी अष्ट वेतालों को बुला कर सम्पूर्ण श्री मंदिर का धन-रत्न अपने पास पहुँचाने बोलती हैं। लक्ष्मी के साथ-साथ मंदिर के सभी दास-दासियाँ भी निकल आते हैं। इस तरह लक्ष्मी अर्थात श्री के निकल जाने के बाद श्री मंदिर श्रीहीन हो जाता है। वास्तव में महालक्ष्मी का अभिशाप सच हो गया। श्री जगन्नाथ एवं बलभद्र इधर उधर खाने की तलाश में घूमने लगे। श्रीहीन (लक्ष्मीछड़ा अर्थात लक्ष्मी द्वारा परित्यक्त) होने के कारण किसी ने अपने घर के चौखट पर भी जगह नहीं दी। अंत में दोनों क्षुधार्त भाइयों को लक्ष्मी के मंदिर का ठिकाना मिला, जहाँ लक्ष्मी मौजूद थीं। दोनों वहाँ जा कर अन्न के लिए आग्रह करते हैं। लक्ष्मी की दासी से उन दोनों भाइयों को यह पता चला कि वे दोनों चंडाल के घर के द्वार पर खड़े हैं तब बलभद्र दासी से आग्रह करते हैं कि वह सिर्फ रंधन के सामान का जुगाड़ कर दें। वह दोनों खुद खाना पका कर खाने का निर्णय लेते हैं। परन्तु लक्ष्मी की आज्ञा के कारण पाकशाला में आग बिल्कुल जली ही नहीं। चिढ़ कर बलभद्र ने पकने के लिए चूल्हे पर रखे मटके को तोड़ देते हैं और उस घर को नीच जाति का जानने के बावजूद वे लक्ष्मी के यहाँ खाना खाने को तैयार हो जाते हैं। फिर दोनों भाई भोजन ग्रहण करते हैं। जगन्नाथ को पता चलता है वह लक्ष्मी का मंदिर है। बलभद्र अपनी गलती को स्वीकारते हुए जगन्नाथ को लक्ष्मी को ले कर श्री मंदिर चलने की आज्ञा देते हैं। फिर माँ लक्ष्मी, श्री जगन्नाथ के समक्ष अपनी शर्तों पर मंजूरी लेने के पश्चात श्री मंदिर जाने के लिए तैयार हो जाती हैं। यही है 'लक्ष्मी पुराण' की सम्यक् कथावस्तु।

'लक्ष्मी पुराण' में स्त्री अस्मिता

हिंदी कथा साहित्य के सम्राट प्रेमचंद अपना एक निबंध 'साहित्य का उद्देश्य' में कहते हैं, "पुराने जमाने में समाज की

लगाम मज़हब के हाथ में थी। मनुष्य की अध्यात्मिक और नैतिक सभ्यता का आधार धार्मिक आदेश था और वह भय या प्रलोभन से काम लेता था; पुण्य-पाप के मसले उसके साधन थे। अब, साहित्य ने यह काम अपने जिम्मे ले लिया है और उसका साधन सौंदर्य-प्रेम है।"[5] अतः यह स्पष्ट है कि मनुष्य स्वभाव में बदलाव लाने के लिए मज़हब अर्थात धर्म एवं साहित्य की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण है। बलराम दास की रचना 'लक्ष्मी पुराण' में धर्म एवं साहित्य का अद्‌भुत संयोग देखा जा सकता है। ओड़िआ समाज के अग्र आराध्य के पारिवारिक बातों को विषय बना कर उन्होंने इसकी रचना की। यहाँ समाज में स्त्री अधिकार को प्रोत्साहन एवं पुरुष वर्चस्व की करारी हार को प्रदर्शित किया गया है, जो सर्वथा नैतिक है। पारिवारिक संसार में स्त्री एवं पुरुष उभय एक दूसरे के पूरक हैं। परन्तु पितृसत्तात्मक सोच रखने वाला समाज सदैव अपने वर्चस्व के नीचे स्त्री को दबाना चाहता है। बलभद्र जब लक्ष्मी के चंडाल के घर पर गमन वाली बात जानते हैं तब वह जगन्नाथ के समक्ष लक्ष्मी की निंदा करते हैं एवं लक्ष्मी को घर से निकालने के लिए जिद्द करते हैं। जगन्नाथ बहुत तरीकों से अपने ज्येष्ठ भ्राता को समझाना चाहते हैं परन्तु बलभद्र कुछ भी सुनने को तैयार न थे।इस तरह उनकी बातों को न समझते हुए वे क्रोधान्वित हो कर कहते हैं;

"भारिया बोलिण पादर से पांडोइ
भाइथिले भारिया कोटिए बिभा होइ।
कोटि कोटि राजकन्या करिबि प्रदान
बिभा कराइबि एहा सत्य मो बचन।"[6]

(पत्नी पैरों की दासी है। भाई के होने पर कोटि-कोटि पत्नी मिल सकती हैं। मैं तुम्हारे लिए कोटि-कोटि राजकन्या ढूँढ दूंगा। यह मेरा सत्य वचन है।) बलराम की इसी उक्ति से समाज में पुरुष के मन में स्त्री के लिए मौजूद नीच तथा हीन भावना को देखी जा सकती है। इस प्रकार जब लक्ष्मी को जगन्नाथ बार-बार विदा करना चाहते हैं, पर लक्ष्मी नहीं मानती हैं। तब जगन्नाथ सीधा उनके पिता की कुप्रकृति एवं लक्ष्मी के सूरत पर कटाक्ष करने से पीछे नहीं हटते हैं। ऐसी बातें एक स्त्री के लिए कदापि सहने योग्य नहीं है। एक पति को कभी बिना गलती के अपनी पत्नी पर ऊँगली नहीं उठाना चाहिए। यहाँ पुरुष अपने बलशाली अथवा श्रेष्ठता का नहीं अपितु अपनी मुर्खता का परिचय देता है। 'लक्ष्मी पुराण' की यह खासियत है कि यहाँ लक्ष्मी (स्त्री) पुरुष वर्चस्व के नीचे दबती नहीं हैं उल्टा उसकी भर्त्सना कर उसके खिलाफ जंग का ऐलान कर देती हैं। यहाँ संसार में स्त्री अपनी महत्ता प्रतिष्ठित करने के लिए जिद्द पकड़ लेती है। अपने पिता और अपनी निंदा सुनने के पश्चात लक्ष्मी बिना सहमे हुए अपने पति को उनके दोष गिनवाकर उन पर पलटवार करती हैं। पत्नी को त्याग करते समय पति के द्वारा दिए गए निर्वाह निधि को लक्ष्मी अस्वीकार करती हैं। सारा अलंकार एवं महंगी साड़ी को अपने पति को लौटा देती हैं। यहाँ स्त्री खुद अपने आत्मसम्मान की रक्षा करती है। वह जीवन निर्वाहन हेतु पुरुष के सहारे को नकारती है। उसे अपनी शक्ति के ऊपर पूर्ण विश्वास है। ज्यादात्तर स्त्रियाँ पुरुष के समक्ष इस कारण झुक जाती हैं क्योंकि उन्हें अपनी शक्ति की पहचान नहीं होती। परन्तु स्त्री अपनी जीविका निर्वाह करने में खुद सक्षम है। लक्ष्मी अपने निर्णय के जरिए इस बात की पुष्टि करती हैं। अपने आत्मसम्मान को हानी न पहुँचाते हुए लक्ष्मी जगन्नाथ से कहती हैं;

"पश्चांते बोलिब लक्ष्मी आम्भ घरे थिला
लक्षे टंकार अलंकार आम्भर से नेला।
येते अपक्षाति मोर नोहुं ना गोसाईं
तुम्भ अलंकार तुम्भे निअ बाहुड़ाई।"[7]

(बाद में बोलोगे लक्ष्मी हमारे यहाँ थी, लाख रुपयों का अलंकार ले गई। यह सब अपयश मुझे नहीं चाहिए। आप अपना सारे अलंकार ले जाइए।) यहाँ साफ़-साफ़ स्त्री के अपने आत्मसम्मान के प्रति सजगता देखी जा सकती है। गृहस्थ को चलाने का भार स्त्री के ऊपर होता है। इसीलिए घर छोड़ कर जाते वक्त लक्ष्मी दोनों भाइयों को अभिशाप देती हैं कि जब तक वे दोनों लक्ष्मी के हाथों से अन्न ग्रहण नहीं करेंगे, तब तक वे भूखे रहेंगे। इस बात को जगन्नाथ और बलभद्र हल्के में ले लेते

हैं। यह बात प्रमाणित करती है कि पुरुष कभी स्त्री के वचन को गंभीरतापूर्वक ग्रहण नहीं करता। परन्तु यह भी सच है कि स्त्री की अनुपस्थिति में पुरुष अकेले गृहस्थी चलाने में असमर्थ है। यह बात अगले दिन प्रमाणित हो जाती है जब श्री मंदिर श्रीहीन हो जाता है। वहाँ अन्न तो दूर की बात है, पानी तक नहीं मिलता। यहाँ उल्लेखनीय है कि लक्ष्मी अपने स्वाभिमान एवं आत्मसम्मान को सर्वोपरि रखते हुए मंदिर से निकलने के बाद अपने पिता के घर नहीं जातीं अपितु अपने लिए एक अलग मंदिर बनवाती हैं। दो भाई अन्न के संधान में घूम-घूम कर थक जाते हैं। कहीं उन्हें अन्न का एक दाना तक नसीब नहीं होता। अन्त में घूमते हुए दोनों भाई लक्ष्मी के यहाँ पहुँचते हैं। जब दोनों को ज्ञात होता है वह घर एक चांडाल का है तब बलभद्र खुद पका कर खाने की बात करते हैं। तब लक्ष्मी सोचती हैं ;

"रांधिण भुन्जिबे येबे दुइगोटि भाइ
स्तिरीकि पुरुष आउ लोड़िबे किम्पाइँ।"[8]

(अगर दो भाई खुद पका कर खाएंगे तो साफ़ हो जाता है कि स्त्री को पुरुष और क्यों चाहेंगे?) यहाँ भी गृहस्थ में स्त्री धर्म की रक्षा हेतु लक्ष्मी सोचती हैं एवं अग्निदेव की सहायता से रंधन कार्य को पूर्ण होने नहीं देतीं। क्षुधातुर भाइयों को अंत में स्त्री के समक्ष झुकना पड़ता है एवं दोनों भाई उन्हीं के हाथों से अन्न ग्रहण स्वीकार करते हैं। तदुपरांत उन दोनों को अपनी गलती का अहसास होता है एवं जगन्नाथ लक्ष्मी से क्षमा याचना करते हैं। यहाँ स्त्री अस्मिता की रक्षा के कारण स्त्री को आवाज़ उठानी पड़ी। अंततः पुरुष वर्चस्व को हारना पडा। अपनी रक्षा हेतु स्त्री का पुरुष वर्चस्व के खिलाफ स्वर उठाना अति आवश्यक है।

'लक्ष्मी पुराण' में दलित अस्मिता

हिन्दू धर्म में सामाजिक वर्ण व्यवस्था के कई भेदोपभेद मिलते हैं। उनमें कुछ उच्च जाति के होते हैं तो कुछ निम्न जाति के। निम्न जाति में आने वाली जातियों को दलित कहा जाता है। भारतीय समाज में इन्हीं दलितों को सवर्णों द्वारा बहुत प्रताडनाओं का सामना करना पड़ता है। उन वर्गों के लिए कुछ अलग नियम एवं प्रथाओं का प्रचलन है, जो सही नहीं है। एक जमाने में दलितों की छायामात्र से सवर्ण लोग कतराते थे। परन्तु यह सर्वथा अनुचित है। परमब्रह्म परमेश्वर द्वारा बनाए गए सभी मनुष्य एक सामान हैं। सभी का अधिकार एक समान है। दलित हो जाने से उनके रगों में रक्त का रंग सफेद नहीं होता। इसीलिए एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के प्रति मनुष्यता का भाव प्रदर्शन करना चाहिए। परन्तु समाज में चली आ रही व्यवस्था के तहत दलितों का शोषण पीढ़ी दर पीढ़ी किया जा रहा है। इस रूढ़िवाद का खंडन समाज के लिए अत्यावश्यक है। इस परिप्रेक्ष में महापंडित राहुल सांकृत्यायन का कथन है, "रुढियों को लोग इसलिए मानते हैं, क्योंकि उनके सामने रुढियों को तोड़ने वालों के उदाहरण पर्याप्त मात्रा में नहीं है।"[9] इसीलिए एक साहित्यकार का यह कर्त्तव्य है समाज के समक्ष वह अपनी रचनाओं के माध्यम से अंधे रूढ़िवाद को तोड़ने का उदाहरण पेश करें। बलराम दास ने अपनी रचना 'लक्ष्मी पुराण' के माध्यम से सामाजिक जातिवाद में प्रचलित कुप्रथा का खंडन सम्पूर्ण ओड़िआ जाति के आराध्य जगन्नाथ महाप्रभु के जरिए किया है। इस उदाहरण को स्वीकार करना प्रत्येक ओड़िआ का मूल कर्त्तव्य है। जहाँ श्री जा सकती हैं वहाँ साधारण मनुष्य को जाने में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए। 'लक्ष्मी पुराण' के माध्यम से बलराम दास सवर्णों के मन में दलितों के प्रति आक्रोश भाव को दिखाते हुए लक्ष्मी (धन,ऐश्वर्य की देवी) के जरिए उसका खंडन करते हैं। जब लक्ष्मी, श्रीया नामक एक चंडालिनी के घर चली गईं तब उनके जेठ जिद्द पर अड़ जाते हैं कि लक्ष्मी को मंदिर से निकालना होगा। इसका कारण यह है कि उन्होंने एक दलित के घर में कदम रखा। जब जगन्नाथ अपने बड़े भाई के समक्ष लक्ष्मी के पक्ष में बोलते हैं, तब बलराम बोलते हैं;

"बलरामे बोइले येबे भारियारे कार्य
चंडाल साहिरे घर तोल देबराज।
चंडाल साहिरे तु ये घरकु तोलिबु

कुकुड़ा शुकर लोचाये पालिबु।
मोह बड़ देउलकु आउ न आसिबु
माइपकु घेनि नग्र बाहारे रहिबु।"[10]

(बलराम कहते हैं जब तुम पत्नी के पक्ष में हो तो चांडाल बस्ती में अपना घर बानवा कर रहो। मुर्गा, शुकर आदि का पालन करो। मेरे मंदिर में और मत आना। अपनी पत्नी के साथ बाहर रहना।) इस पंक्ति से समाज में निम्न जाति के लोगों के प्रति समाज की मनःस्थिति के बारे में स्पष्ट पता चलता है। उनके घर में प्रवेश मात्र से एक सवर्ण अपने ही घर में अछूत हो जाता है। यह तर्क सामजिक वितंडावाद के अलावा और कुछ नहीं है। समाज में सवर्णों एवं दलितों के काम में भी बँटवारा है। ऐशोआराम वाले काम सवर्णों के हैं तो समाज से गंदगी साफ़ करने का काम दलितों का है। परन्तु जो समाज से गन्दगी साफ़ करने जैसा महान काम करते हैं उनको दलित कहना निहायत मूर्खता का विषय है। आज के सभी मनुष्यों को यह सोचने की आवश्यकता है। जहाँ 'श्रीया' श्री मंदिर का द्वार साफ़ करती है वहाँ उसे मंदिर में देवों के दर्शन तथा घर में श्री का आवाहन करने का हक़ नहीं है। यह तर्क कदापि सटीक नहीं है। लक्ष्मी को घर से निकालने के पश्चात लक्ष्मीद्रोही होने के कारण जब दोनों भाइयों को समाज तिरस्कार करता है, तब घूम-घूम कर अंत में दोनों लक्ष्मी के नए मंदिर में जा कर भोजन माँगते हैं। सवर्ण होने का अहंकार यहाँ भी पीछा नहीं छोड़ता है। जब बलराम को पता चलता है जिस घर में वह अन्न माँग रहे हैं वह एक दलित का घर है तब वह अहंकार के साथ अपने हाथों पका कर खाने की बात करते हैं। उनका यह उपाय जब कारगर नहीं होता है तब वे अछूत के घर भोजन करने तैयार हो जाते हैं।

"बलरामे बोइले शुण जगन्नाथ भाइ
होइले चंडाल होउं अम्भे अन्न खाइं।"[11]

(बलराम, जगन्नाथ को कहते हैं भले ही हम अछूत हो जाएँगे लेकिन यहाँ अन्न अवश्य खाएँगे।) यहाँ पूर्णतः यह स्पष्ट हो जाता है कि जाति-पाँति कुछ नहीं है। मनुष्य सर्वदा मनुष्य है। अगर भूखा पेट जाति-गोत्र नहीं देखता जाति-पाँति का यह ढोंग सर्वथा तर्कहीन है। जगन्नाथ जब अपनी गलती का अहसास करते हुए लक्ष्मी से मंदिर लौटने की बात करते हैं, तब लक्ष्मी उनके समक्ष एक शर्त रखती हैं;

"चंडाल हस्तरु अन्न ब्राह्मणे खाइबे
कैबल्य खाइण हस्त शिररे पोछिबे।"[12]

(चंडालों के हाथ से ब्राह्मण अन्न खाएंगे। कैवल्य खा कर सभी अपना हस्त सर पर पोछेंगे।) यहाँ पर बलराम दास, महालक्ष्मी के माध्यम से समाज में व्याप्त कुप्रथा को तोड़ना चाहते हैं एवं सभी जातियों को एक सामान धरातल पर खड़ा करते हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि बलराम दास की कृति 'लक्ष्मी पुराण' स्त्री एवं दलित अस्मिता की रक्षा करने के साथ-साथ समाज में उनके अधिकारों को संरक्षित करने का भरसक प्रयास करती है। सामाजिक हाशिए के पार रहने वाली दो श्रेणियों को उनका अधिकार दिलाने में यह एक सर्वोत्तम कृति है। इस कृति में दो सामाजिक समस्याओं के विषद चित्रण के साथ-साथ उसके निवारण को भी स्थान दिया गया है। किसी मनुष्य को लिंग अथवा जाति के आधार पर बांटने से पहले उसे एक मनुष्य के तौर पर देखना चाहिए। स्त्री कभी अबला नहीं है, उसे अपनी शक्ति को पहचानने की आवश्यकता है। अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए उसे खुद कमर कसना होगा। मौत की शैय्या पर पड़े हुए मरीज़ के लिए जब खून की जरूरत होती है तब हम उसके स्त्री अथवा जाति का परिचय बिना जाने उससे खून ले लेते हैं। तब हमें किसीके स्त्री या अछूत होने से कोई दिक्कत नहीं होती। अर्थात यह लिंग गत सामाजिक रूढ़िवाद एवं सम्पूर्ण जातिवाद मनुष्य द्वारा परिकल्पित है। समाज के उत्थान हेतु इस कुप्रथा एवं रूढ़िवाद का नाश होना अति आवश्यक है। पंद्रहवीं शताब्दी में 'लक्ष्मी पुराण' जैसी पुस्तक समाज के उन वर्गों की बात कहती है, जिन्हें समाज में उस समय विरोध एवं प्रताड़ना को झेलना पड़ता था। इस दृष्टि से यह पुस्तक इसीलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें स्त्री एवं दलितों के लिए सकारात्मक बातें कही गयी हैं।

सन्दर्भ

1. रणा, श्री भगबान (सं), भक्त बलराम दासंक उक्ति ओ बालि रथ बर्णना भाब समुद्र (प्रथम भाग), धर्मग्रन्थ ष्टोर, अलिशा बजार, प्रथम संस्करण 1972, पृ. सं. 01
2. साहु, डॉ. कृष्णचरण, कबि बलराम दास, ओड़िशा साहित्य एकादेमी, संस्कृति भबन, भुबनेश्वर, द्वितीय संस्करण 2008, पृ. सं. 143
3. वही, पृ. सं. 168
4. आचार्य, सुदर्शन (सं), मल्ल, भाग्यलिपि (सं), दाश, गौरांग चरण (सं), बलराम दास लक्ष्मी पुराण, ओड़िशा साहित्य एकादेमी, भुबनेश्वर, प्रथम संस्करण 2018, पृ. सं. 61
5. प्रेमचंद, कुछ विचार, लोक भारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, लोकभारती संस्करण 2013, पृ. सं. 9-10
6. आचार्य, सुदर्शन (सं), मल्ल, भाग्यलिपि (सं), दाश, गौरांग चरण (सं), बलराम दास लक्ष्मी पुराण, ओड़िशा साहित्य एकादेमी, भुबनेश्वर, प्रथम संस्करण 2018, पृ. सं. 77
7. वही, पृ. सं. 83
8. वही, पृ. सं. 111
9. https://www.amarujala-com/kavya/aaj-ka-vichar/rahul-sankrityayan-quote-in-hindi-rudiyon-ko-loh-isiliye-mante-hain-kyonki-unke-saamne, देखने की तिथि : 23/08/2025, देखने का समय : 03:50 PM
10. आचार्य, सुदर्शन (सं), मल्ल, भाग्यलिपि (सं), दाश, गौरांग चरण (सं), बलराम दास लक्ष्मी पुराण, ओड़िशा साहित्य एकादेमी, भुवनेश्वर, प्रथम संस्करण 2018, पृ. सं. 76
11. वही, पृ. सं. 112
12. वही, पृ. सं. 126

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

सरगरा समाज के लोकगीतों में भक्ति भावना

डॉ. मरजीना
शोध पर्यवेक्षिका एवं विभागाध्यक्ष (कला संकाय)
मौलाना आजाद विश्वविद्यालय, जोधपुर
ई-मेल - marjeenamarjeena9@gmail.com

भारती पंवार
शोधार्थी
मौलाना आजाद विश्वविद्यालय, जोधपुर
ई-मेल - bhartipanwar81985@gmail.com

सारांश

सरगरा समाज की संस्कृति उसके लोकगीत विशिष्टता से पूर्ण है। यह समाज अपनी विशिष्टता के लिए लोक संस्कृति से समृद्ध है, सरगरा समाज के लोकगीतों में रातिजोगा गीत भी प्रमुख है जिसमें देवी-देवताओं की स्तुति की जाती है। मुख्य रूप से वामन अवतार, बाह्मणी माता, चामुण्डा माता, अधर माता, कुलदेवी, भेरूजी के गीत गाए जाते है। दीया, जाजम, मेंहदी आदि गीत माताजी की आराधना में गाए जाते है। अतः सरगरा समाज अपनी लोक संस्कृति से समृद्ध है जो भक्ति भाव से परिपूर्ण है और वास्तविक रूप से देखा जाए तो अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए है।

मुख्य शब्द - जाजम, दिवाला, कुकड़ा, दातन, माजीसा, सीक माता, चंक चूंदरी आदि।

किसी भी जाति, प्रदेश, क्षेत्र या समुदाय की संस्कृति की पहचान वहाँ की लोक संस्कृति से ही पता चलता है। लोक संस्कृति निरन्तर पीढ़ी दर पीढी अनुसरण करने वाली उन परम्पराओं व संस्कार से बनती है जो लोक कल्याण की भावना लेकर स्वीकार की जाती है।

लोक संस्कृति के क्षेत्र में राजस्थान पूरे विश्व में विशिष्ट पहचान बनाता है। राजस्थान का गौरवशाली इतिहास यहाँ की माटी के कण-कण में जोहर की ज्वाला और वीर सपूतों के बलिदान को हमेंशा याद कराता है। राजस्थान में लोक संस्कृति के विविध रूपों में निहित लोक मंगल भावना तथा हर त्यौंहार में आपसी सौहार्द की भावना जाग्रत करती है। जो यहाँ की संस्कृति की धाराओं में सेतु का काम करती है, राजस्थान का लोक जीवन आदर्श स्वरूप है। यहाँ हर कार्य में लोक कल्याणकारी भावना है, यहाँ हर रीति रिवाज, परम्पराओं में हर्ष व उल्लास को बढ़ाने वाले लोकगीत है पद्म श्री सीताराम लालस के अनुसार ''लोक गीतों में विभिन्न रसों की अभिव्यक्ति बड़े सुन्दर ढ़ग से हुई है तथा लोक देवी देवताओं संबंधी गीत शांत रस के अच्छे उदाहरण है।'' सरगरा समाज के लोकगीतों में रातिजोगा के गीत, विवाह, श्रम, भजन, हरिजस, कृर्षि संबंधी तथा व्रत व त्यौंहार संबंधी गीत गाए जाते है।

सरगरा समाज में समाज की महिलाओं द्वारा पूरी रात्रि बैठकर रातिजोगा में विभिन्न देवी देवताओं की स्तुति में भक्ति भाव से लोकगीत गाए जाते है, नवरात्रि के समय खासकर चौत्र व शारदीय नवरात्रि के समय माँ की आराधना में रातिजोगा गीत गाए जाते है इसके अलावा विवाह व जडूला के समय कुलदेवी या बढ़ेर के थान पर रातिजोगा गीत गाए जाते है। सरगरा समाज में अलग-अलग गौत्र के अनुसार कुलदेवियाँ है जिनकी आराधना सरगरा समाज द्वारा की जाती है तथा नवरात्रि के समय वहाँ भोग लगाने के लिए भी जाते है।

सरगरा समाज के रातिजोगा गीत में विभिन्न देवी-देवताओं की भक्ति भाव से स्तुति की जाती है, जो लौकिक, अध्यात्मिक भक्ति भावों को दृढ़ करती है। सरगरा समाज के रातिजोगा गीत में महिलाएँ कुलदेवी का गीत गाकर रातिजोगा की शुरुआत करती है, यह परम्परा सदियों पुरानी है, रातिजोगा के गीत क्रमानुसार गाए जाते है हर गीत का एक निश्चित क्रम होता है जिसके अनुसार ही उन्हें गाया जाता है। इन गीतों में देवी-देवताओं की स्तुति की जाती है।

सरगरा समाज में भक्ति भाव से परिपूर्ण रातिजोगा में स्तुति वंदन कर लौकिक ही नहीं अपितु अध्यात्मिक अनुभव, ज्ञान की प्राप्ति की जाती है, जो हर सहृदय भक्त के लिए किसी अलौकिक सुख से कम नहीं है। यहाँ जैसे तुलसीदास जी ने राम को अपना आराध्य मानकर साकार रूप से भक्ति की, सूरदास जी ने कृष्ण सखा भाव से, मीरा ने भक्ति, प्रेम व वात्सल्य से श्रीकृष्ण की भक्ति की, कबीरदास जी ने निराकार ब्रह्म की उपासना की वैसे ही जब भक्ति के रस में सहृदय आंनद के रस में निमग्न हो जाता है तो वह उस परमानन्द को प्राप्त कर लेता है जिस पर रहीमदास जी ने अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया नाना भक्तों ने अपनी भक्ति से लौकिक और अलौकिक, साकार और निराकार, राम और कृष्ण के रूप में उस भक्ति की अनुभूति करके श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम बन कर इस संसार को ज्ञान, भक्ति का मार्ग बताया अतः सरगरा समाज के रातिजोगा गीत में भी विभिन्न देवी देवताओं की स्तुति करके एक भक्त का हृदय निश्चल भाव से अपना सब कुछ उस परब्रह्म को समर्पित कर देता है जो उसके हृदयगत निवास करता है। परिवार में जब मेहमान आते है तो सभी खुशी में कई तैयारियां करते है वैसे ही रातिजोगा गीत में जब माँ के लिए दीया/दीवला व कुलदेवी को आमंत्रण न्यौते का और जाजम ढालने का गीत गाया जाता है तो एक सहृदय पलके निनिमेष किए माँ के आगमन की प्रतीक्षा करता है।

कुलदेवी को आमंत्रण :

''केसर घोलो कूंकू पत्री छाप दो।
जिण में लिखो कुलदेवी रो नाम, रातिजोगा वेगा आईजो''।

माताजी के नाम की कुंकू पत्री में लिखकर मंदिर में रखने का रिवाज सरगरा समाज में है यहाँ रातिजोगा में भी माताजी को आमंत्रित किया जाता है। यहाँ सहृदय की भक्ति माताजी के प्रति अगाध है। अतः उनके लिए जाजम बिछाकर बैठने के लिए स्थान तैयार किया जाता है, देवी-देवताओं के लिए ब्रह्म स्थान घर का चौक माना जाता है या ईशाण कोण वास्तु के अनुसार जहाँ देव मंदिर की स्थापना की जाती है।

''जाजम ढालो इण चौक माय, रमेया हे सागला देव''।

किसी भी घर का चौक (मध्य भाग) देव स्थान माना जाता है जहाँ तुलसी का पौधा लगाकर दीपदान किया जाता है अतः सभी देवताओं का स्थान या ब्रह्म स्थान भी घर का चौक माना जाता है अतः यहाँ रातिजोगा गीत गाकर माताजी के लिए महिलाओं द्वारा जाजम बिछाई जाती है। माँ अवश्य उनके घर आऐगें ऐसे सहृदय भक्तगणों की माँ भी आस पूरी करती है और आगे माजीसा, अधर माता, ब्राह्मणी माता, चामुण्डा माता, काली माता, बायासा माता के साथ भैरूजी का गीत गाया जाता है और माता की अराधना भक्ति से की जाती है। नवरात्री में भी नौ कन्याओं को जब भोजन कराया जाता है तो साथ में एक बालक को भैरूजी का रूप मानकर उसे भी खाना खिलाया जाता है अतः माताओं के साथ भैरूजी का गीत जरूर गाया जाता है।

सरगरा समाज में माजिसा का गीत :

''माजिसा रिमझिम करता पधारया, आया सरगरा री पोल, गेरा बाजे घुंघरा''।

माँ की आराधना सरगरा समाज की महिलाएँ और पुरूष सेविका व सेवक बनकर करते है। अतः माँ भी अपनी सेवा करने वाले भक्तों पर प्रसन्न होकर रातिजोगा में घुँघरू का पदचाप करते हुए पधारती है। यहाँ अध्यात्म से जुड़ी भक्ति जब साकार रूप लेती है तो मनुष्य उस परब्रह्म को अपने निकट ही आभासी रूप में समझने लग जाता है अतः सरगरा समाज के रातिजोगा गीत में भक्ति निमग्न हो जाना और माँ को आभास रूप में प्राप्त करने की स्थिति है लेकिन माना जाता है कि मनुष्य का मन ही मंदिर है तो कोई भी देवत्व उसके हृदय में ही विराजमान है।

अधरमाता का गीत :

''आज माताजी म्हारे आंगणियाँ पधारया, झर-झर झरना बेवे माता आबू रा पहाड़ा माय''।

अधरमाता आबू के पहाड़ों पर माता का निवास स्थान है।

बाह्मणी माता का गीत :

''ऊँचा गढ़ा सू उतरी देवी, भूरिया है नगर निसाब''।

माता ऊँचे पहाड़ से उतरते हुए अपने भक्त के यहाँ आ रही है।

चामुण्डा माता का गीत :

''कढ़े हे देवी थारो थापनो, कढ़ हे थारो थान,
जुनागढ़ हे थापनो, जोधणे है थान''।

माता का स्थापना स्थान जुनागढ़ व थान जोधाणे बताया गया है।

काली माता का गीत :

''मैं थाणे शिवरू, शारदा काली ऐ।
बसायो सागानेर, बसायो अलवर सेर''।

काली माता की आराधना में गीत गाया जाता है जिसमें काली माता 'ारदा (सरस्वती) माता की आराधना की जाती है।

बायासा माता का गीत :

''पाल माथे पीपली, सिरोहीया हाठे माड़ीओ।
आवेला अरणिया री बायासा, चुडला पहनाई जोरे, हा रे चुडला लाखा रो''।

यहाँ बायासा माता का गीत गाया जाता है जिसमें लाख का चुड़ला सातो बहनों को पहनाया जाता है यहाँ सरगरा समाज के बायासा माता के गीत में सात बहनों को बायासा माता का रूप मानकर उनका गीत गाया जाता है जो झूलेरा की बायासा के नाम से प्रसिद्ध हैं। अतः बायासा माता के बाद भैरूजी का गीत रातिजोगा में सरगरा समाज की महिलाओं द्वारा गाया जाता है।

भैरूजी का गीत :

''कुम्हारिया रो चाण्डे मतवालो, गोटा घुमावता आया महाराज।
धुपेड़ा री जोता लाऊ ओ भैरूजी, हाथया जोड़ती आँऊ महाराज''।

भैरूजी का गीत माताओं के गीत के साथ गाया जाता है।

सरगरा समाज के रातिजोगा गीत में माताजी व भैरूजी के लोकगीत के बाद विभिन्न देवी देवताओं की स्तुति की जाती है। जिसमें बजरंग बालाजी, 'ांकर भगवान, राम सा पीर, डाली बाई, केसरिया कवल, नारसिंग जी, भोमिया जी पितर पाटरी, माताजी की मेहंदी, पाबूजी, अचला जी खिचराणा गीत (राणी भटियाणी), राउलमाल जेतल, मोरध्वज राजा, काचमराणा, ढलती रात के गीत किस्तुरी, सीकमाता, प्रभातीगीत, चकचूंदरी गीत तथा कूंकड़ा गीत गाकर भक्ति भाव से सरगरा समाज में रातिजोगा गीत गाकर विभिन्न देवी देवताओं तथा लोक देवताओं की स्तुति की जाती है।

रातिजोगा गीत में प्रभावी गीत में कूकंडा गीत गाया जाता है जिसका तात्पर्य सूर्य उदय हो गया है अब माताजी का कूंकड़ा गीत गाकर ज्योत लगानी है और जिस इच्छा से यह रातिजोगा माताजी के लिए लगाया गया है माँ उसकी इच्छा पूरी करें और अक्षय दान दें।

''मारा कुलदेवी है घणा रा दातार, थाने देई पूतो वाला दान,
झडूला वालो दान। सेणा रो पालो गढ़ कूकड़ा मस्ती रो बोल, कूकड़ कू''।

माताजी रातिजोगा से प्रसन्न होकर झडूला वाला दान दे। अन्त में दातण का गीत गाकर रातिजोगा पूरा किया जाता है तथा माताजी के ज्योत लगाई जाती है व भक्तजनों में प्रसाद बाटी जाती है।

सरगरा समाज में सभी देवी देवताओं को भक्ति व ज्ञान का आधार मानकर मानव कल्याण की भावना को सर्वोपरि माना है सरगरा समाज के लोकगीत भक्ति, ज्ञान, अध्यात्म से परिपूर्ण अपनी संस्कृति को संजोए हुए है।

निष्कर्ष :

सरगरा समाज एक ऐसा समाज रहा है जिसमें समय-समय पर शान्ति में अध्यात्म से जुडकर लोकहित की भावना से कई साधु संतो ने लोक जन के जीवन को नई दिशा प्रदान की है। सरगरा समाज अपने लोकगीतों, परम्पराओं रीति-रिवाजों और लोक परम्पराओं की विरासत को सँजोऐ हुए निरन्तर संत सानिध्य की अमृत वाणी को आत्मसात करने वाला समाज है। यहाँ ऐसे कई संत हुए जिन्होनें अपने आत्मज्ञान से सिर्फ सरगरा समाज को ही नहीं बल्कि अन्य जाति, धर्म, पंथ, सम्प्रदाय के लोगों को भी अनमोल वचनों से लाभान्वित किया है तथा जाति, धर्म से ऊपर उठकर वसुदैव कुटुम्बकम् की भावना को मानवीय हित व समस्त जीवों की लोक मंगलकारी भावना को प्रचारित व प्रसारित किया है। ये लोकगीत इस समाज की सांस्कृतिक विरासत है जिसे सहेजना अत्यन्त आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

(1) राजस्थान व्याकरण और साहित्य का इतिहास, पद्म श्री सीताराम लालस।
(2) राजस्थान लोक संस्कृति एवं कायमखानी समाज, डॉ. नसीम, डॉ. हबीब खाँ गौराण।
(3) हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल।
(4) सूर्यवंशी सगर राजपूत मराठा, रणजीत निवृत्ति ताम्हाणे।
(5) लोक साहित्य विज्ञान, डॉ. सत्येन्द्र।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

'साँप' उपन्यास में वर्णित हाशिए का समाज

डॉ. विभीषण कुमार
यूजीसी नेट-जे.आर.एफ. एवं पीएच.डी., हिन्दी विभाग
भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय
लालूनगर, मधेपुरा - 852113
ई-मेल : vibhishan30@gmail.com
मो० : 9162958215

शोध-सार : रत्नकुमार सांभरिया का उपन्यास 'साँप' घुमंतू जनजातियों के जीवन संघर्ष, सामाजिक हाशिएकरण और उनकी अस्मिता की खोज का यथार्थपरक दस्तावेज है। उपन्यास में सांप को प्रतीक बनाकर समाज में मौजूद छल, पाखंड, दोगलेपन और सत्ता-प्रशासन के शोषण को उजागर किया गया है। सपरानाथ, थानेदार धार सिंह, और पंडित जैसे पात्र इस प्रतीक को मूर्त रूप देते हैं, जबकि लखीनाथ, रमतीबाई, सरकीबाई और मिलन देवी जैसे पात्र जनसंघर्ष, अस्मिता और सामाजिक न्याय के पक्ष में खड़े दिखाई देते हैं। स्त्री-पात्रों की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय है—वे केवल संवेदना की नहीं, बल्कि संघर्ष की भी प्रतिमूर्ति हैं। मिलन देवी के माध्यम से एन.जी.ओ., शासन और सत्ता की भूमिका, और रमतीबाई सरकीबाई के माध्यम से घुमंतू स्त्रियों का आत्मसम्मान और साहस दर्शाया गया है। भाषा में आँचलिकता, राजस्थानी-हरियाणवी लोक-शब्द और मुहावरे उपन्यास को जीवंतता प्रदान करते हैं।

बीज शब्द : घुमंतू जनजाति, अस्मिता, सांप (प्रतीक), दलित चेतना, शोषण, आँचलिकता, सामाजिक, न्याय, स्त्री संघर्ष, प्रशासनिक पाखंड, पुनर्वास आदि।

मूल आलेख : राजस्थानी पृष्ठभूमि के हिन्दी लेखक रत्नकुमार सांभरिया का समकालीन हिन्दी साहित्य में उल्लेखनीय योगदान है। उन्होंने हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं पर कलम चलाई है, जिसमें दलित चेतना सशक्त रूप से उभर कर सामने आता है। सांभरिया जी के दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं – 'साँप' और 'नटनी'।

साँप उपन्यास को राजस्थानी साहित्य अकादमी का 'मीरा पुरस्कार' प्राप्त कर चुका है। यह उपन्यास घुमंतू जनजातियों के जीवन संघर्ष और अस्मिता की खोज का सजीव चित्रण है। इसमें विभिन्न चरित्रों – सूरत देवी (सेठ परिवार), सपरानाथ (घुमंतू समुदाय), डॉ. एल.एल. साध (चिकित्सा), धार सिंह (पुलिस) और भँवरदत्त (राजनीति) के माध्यम से यह दिखाया गया है कि 'साँप' केवल जीव नहीं, बल्कि समाज में फैले षड्यंत्रकारी और दोगले चरित्रों का प्रतीक है। उपन्यास में सांप कई रूपों में मौजूद है – घर, समाज, राजनीति और शासन में, जो आदमी का मुखौटा पहनकर अधिक विषैला बन गया है। इस उपन्यास की भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और बोधगम्य है। राजस्थानी और हरियाणवी के देशज शब्दों का प्रयोग इसे आँचलिक रंग देते हैं, जो कभी-कभी बाधक तो लगते हैं, लेकिन संप्रेषण में अड़चन नहीं बनते। मुहावरों, बिंबों और लोक-प्रत्ययों का प्रयोग पाठक को कथा से जोड़ देता है। उपन्यास का परिवेश बोलता सा प्रतीत होता है। गाँव की गलियाँ, कच्ची सड़कें, खेत-खलिहान, झोपड़ियाँ, लोकगीत और लोकनृत्य, ये सब इसे आँचलिकता का रूप देते हैं।

उपन्यास की शुरुआत मजदूरों की व्यथा और काम मिलने की खुशी से होती है, जहाँ ब्राह्मणवाद और अंधविश्वास पर कटाक्ष है। सेठ मुकुंददास जब अपने भाई से अलग घर बनवाते हैं, तो पंडित हवन की सामग्री के साथ मुहूर्त देख रहे होते हैं। इसी दौरान नींव की खुदाई में एक असली नाग की पूंछ कट जाती है और वह फुफकार उठता है। यह दृश्य अंधविश्वास की विफलता और समाज के भीतर छिपे 'साँपों' की ओर संकेत करता है। पंडित जी की दशा कुछ इस प्रकार है - "सात पीढ़ियों के अनिष्ट को दूर करने का उनका दावा था। पण्डित जी नींव के निकट जा खड़े हुए। नींव के बिल में घुसे बैठे जिन्दा नाग की लपलपाती जीभ देख कर भय से ऐसे घबराये, चाँदी के नाग-नागिन की डिबिया और पतरा थामे उनके हाथ बुरी तरह धूजने लगे थे। खुद काँप रहे थे, हवा में बिजूका हिलता हो। उनका चेहरा पीला पड़ गया, अमरबेल सा। होंठों पर पपड़ी फैली थी और पुतले से दिखाई देने लगे थे।"[1] इस घटना के माध्यम से लेखक ने धर्म, विश्वास, अंधश्रद्धा और सामाजिक पाखंड पर तीखा व्यंग्य किया है। पंडित का मुहूर्त टालना और घूस लेना इस बात का प्रतीक है कि आस्था और कर्मकांड भी बाजारू हो चुके हैं। यह दृश्य केवल एक सांकेतिक आरंभ नहीं, बल्कि पूरे उपन्यास के कथ्य का संकेत है – जहाँ असली विषधर (छल, पाखंड, शोषण) मुखौटों के साथ समाज में मौजूद हैं।

उपन्यास में एक ओर सुख-संपन्न सेठ मुकुंददास और सुकुंददास का परिवार है, दूसरी ओर खानाबदोशों की बस्ती, जहाँ जीवन संघर्ष, जीविका और जीवट से भरा है। कुल 26 परिवारों की इस बस्ती के माध्यम से लेखक ने उस श्असली दुनियाश का चित्र खींचा है, जो छल-छद्म से रहित है, मगर जिसे समाज हाशिए पर ढकेल चुका है।

इस उपन्यास की कथा-पृष्ठभूमि में घुमंतु खानाबदोश जनजातियाँ हैं, जिनका स्वाभाविक और यथार्थपूर्ण चित्रण लेखक ने किया है। पात्रों के चरित्र में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं किया गया है—वे जैसे हैं, वैसे ही प्रस्तुत किए गए हैं। यह समाज हाशिए के भी हाशिए पर जीवन बिता रहा है, जहाँ उनके रहन-सहन, लोकजीवन और जीवनशैली में जीवंत लोक संस्कृति, पारदर्शिता और बेबाकपन स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। इनकी दुनिया में लोभ, लालच और छल-कपट का कोई स्थान नहीं है। जीविका हेतु वे जीव-जंतुओं पर निर्भर रहते हुए भी ईमानदारी से अपनी रोज़ी-रोटी कमाते हैं। वे भले ही आकाश ओढ़ते हैं और धरती बिछाते हैं, लेकिन मेहनत से अर्जित सम्मानजनक जीवन जीने में विश्वास रखते हैं। एकता सामाजिक, सांस्कृतिक और सांप्रदायिक स्तरों पर गहराई से मौजूद है। वहाँ न जाति का भेद है, न धर्म का। हिंदू मुसलमान की थाली से खाता है और मुसलमान हिंदू की थाली से। बिना किसी झिझक के। जैकाराम और मैरू खां का एक ही रोटी, भूने आलू, हरी मिर्च और गुड़ को दो थालियों में बाँटकर खाना, इस सांप्रदायिक सौहार्द की सुंदर मिसाल है। जैसे दो थालियाँ, पर एक दिल। "सेठ जी के खबरनवीस जैसे जिज्ञासु नेत्र उधर टिक गये थे। दोनों थालियों से कोर-कोर उठा कर खायी जा रही रोटी, बुटका-बुटका खाया झोपड़ियों से आयी अलग-अलग स्वाद की दो थालियाँ सौहार्द बँटी थीं।"[2] एक के पास बंदर और दूसरे के पास बंदरियां हैं। पंद्रह दिन एक खेल दिखाकर अपनी रोजी-रोटी चलाता है, तो पंद्रह दिन दूसरा। इस तरह के कई उदाहरण बस्ती में हैं, जो एकता का भाव प्रदर्शित करते हैं। इन आदिवासी खानाबदोशों में एकजुट होकर अपने हक और अधिकार के लिए लड़ने का भाव मिलन देवी और भी मजबूत कर देती हैं। जब लखीनाथ और भलीराम मदारी को थानेदार धार सिंह पकड़कर हवालात में बंद कर देता है, तब बस्ती के नट, मदारी, कलंदर, बाजीगर, बहुरूपिया, सपेरे-कालबेलिया अपने नंदी, रीछ, भालू, बंदर-बंदरिया, कबूतर, बाज, और गधे के साथ एकता का प्रदर्शन करते हैं। इस बस्ती में एक खलनायक पात्र सपरानाथ है, जिसके कारण कुछ खटास उत्पन्न होती है।

लखीनाथ और रमतीबाई जैसे पात्र इंसानियत की प्रतिमूर्ति हैं, जिनसे किसी का भी सहज रूप से आकर्षित होना स्वाभाविक है। मिलन देवी के पास तो और भी गहरी संवेदना है, जो घुमंतुओं की बदहाली और असामान्य जीवनशैली के प्रति गहरी पीड़ा और जिम्मेदारी अनुभव करती हैं। गोली लगने पर वह लखीनाथ का इलाज डॉ. बाला से करवाती हैं। लेकिन संतान-सुख किसी भी स्त्री के लिए परम सुख होता है, और इसी सुख की प्राप्ति के लिए मिलन देवी लखीनाथ के साथ किसी भी सीमा को लाँघने को तत्पर हो जाती हैं। वह लखीनाथ से घुमंतुओं का डेरा पक्का करवाने का वादा करती हैं और बदले में लखीनाथ मूँछ का बाल देकर वंश चलाने हेतु अंश देने का वचन देता है। इसी वादे की डोर थामे मिलन देवी लखीनाथ

को होटल के कमरे तक ले जाती हैं, किंतु उसके इनकार से मिलन के चरित्र की मर्यादा भंग नहीं होती। बाद में मिलन देवी सभी घुमंतुओं के डेरे का सर्वेक्षण करती हैं और उनका प्रस्ताव लेकर सचिवालय में शहरी विकास मंत्री से भेंट करती हैं। बाद में चुनावी माहौल को देखते हुए मुख्यमंत्री से भी मिलती हैं। राजनीति, शासन-प्रशासन और अपने एन.जी.ओ. की सहायता से वह घुमंतु समाज के 26 परिवारों का पुनर्वास करवा देती हैं और उनके बच्चों की शिक्षा के लिए वहाँ स्कूल की व्यवस्था भी करा देती हैं। फिर भी, मातृत्व की चाह में वह लखीनाथ के दिए वादे को नहीं भूलतीं और एक बार फिर दोनों होटल के कमरे तक पहुँचते हैं। अपने जेठानी की बात—''देखना, सपेरे का अंश वंश चलाएगी।''[3] मिलन के मन को झुलसा देती है। आज वह लखीनाथ के सामने तड़प रही है। उसकी आँखें आमंत्रण दे रही हैं, वह वंश के लिए हाथ फैलाकर लखीनाथ से अंश माँग रही है। लेकिन लखीनाथ मिलन की सभ्रांतता, अपनी गरीबी और चरित्र के इस त्रिकोण में रमतीबाई के भय को चौथे कोण की तरह जोड़ देता है। वह मिलकर भी मिल नहीं पाता। इस बार जब मिलन देवी सिटकनी चढ़ाने लगती हैं, तो लखीनाथ उन्हें रोक लेता है। इसका यह अर्थ नहीं कि वह अपने वादे से मुकर गया है। मिलन द्वारा उसे पुलिस से बचाने और बस्ती को पक्का कराने का एहसान वह नहीं भूला है।

रमतीबाई लखीनाथ सपेरा की पत्नी है। वह पहले लखीनाथ के भाई सरूपानाथ के साथ ब्याही गयी थी। उपन्यासकार के चरित्र-चित्रण के अनुसार रमतीबाई कुछ ऐसी है - "उन्नीस की रमतीबाई का लम्बा कद था। इकहरी काया में छरहरेपन की दहक थी। रंग नेक साँवला, चेहरा सलोना और यमुना के बहते जल जैसी कशिश थी। छोटी माता(चेचक) निकली थी, उसे। चेहरे पर माता मीह-मीहकण रह गये थे। वे कण कुरूपता नहीं, सुन्दरता के हमराह थे, आज। पर्ण सरीखे पतले-पतले उसके होंठ जब पुलकते, ओष्ठ-सन्धि की बांक क्षितिज सी बन जाती थी। यह बांक कामुक के लिए दंश थी।"[4] लेकिन साँप के काटने से सरूपानाथ की मृत्यु हो गई थी, और इसका कारण बना उसी खानाबदोश बस्ती का सपरानाथ। बस्ती में साँप का प्रतीकात्मक रूप वही था। सपरानाथ पहले रमतीबाई का मंगेतर था। सगाई के लगभग दस दिन बाद, एक दिन वह शराब पीकर धुत्त हो गया और बीन बजाता हुआ सबके सामने झोपड़ी के बाहर बैठी रमतीबाई का हाथ बेशर्मी से पकड़ लिया। सपरानाथ की इस निर्लज्ज हरकत के कारण ही रमतीबाई का विवाह सरूपानाथ से कर दिया गया। रमतीबाई जिस परिस्थिति में ब्याही गई, वहाँ भी उन्होंने अपने शील-चरित्र और ईमानदारी को अक्षुण्ण बनाए रखा। वह अपने पति के साथ संघर्ष में सहभागी बनती हैं और अपनी अस्मिता तथा स्वाभिमान की रक्षा के लिए किसी भी शर्त को स्वीकार नहीं करतीं। रमतीबाई में सेवा-भाव, ईमानदारी और निष्ठा की भावना कूट-कूट कर भरी है।

जब मिलन देवी, शशि और काजल को साथ लेकर खानाबदोशों की बस्ती जाती हैं, तब रमतीबाई से भेंट के दौरान अनेक यथार्थ सामने आते हैं। वहाँ दो प्रकार की स्त्रियाँ आमने-सामने होती हैं—एक ओर हैं सभ्य, सुसंस्कृत और संपन्न वर्ग की महिलाएँ, तो दूसरी ओर हैं दरिद्रता, विवशता और लाचारी में घिरी हुई महिलाएँ। जहाँ एक ओर महलों का सुख-संस्कार है, वहीं दूसरी ओर संसाधनों के अभाव से जूझती ज़िंदगियाँ हैं। जिन्होंने देश की आज़ादी के लिए अंग्रेज़ों से संघर्ष किया, वे आज बेबस, गरीब और हाशिए पर धकेल दिए गए; जबकि जिन्होंने अंग्रेज़ों के तलवे चाटे, उन्होंने देश के संसाधनों पर कब्ज़ा जमाया, विलासिता के साधन जुटाए और महलों का निर्माण किया। इस विरोधाभास को उपन्यासकार ने बहुत कुशलता से काजल के मुँह से कहलवाया है, जो इस सामाजिक अन्याय की गहरी पड़ताल करता है - "यह अँग्रेजों का निचुड़ा देश है। अँग्रेजों के जो जितने नजदीक रहे, वह अमीर हुए। जो दूर रहे, देश के रहे, वे दरिद्र हो गये। दूरी की ये दरें राष्ट्रप्रेम की धारा है। नजदीक और दूरी में राजप्रेम और देशप्रेम जितना अन्तर रहा, मिलन।"[5] इस प्रकार रमतीबाई खानाबदोश जनजातियों का प्रतिनिधित्व करनेवाली स्त्री पात्र है, जो हर परिस्थितियों में अपने पति का साथ देती है।

इस उपन्यास में एक और स्त्री पात्र मदारिन सरकीबाई का चरित्र अत्यंत संवेदनशील है। वह भी रमतीबाई की तरह एक खानाबदोश स्त्री पात्र है, जिसमें अपने पति भलीराम मदारी के प्रति गहरा समर्पण भाव है। उसे साँप-संपोले, जीव-जंतु और भूत-प्रेत से अधिक भय मनुष्य के रूप में साँप, थानेदार धार सिंह से है। धार सिंह पुलिस-प्रशासन का ऐसा साँप है, जो सरकीबाई की इज्जत पर डंक मारना चाहता है। कामांध थानेदार की वासना में जलती आग की लपटें उठ रही होती हैं।

एक खानाबदोश स्त्री—सरकीबाई, अपनी इज्जत की रक्षा के लिए किस हद तक संघर्ष करती है। इसका उदाहरण इस उपन्यास में मिलता है। समय आने पर जब वह मिलन देवी के साथ मुख्यमंत्री से मिलती है, तो वह निडर होकर पुलिस-प्रशासन के काले कारनामों से मुख्यमंत्री को अवगत कराती है – "हुकुम मारो जीणो-मरणो बरोबर है। दारीका पुलसया म्हारा मुरगा, बकरा खा जावै। रातबासो कर जावै। बोलां मुँह खोलां। घणो कूटे-पीटे। ले जाके थाणा में पटक दें। चोर-लुटेरा का बदला में म्हारा आदमियाँ की जेल करा दे।"[6] इस तरह सरकीबाई भी इस उपन्यास की एक सशक्त स्त्री पात्र है, जो अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए घर की चौखट लांघकर संघर्ष के मैदान में उतरती है। सबसे अधिक प्रभावशाली और मार्मिक क्षण वह था जब खानाबदोशों का प्रतिनिधिमंडल मुख्यमंत्री से मिला। लखीनाथ, रमतीबाई, सरकीबाई, बहुरूपिया और मदारी जैसे पात्रों ने बेझिझक अपनी बात मुख्यमंत्री के सामने रखी। विशेष रूप से लखीनाथ ने अपनी बात बेहद बेबाकी और आत्मविश्वास के साथ मुख्यमंत्री से कही – "हुकम म्हारी घुमक्कड़ जातियाँ अपना ही देस में बीरानी हैं। अनजानी हैं। बिना चेहरा की हैं। देस अपणो। परदेस अपणो। पर ना म्हारो कोई गाम। ना ठीयो। ना गली। ना कूचो। गाम की गली से निकलां, कूकरा म्हारा पे भोंके। लोगबाग सक की आँख देखे। बँगला-कोठी चोरी-चकारी खुद घरवाला कर ले। पुलस को धाड़ौ म्हारा डेरा में पड़े। मरदां ने उठा ले जावै। मारे-पीटे। झूठ पे साचो गूण्ठा टिकवा ले। थाना में बन्द कर दे। ना म्हारी सफारस। ना म्हारे पास पीसा। छोड़े तब छोड़े। एक हाँडी में दो पेट है, अपणा देस में।"[7]

लखीनाथ की बातों को सुनकर मुख्यमंत्री गहराई से प्रभावित होते हैं। वे संबंधित मंत्रियों को सर्वे दस्तावेजों के आधार पर बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध कराने को प्राथमिकता देने का निर्देश देते हैं। इस उपन्यास में लगभग सभी स्त्रियाँ घर की चौखट लांघकर बाहर निकलती हैं और अपनी अस्मिता की रक्षा हेतु संघर्ष करती हैं। वन्यजीव संरक्षण अधिनियम और अन्य कानूनों के कारण घुमंतु समुदाय को अपना पारंपरिक रोजगार छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा है। मिलन देवी और लखीनाथ के बीच पनपते संबंध सामाजिक न्याय की दिशा में एक सकारात्मक राह खोलते हैं, जिसके परिणामस्वरूप बस्ती बसती है, सभी को पक्के मकान मिलते हैं, सड़क बनती है और स्कूल की स्थापना होती है।

निष्कर्ष : रत्नकुमार सांभरिया का उपन्यास 'साँप' समकालीन हिन्दी साहित्य में घुमंतू जनजातियों के जीवन, संघर्ष, और अस्मिता की खोज का सशक्त दस्तावेज है। उपन्यास में सांप केवल एक जीव नहीं, बल्कि समाज में व्याप्त पाखंड, शोषण, सत्ता और छल का प्रतीक बनकर उभरता है। यह रचना समाज के उस वर्ग की आवाज़ है, जिसे अब तक हाशिए पर रखा गया। उपन्यास में दिखाया गया है कि किस प्रकार से बेजान कानून, भ्रष्ट प्रशासन, और संवेदनहीन समाज ने इन समुदायों को उनके मूलभूत अधिकारों से वंचित कर रखा है। परंतु इसके समानांतर मिलन देवी, लखीनाथ, रमतीबाई और सरकीबाई जैसे पात्र उम्मीद, बदलाव और संघर्ष की चेतना को आगे बढ़ाते हैं। यह उपन्यास न केवल दलित-आदिवासी चेतना का प्रतिनिधि है, बल्कि यह बताता है कि सामाजिक न्याय और समरसता तभी संभव है जब हम वंचितों को भी समाज का बराबर का हिस्सा मानें।

संदर्भ

1. सांभरिया, रत्नकुमार, साँप, सेतु प्रकाशन प्रा. लि., नोएडा, उ० प्र०, प्रथम संस्करण – 2022, पृष्ठ सं० – 13-14
2. वही, पृष्ठ सं० – 21
3. वही, पृष्ठ सं. – 49
4. वही, पृष्ठ सं० – 61
5. वही, पृष्ठ सं० – 116
6. वही, पृष्ठ सं० – 257
7. वही, पृष्ठ सं० – 257

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Gender, Governance and Democratic Deepening in India

Dr. Ravi
Assistant Professor, Department of Political Science,
Shivaji College, University of Delhi.
Email ID: ravijaitammhandera@gmail.com

Abstract

This research focuses on women's role in political participation. It employs descriptive and analytical methods to identify barriers preventing women from leaving home and engaging in politics. The study examines legal provisions in the constitution aimed at boosting women's electoral participation. In 1994, India introduced the 73rd and 74th constitutional amendments, mandating the reservation of 33% of seats in local government bodies for women. Additionally, the study explores progressive strategies aimed at enhancing women's participation and influence in politics. The conclusion provides recommendations for increasing women's participation and emphasizes its importance.

Key Words: Democracy, Equality, Constitution, Empowerment, Reservation, Freedom, Education.

Introduction: Empowerment refers to increasing a person's ability to do positive things or achieve big goals in life. Women's empowerment means improving women's status in their personal lives as well as in political, social, educational, and professional areas. Today, women are playing a crucial role both inside the family and outside it. Outside roles include sectors like corporate, banking, industry, fashion, politics, healthcare, and academia across India and the world. Women are present everywhere, playing important roles and making their presence known. However, the current study is limited to the political aspects of women's empowerment.

Historical Background

In the making of the Indian Constitution, out of 389 members of the Indian Constituent Assembly, there were 15 female members. They were Dakshayani Velayudhan, Annie Mascarene, Ammu Swaminathan, Begum Aizaz Rasul, Durgabai Deshmukh, Hansa Jivraj Mehta, Kamla Chaudhry, Leela Roy, Malati Choudhury, Purnima Banerjee, Rajkumari Amrit Kaur, Renuka Ray, Sarojini Naidu, Sucheta Kripalani, and Vijayalakshmi Pandit. Madam Bhikaji Cama is known as the mother of the Indian Constitution because she contributed to the Indian freedom struggle.

Role of Women in Indian Politics

Prime Minister Indira Gandhi was the first female Prime Minister of India. She was the 3rd Prime Minister of India.

President Pratibha Patil was the first female President of India. She was the 12th President.

Judges in the Supreme Court

List of female judges in the Supreme Court of India

S.No.	Names	Tenure Appointment	Retirement	Remarks
1.	Fathima Beevi	6 October 1989	29 April 1992	First woman judge of the Supreme Court of India
2.	Sujata Manohar	8 November 1994	27 August 1999	
3.	Ruma Pal	28 Januaray 2000	2 June 2006	Longest-serving female judge of the Supreme Court of India
4.	Gyan Sudha Misra	30 April 2010	27 April 2014	
5.	Ranjana Desai	13 September 2011	29 October 2014	
6.	R. Banumathi	13 August 2014	19 July 2020	
7.	Indu Malhotra	27 April 2018	13 March 2021	The first woman judge who was elevated directly from the Bar Council of India
8.	Indira Banerjee	7 August 2018	23 September 2022	
9.	Hima Kohli	31 August 2021	1 September 2024	
10.	B. V. Nagarathna	31 August 2021	29 October 2027	To be the first female Chief Justice of India in September 2027
11.	Bela Trivedi	31 August 2021	9 June 2025	

From the 32 judges of the Supreme Court of India, we have only 11 female judges. This data showing us the reality of our women, where they stand in Indian politics.

Governor Sarojni Naidu was the first female governor of India. Padmaja Naidu, Vijayalakshmi Pandit, Sharda Mukherjee, Jothi Venkatachalam, Kumudben Joshi, Ram Dulari Sinha, Sarla Grewal, Sheila Kaul, Fatima Beevi, V. S. Ramadevi, Pratibha Patil, Prabha Rau, Margaret Alva, Kamla Beniwal, Urmila Singh, Sheila Dikshit, Maridula Sinha, Draupadi Murmu, Najma Heptulla, Anandiben Patel, Baby Rani Maurya, Anusuiya Uikey, Tamilisai Soundarajan. These 24 female governors remain part of Indian history as an icon.

Chief Minister

First Woman Chief Ministers of Indian States

State	Chief Minister
Assam	Syeda Anwara Taimur
Bihar	Rabri Devi

Delhi	Sushma Swaraj
Gujarat	Anandiben Patel
Goa, Daman & Diu	Shashikala Kakodkar
Madhya Pradesh	Uma Bharti
Odisha	Nandini Satpathy
Punjab	Rajinder Kaur Bhattal
Rajasthan	Vasundhara Raje
Tamilnadu	Janaki Ramachandran
Uttar Pradesh	Sucheta Kriplani
West Bengal	Mamta Banerjee
Jammu & Kashmir	Mehbooba Mufti Sayeed

Sucheta Kirplani was the first female Chief Minister of India in Uttar Pradesh. After that, Nandini Satpathy, Shashikala Kakodkar, Anwara Taimur, V. N. Janaki Ramachandran, J. Jayalalithaa, Mayawati, Rajinder Kaur Bhattal, Rabri Devi, Sushma Swaraj, Sheila Dikshit, Uma Bharti, Vasundhara Raje, Mamta Banerjee, Anandiben Patel, and Mehbooba Mufti followed. These 16 women from history will always serve as a motivational source for women.

After gaining independence in 1947, India has had only one female Prime Minister and one female President up to 2022. Out of 14 Presidents, only one is female. Out of 14 Prime Ministers, only 1 is female. Out of 13 Vice Presidents, we haven't had even a single female Vice President. During 75 years of independence, we have had only 16 female Chief Ministers and 24 female Governors. This raises pride or shame for India, reflecting the poor status of women in Indian politics.

Representation of Women in Parliament: Women's representation in Indian politics is very low. Currently, women's participation in India's parliament is 12%. This ranks 20th from the bottom in terms of women's representation in Parliament. Political activism and voting are the strongest areas of women's political participation. If they actively participate in politics, they will get more opportunities in both personal and professional life. Because political awareness helps improve our social life standards by understanding our rights, duties, and values like freedom, equality, education, democracy, secularism, and empowerment.

Obstacles

Orthodox Society: Our society is very traditional. People have strong faith in rituals and customs. They do not want changes in family, personal life, or society. Laws are created by the government to prohibit dowry, marriage age, or domestic violence, but people still strongly believe in these outdated rituals and resist change. According to Orthodox society, a female should wear a veil and be an ideal daughter-in-law or girl. She should stay at home and not be allowed to go outside.

Traditional Mindset: Our society and people's mindset are rigid. The mind is not open, and there is no permission for equality for women or girls and boys. Here, various rules, regulations, food choices, dressing styles, talking styles, and even behavior styles are completely different for men and women.

Patriarchal Society: Our society is male-oriented. All financial power and decision-making in a family depend solely on men. Not only within families but also at the national level, we see India's President, Vice President, Prime Minister, Election Commissioner, and Supreme Court judges—all seats are reserved for men despite India's diversity.

Illiteracy: Due to traditional society and Orthodox thinking, there are different rules and regulations for males, females, and transgender people regarding basic needs like primary education, food, clothes, and higher education. For girls in villages, poor families, or large families, higher education or family education is often not allowed.

Lack of awareness: In a conservative society, due to a lack of education, females have a lack of understanding. They do not want to go outside at home. They feel shy.

Financial Dependency: Financially female dependents on a father, brother, husband, and son. Because of finance, men make decisions about what should be done in the family and what should not.

Ancient Backwardness: Women's status has been very poor in Indian society throughout history. In Manusmriti, females had no dignity. In Ramayana, Sita had no respect even during her pregnancy. In Mahabharata, Draupadi's Chir Haran chapter is notable. In Indian history, theoretically, females are regarded as embodiments of Goddesses, but practically, nobody wants to have a daughter at their home.

Importance

Democracy: To save Indian democracy. Men and Women should have equal values, right, dignity and education.

Gender Awareness and Sensitization: To maintain an equal balance of males and females in society as well as in the world. Gender awareness is very important for human beings.

Equality: It is the rule of nature to balance every aspect of it. To the human species, it is necessary to maintain equality in gender, race, religion, and education everywhere in society.

Values for the Next Generation: We must protect the environment and conserve resources for those who come after us. We have to provide our children with right and scientific values. To respect everyone, whether it is a sister, a mother, an aunt, an uncle, an elder, or a younger person, we must treat everyone equally. Equality is a rule of nature: the Sun gives light equally everywhere, trees produce oxygen equally, and the wind blows for everyone—these natural resources never discriminate against humans. Yet, humans are the only species on Earth that discriminate against each other.

Legal Aspects

Article 14. According to the Indian Constitution, Article 14 guarantees equality before the law and equal protection of the law.

Article 15 of the Constitution of India guarantees equality. It states that all individuals are equal and prohibits discrimination based on gender (male, female, third gender), race, religion, caste, or place of birth.

Article 42 of the Indian Constitution provide maternity relief to women. Women can take maternity leave for 6 months from any governmental office. In private offices there is another provision. But Indian Constitution provide relief to women.

33% reservation on local level

To uplift Indian women in politics, an amendment was passed in the Indian Constitution in 1993. According to this amendment, Women's reservation, as per the 108th Bill, provides 33% reservation for Indian women at the local level. It reserves one-third of all seats in the Lower House of Parliament. In all states, the Lok Sabha and Legislative Assemblies also have one-third of their seats reserved for women.

New Strategies

Awareness: For women empowerment, it is necessary that first women should be aware of themselves. She should be given time to herself to maintain her identity, uplift herself, and upgrade her level; awareness is essential.

Practical Education: In Indian education, there is a drawback. It focuses only on producing quantity, not quality. That's why many are educated but not employed. Unemployment is a big problem in India because of the lack of quality. We need to reform our education system properly.

Free Education for girls: For girls we need education free at primary level as well as secondary and higher level. Special facilities should be provided for girls education.

Practical knowledge: Education should be given practically not only theoretically. How to maintain hygiene, Sexual education, self defense education should be given practically.

Independent: A lady should be independent, not always remain dependent on father, brother, husband, son, and so on. First women should be educated and financially independent and take her own decision independently.

Involvement in Decision Making: At her home with father or husband there always should be involvement of women in decision making. By her roots, her thinking when she starts think for herself take decision for herself everything will be go well.

Brain storming: During her childhood brain storming is very necessary for her to up lift herself not according to society but according to herself. Women empowerment story should be taught to her. Self defense activities should be taught to her. Difference of touches should be taught to her. Not be quite spoke out should be taught to her. When she learns it from childhood it will be rooted in its brain that she is weak she strong ever, she can do anything, change anything. Societies rule can not stop her by giving ideal image.

Open Society: To uplift our sister, daughter, and mother, we need to respect everyone equally. Not only at home but also outside, we should respect women. We need to open our minds and our society.

Implements of schemes include Beti Bachao Beti Padhao, One Stop Centre scheme, women helpline scheme, UJJWALA, Working Women Hotel, SWADHAR Griha, NARI SHAKTI PURASKAR, NIRBHAYA, Mahila Police Volunteers, Mahila Shakti Kendras, etc. The Ministry of Women & Child Development initiated all these schemes. However, the need of the hour is proper

implementation of these schemes. We don't need new schemes; we just need active administration and an aware bureaucracy.

Conclusion

Women's empowerment is a very sensitive topic in India. International Women's Day is celebrated on the 8th of March at a global level since 1911. Since 1947 in India, but till today, we haven't achieved it. Everywhere around the world, violence against women is often considered normal. Nature has made females physically soft. But according to our patriarchal society, nature has also made females delicate physically as well as mentally. So, according to some, it is the duty of men to suppress or torment women. It depends on men's wishes whether they want to protect women or to rape them, because women are seen as instruments for their pleasure. Our society makes rules only for women not to wander free, for security purposes and for protection. You need a man because only men can protect you from other men. On one side, girls face issues like rape, female crime, domestic violence, and broken marriages, which we hear all over India. On the other side, India has had a female prime minister, and in developed countries like America, they still haven't had a female president. So, India is improving in terms of its status, and the status of poor women is also rising. However, we need to accelerate this progress. We must update our traditional rules and regulations scientifically. We should revisit our deeds and study the Indian Constitution thoroughly. We must respect everyone equally and value them equally. Only then can we say that women's empowerment is complete.

References:

- Baden, Sally; Goet, Anne Marie (July 1997). "Who Needs [Sex] When You Can Have [Gender]? Conflicting Discourses on Gender at Beijing". Feminist Review. 56 (1): 3–25. doi:10.1057/fr.1997.13. ISSN 0141-7789. S2CID 143326556.
- Christens, Brian D. (August 3, 2010). "Public relationship building in grassroots community organizing: relational intervention for individual and systems change". Journal of Community Psychology. 38 (7): 886–900. doi:10.1002/jcop.20403.
- Kabeer, Naila. "Contextualising the Economic Pathways of Women's Empowerment: Findings from a Multi-Country Research Programme." (2011).
- UNDP. 2013. Human Development Report. The Rise of the South. Human Progress in a Diverse World; New York, UNDP.
- UNESCO. 2014, 2020. EFA Global Monitoring Report 2013/2014: Teaching and Learning, Paris, UNESCO.
- Romeo, N. 2016. "The chatbot will see you now". New Yorker, 25 December 2016.
- Shulevitz, J. 2018. Alexa, should we trust you? The Atlantic, November 2018.
- Wong, Q. 2017. Designing a chatbot: male, female or gender neutral? Mercury News, 5 January 2017.
- "Sustainable development goals – United Nations". United Nations Sustainable Development. Archived from the original on March 13, 2018. Retrieved March 14, 2018.
- Erbaugh, Elizabeth. "Women's Community Organizing and Identity Transformation". Race, Gender & Class. 9: 8–32.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

सेवासदन उपन्यास में महिला उत्पीड़न के विविध रूप

डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य
विश्वविद्यालय चित्रकूट (उत्तर प्रदेश)
मो.- 8604112963, ईमेल–putupiyush@gmail.com

इच्छा उपाध्याय
छात्रा (एम. ए.) हिन्दी विभाग
जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य
विश्वविद्यालय चित्रकूट (उत्तर प्रदेश)
मो.- 78808 34947

शोध सार - उपन्यास हिंदी साहित्य की उत्कृष्ट विधा है। उपन्यास साहित्य की वह विधा है जिसमें मानव जीवन और समाज की समस्याएं, संघर्षों एवं अनुभवों का विस्तृत, क्रमबद्ध और यथार्थ चित्रण किया जाता है। हिंदी साहित्य को शिखर तक पहुंचने में जिन विद्वानों ने सहयोग प्रदान किया उनमें मुंशी प्रेमचंद का विशेष योगदान रहा है। प्रेमचंद ने अपने साहित्य के माध्यम से समाज के पीड़ित, शोषित, किसान, मजदूर, वंचित एवं बाल वर्ग की समस्याओं का वर्णन कर उनकी समस्याओं को समाज के लोगों तक पहुंचाने का अकथनीय कार्य किया है।

समाज निर्माण में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है परन्तु वह सदियों से अत्याचार सहती आई है। महिला उत्पीड़न से तात्पर्य महिलाओं के साथ होने वाले किसी भी प्रकार के शोषण, अन्याय, अत्याचार या भेदभाव से है जो उनके सामाजिक, आर्थिक, मानसिक और शारीरिक जीवन को प्रभावित करते हैं।

प्रेमचंद का उपन्यास सेवासदन की मुख्य पात्र सुमन है। जिसका जीवन विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त है और वही नायिका अन्ततः अपने कार्यों से समाज में एक मिसाल कायम करती है।

इस शोध पत्र में प्रेमचंद के सेवासदन उपन्यास का अध्ययन महिला उत्पीड़न की दृष्टि से किया गया है। इस उपन्यास को महिला उत्पीड़न से जोड़ते हुए महिलाओं के सामाजिक, मानसिक और आर्थिक पक्षों से संबंधित समस्याओं का वर्णन किया गया है।

बीज शब्द - उपन्यास, महिला उत्पीड़न, यौन शोषण, ब्यूरो रिपोर्ट, कार्य प्रणाली, अभागिनी, बेसुध, समाज, त्रासदी।

प्रस्तावना - हिंदी साहित्य में उपन्यास को समकालीन समाज का दर्पण माना गया है। प्रेमचंद्र ने अपने उपन्यासों के माध्यम से भारतीय समाज की जटिलताओं, विसंगतियों और यथार्थता को गहनता से चित्रित किया है। प्रेमचंद का उपन्यास सेवासदन (1918) में मुख्यतः नारी जीवन की समस्याओं , विवशताओं, और संघर्षों का मार्मिक चित्रण किया गया है।

भारतीय समाज में नारी को परंपरागत रूप से त्याग, सहनशीलता और आज्ञाकारिता का प्रारूप माना गया है, किंतु उसकी स्वतंत्रत पहचान एवं अधिकारों की उपेक्षा की गयी।

सेवासदन की नायिका सुमन इस सामाजिक व्यवस्था की शिकार है, जिसका जीवन त्रासदी और संघर्ष का प्रतीक है। सेवासदन उपन्यास में महिला उत्पीड़न के विविध रूपों के अध्ययन करने के साथ-साथ समाज का सजीव रूप प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया गया है।

प्रेमचंद जी का उपन्यास संसार- हिन्दी कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद का उपन्यास संसार विविधताओं से भरा हुआ है। उनके

उपन्यास विषय एवं कथ्य की दृष्टि अद्भुत हैं। उन्होंने तत्कालीन प्रचलित लगभग सभी विषयों पर उपन्यास लिखे हैं। उनकी प्रमुख औपन्यासिक कृतियां इस प्रकार हैं–

"देवस्थल रहस्य (1905),
प्रेमा अर्थात् दो सखियों (1907),
सेवासदन (1918) ,
वरदान (1921) , प्रेमाश्रम या प्रेमाश्रय (1922), रंगभूमि (1925), कायाकल्प (1926)
निर्मला (1927), प्रतिज्ञा (1929)
गबन (1931), कर्मभूमि (1932) , गोदान (1936), मंगलसूत्र (अपूर्ण)।" [1]

महिला उत्पीड़न से तात्पर्य

उत्पीड़न सामान्यतया एक व्यक्ति द्वारा किया गया ऐसा व्यवहार या कार्य होता जिसके माध्यम से दूसरे को तकलीफ या दुःख प्राप्त होता है। यह तकलीफ शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और सामाजिक आदि किसी भी प्रकार की हो सकती है; ऐसी पीड़ा या तकलीफ को उत्पीड़न कहते हैं। उत्पीड़न के अन्य पक्षों के संदर्भ में भेदभाव, हिंसा, शोषण, क्रूरता, कष्ट या पीड़ा पहुंचना, हमला करना, निर्दयता, कठोरता तथा अधिक दुःख प्रदान करना होता है।

यदि महिला उत्पीड़न के विस्तृत फलक की बात की जाए तो महिला उत्पीड़न से तात्पर्य महिलाओं के प्रति सभी प्रकार की हिंसा से है। महिलाओं के निकटस्थ रिश्तेदारों जैसे भाई- बहन, सास - ससुर या परिवार के किसी अन्य सदस्य द्वारा किया जाने वाला हिंसात्मक व्यवहार एवं अत्याचार जो नारी को शारीरिक व मानसिक रूप से आघात पहुंचता हो उसे ही महिला उत्पीड़न की संज्ञा दी जाती है। दूसरे शब्दों में बात करें तो महिला उत्पीड़न उन सभी कार्यों या आचरणों को कहते हैं जो किसी भी महिला को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक या आर्थिक रूप से चोट पहुंचाते है या पहुंचने की संभावना रहती है। जिससे महिलाओं की गरिमा को ठेस पहुंचाई जाए, उन्हें धमकाया जाए और उनकी स्वतंत्रता को छीन लिया जाए।

"आज से ही नहीं बल्कि, प्राचीन काल से ही स्त्री पुरुषों के अधीन मानी जाती थी। नारी पुरुष के शिकंजे में कसी हुई थी और समाज उन्हें घर के अंदर रहने वाली वस्तु ही मानता रहा है जिसका मैथिलीशरण गुप्त जी ने भी नारी शोषण का बड़ा सजीव चित्रण कुछ इस प्रकार से प्रस्तुत किया है -

''अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
अंचल में है दूध और आँखों में पानी।।"[2]

सदियों से स्त्री मानवीय सभ्यता का पालन करती रही है और पीड़ा का कटु हलाहल पीती रही है, फिर भी उसने कभी अपनी मेहनत का परिणाम नहीं मांगा।

"महिलाओं के साथ किये जाने वाले उत्पीड़न में नस्लीय उत्पीड़न, यौन उत्पीड़न, कार्यस्थलीय उत्पीड़न, ऑनलाइन उत्पीड़न, मौखिक उत्पीड़न, शारीरिक उत्पीड़न, लिंग आधारित उत्पीड़न, मनोवैज्ञानिक उत्पीड़न आदि शामिल हैं।"[3]

महिलाओं को उक्त आधारों में से किसी न किसी प्रकार से पीड़ा पहुंचाई जाती है। जिनसे उन्हें तकलीफ या कष्ट की प्राप्ति होती है। ये सभी पक्ष महिला उत्पीड़न के कारण होते हैं।

"भारत में महिला उत्पीड़न के खिलाफ अपराधों में निरंतर बढ़ोतरी हो रही है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो की ताजा रिपोर्टों के अनुसार दो वर्ष में महिलाओं के खिलाफ अपराधों की संख्या में 12% की बढ़ोत्तरी हुई है। इन अपराधों में अपहरण, दहेज हत्या, मानसिक एवं शारीरिक उत्पीड़न और यौन शोषण जैसे अपराध शामिल हैं।"[4]

रिपोर्ट को देखने से स्पष्ट होता है कि शिक्षा का स्तर लगातर बढ़ता जा रहा है। उस स्थित में इन सब अपराधों में कमी होने के स्थान पर निरंतर बढ़ोत्तरी हो हो रही है। इससे महिलाओं के मौलिक अधिकारों का हनन होता है।

सेवासदन में महिला उत्पीड़न का स्वरूप

महिला उत्पीड़न की दृष्टि से मुंशी प्रेमचंद का सेवासदन उपन्यास नारी जीवन की त्रासदी और शोषण को केंद्र में रखकर लिखा गया है। इसमें प्रेमचन्द्र ने यह दिखाया है कि, भारतीय समाज में स्त्रियां किस प्रकार से विभिन्न स्तरों पर उत्पीड़न का शिकार होती हैं। उन्हें मिलने वाला उत्पीड़न केवल शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक , सामाजिक और आर्थिक रूप में भी है।

जहाँ सुमन के चरित्र से यह पता चलता है कि, संदेहों एवं गलतफहमी के कारण किस प्रकार से रिश्तों में दरारें पड़ जाती हैं, वहीं दूरियाँ धीरे-धीरे सुमन को विभिन्न प्रकार के उत्पीड़न सहने के लिए मजबूर कर देती है।

मुंशी प्रेमचंद के सेवासदन उपन्यास में महिला उत्पीड़न की एक झलक द्रष्टव्य है–

"वह सोचती है यह सब नए-नए गहने बनवाती हैं नए - नए कपड़े लेती हैं और यहाँ रोटियों के लिए लाले पड़े हैं।क्या संसार में मैं ही सबसे बड़ी अभागिनी हूं, उसने अपने घर में यही सीखा था कि, मनुष्य को जीवन में सुख भोग करना चाहिए।"[5]

सुमन के पिता कृष्णचन्द्र पेशे से दरोगा थे। इस कारण मायके में किसी भी प्रकार की आर्थिक तंगी नहीं थी। किन्तु सुमन के ससुराल में उसे अच्छा खाना, अच्छे कपड़े नहीं मिलते बल्कि उसे अपने पति के द्वारा अर्जित किये जाने वाले धन से घर के खर्च में भी सोचना-विचारना पडता है; जोकि आर्थिक एवं मानसिक शोषण का परिचायक है।

सुमन के मायके में माता-पिता एवं छोटी बहन के अलावा पिता के पास कोई न कोई आता जाता रहता था। किन्तु ससुराल में पति के अलावा कोई भी नहीं था। जिसे पूरा दिन धन कमाने के लिए घर से बाहर रहना पड़ता था। सुमन को घर में अकेले ही रहना पड़ता है और सुमन अगर अपने पड़ोसियों के पास जाती भी तो उसके पति को यह पसंद नहीं था। जिसका परिचय उनके वार्तालाप से प्राप्त होता है–

"सुमन- सारे दिन अकेले इस कुप्पी में बैठे भी तो नहीं रहा जाता।

गजाधर- तो इसलिए अब वेश्याओं से मेल-जोल करोगी? तुम्हें अपनी इज्जत आबरू का भी कुछ विचार है?"[6]

"ऐसा कौन सा सुख भोग रही हूँ जिसके लिए यह आपत्ति सहूँ? यह मुझे कौन सोने का कौर खिला देते हैं? दिनभर छाती फाड़कर काम करती हूँ तब एक रोटी खाती हूँ उस पर यह घौंस लेकिन गजाघर के डंडे को देखते ही फिर छाती दहक गई। पशुबल ने मनुष्य को परास्त कर दिया।"[7]

सुमन बीमार अवस्था में भी पूरा दिन घर के काम में व्यस्त रहती है। तभी जाकर उसे भोजन की प्राप्ति होती है। सुमन खुद से कहती हैं कि इतना काम करने के बाद ही मुझे खाने के लिए रोटी मिलती है तो मैं किसी के द्वारा मार और गाली क्यूँ सहन करूँ? इस प्रकार से मुंशी प्रेमचंद जी ने यह दिखाया है कि, काम करते हुए भी औरतों को मारा-पीटा जाता है जो उनका शोषण है।

गजाधर को सुमन के देर रात से घर आने पर बिना कारण जाने ही उसके चरित्र में संदेह हो जाता है। जिसके कारण दोनों के रिश्तों में ग़लफहमी पैदा हो जाती है और बिना सोच- विचार किए ही सुमन को घर से निकल दिया जाता है। इस प्रकार के मानसिक शोषण का उदाहरण मुंशी प्रेमचंद जी ने इस प्रकार दिया है–

"सुमन ने कातर भाव से कहा - वकील साहब के घर छोड़कर मैं और कहीं नहीं गई, तुम्हें विश्वास न हो तो आप जाकर पूछ लो। वहीं चाहे कितनी देर हो। गाना हो रहा था, सुभद्रा देवी ने आने नहीं दिया।

गजाधर ने लांछनयुक्त शब्दों में कहा- अच्छा तो अब वकील साहब से मन मिला है यह कहो फिर भला, मजदूर की परवाह क्यों होने लगी है?"[8]

"सुमन रोने लगी और बोली - मेरी आँखें फूट जाएँ अगर मैंने उनकी तरफ ताका भी हो। मेरी जीभ गिर जाए, अगर मैंने उनसे एक बात भी की हो जरा मन बहलाने के लिए सुभद्रा के पास चली जाती हूँ अब मना करते हो तो न जाऊंगी।"[9]

सुमन रोते हुए अपने पाक साफ चरित्र की दुहाई देती है पर उसके पति गजाधर को उसकी बातों में बिल्कुल भी विश्वास

न रहता। अतः सुमन ने दुबारा से कभी भी न जाने के लिए भी कहा पर इतने में भी गजाधर को उसके ऊपर विश्वास नहीं हुआ। महिलाओं को अपने सद्चरित्रता का प्रमाण इस प्रकार से देना पड़ता है, यह महिला उत्पीड़न का उत्कृष्ट उदाहरण है।

प्रेमचंद ने सेवासदन की नायिका सुमन के अतिरिक्त अन्य पात्रिकाओं के उत्पीड़न को भी दिखाने का कार्य किया है।

सुमन की माँ गंगाजली अंत समय में अपने भाई के यहाँ रहती है। गंगाजली अपने पति के राज में हमेशा नौकरों-दासियों से घिरी रहती थी। किन्तु आज जब पति जेल में है तो गंगाजली के खाली हाथ होने के कारण उसके भाई के घर में भी उसका मान - सम्मान नहीं होता है। साथ ही साथ गंगाजली को विभिन्न प्रकार से यातनाएं झेलनी पड़ती हैं। जो महिला उत्पीड़न का सशक्त उदाहरण है –

"गंगाजली चिंता ,शोक और निराश में बीमार पड़ गई। उसे बुखार आने लगा। उमानाथ बहन के कमरे में गये। वह बेसुध पड़ी हुई थी, बिछावन चीथड़ा हो रहा था, साड़ी फटकार तार-तार थी।"[10]

"शांता का अब इस संसार में कोई न था , जब तक गंगाजली जीती थी शांता उसके अंचल में मुंह छिपाकर रोया करती थी। अब वह अवलंब भी न रहा, अंधे के हाथ से लकड़ी जाती रही। शांता जब तक अपनी कोठारी के कोने में मुँह छिपाकर रोती; लेकिन घर के कोने और माता के आंचल में बड़ा अंतर है। एक शीतल जल का सागर है, दूसरा मरुभूमि।"[11]

माँ की मृत्यु के बाद अभागिनी शांता अपने मामा के घर में रहते हुए भी अब अनाथ हो गई थी। उसका जीवन मरुभूमि की तरह हो गया था जहां उसे समझने और समझाने वाला कोई भी नहीं रहा। उसे हर समय अनेक प्रकार की यातनाओं को झेलना पड़ता था जिससे वह मानसिक रूप से त्रस्त रहती है।

महिलाओं को किस प्रकार से समस्याओं को झेलना पड़ता है और उन समस्याओं को उत्पन्न करने वाले समाज के किस स्तर के लोग हैं यह तथ्य पद्मसिंह के वक्तव्य से स्पष्ट होता है–

"पद्मसिंह - सौकडों स्त्रियाँ जो हर रोज बाजार में झरोखो में बैठी दिखाई देती हैं जिन्होंने अपनी लज्जा और सतीत्व को भ्रष्ट कर दिया उनके जीवन का सर्वनाश करने वाले हमीं लोग हैं।"[12]

एक ओर जहाँ पद्मसिंह ने महिलाओं की लज्जा और उनके सतीत्व को भ्रष्ट करने वाले हमीं लोग हैं ऐसे स्वीकार करता है, वहीं दूसरी तरफ महिलाओं के एक दूसरे स्वरूप अर्थात् वेश्याओं के मौलिक अधिकारों का हनन करते हुए उन्हें समाज की मुख्य धारा से अलग करने का पूर्णतः प्रयास करता है। जो उन महिलाओं का मानसिक एवं सामाजिक शोषण है। इसका मुंशी प्रेमचंद ने वर्णन इस प्रकार किया है-

"पद्मसिंह - वेश्याओं को शहर के मुख्य स्थान से हटाकर बस्ती से दूर रखा जाए एवं उन्हें शहर के मुख्य सैर करने वाले स्थानों और पार्कों में आने का निषेध किया जाय।"[13]

"अनिरुद्धसिंह -हमें वेश्याओं को पतित समझने का कोई अधिकार नहीं है यह हमारी परम घृष्टता है। हम रात - दिन जो रिश्वत लेते हैं, सूद खाते हैं, दीनों का रक्त चूसते हैं, असहायों का गला काटते हैं कदापि इस योग्य नहीं हैं कि, समाज के किसी अंग को नीच या तुच्छ समझें। सबसे नीच हम हैं, सबसे पापी, दुराचारी, अन्यायी हम हैं जो अपने को शिक्षित सभ्य, उदार, सच्चा समझते हैं। हमारे शिक्षित भाइयों की ही बदौलत दालमंडी आबाद है।"[14]

अनिरुद्धसिंह के द्वारा यह बताया गया कि, हमें समाज के सभी व्यक्तियों को समान समझना चाहिए न कि किसी भी व्यक्ति को नीच समझकर उसका शोषण करना चाहिए क्योंकि यह शोषण शिक्षित लोगों द्वारा ही अधिक किया जाता है।

निष्कर्ष

प्रेमचंद का सेवासदन उपन्यास केवल एक प्रकार का सामाजिक उपन्यास ही नहीं है बल्कि, भारतीय समाज में नारियों की स्थिति का यथार्थपरक दस्तावेज है। इस उपन्यास में नारी जीवन की त्रासदी, उसकी विवशता और सामाजिक ढाँचों द्वारा किए गए उत्पीड़न का गहरा चित्रण मिलता है। सुमन जैसी नायिका का संघर्ष यह सिद्ध करता है कि, स्त्री मात्र घर - की उपभोग की वस्तु नहीं है।

सेवासदन उपन्यास स्पष्ट करता है कि महिला उत्पीड़न आर्थिक, सामाजिक और नैतिक संरचनाओं से जुड़ा हुआ है। सेवासदन नारी उत्पीड़न के खिलाफ एक सशक्त स्वर है। प्रेमचंद ने इसके माध्यम से यह संदेश देने का कार्य किया है कि, समाज की सच्ची प्रगति तभी संभव है जब स्त्री को गरिमा, समानता और स्वतंत्रता का वास्तविक अधिकार दिया जाए।

संदर्भ

1. प्रभाकर, डॉ प्रभात कुमार प्रभाकररू यूजीसी नेट वस्तुनिष्ठ हिंदी उपन्यास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2021, पृ.-29.
2. https:// www. journalofpoliticalscience .com
3. https:// www.zevohealth.com
4. https://www.jetir.org
5. मुंशी प्रेमचंद, सेवासदन, धीरज पॉकेट बुक्स, मेरठ, पृ.-20
6. वही, पृ.-23
7. वही, पृ.34
8. वही, पृ.-35
9. वही, पृ.-36
10. वही, पृ.-103
11. वही, पृ.-103
12. वही, पृ.-112
13. वही, पृ.-183
14. वही, पृ.- 183—184

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

राष्ट्रीय शिक्षा नीति : 2020 के संदर्भ में विद्यालय स्तर वर्तमान स्थिति

डॉ. राखी सक्सेना
सह प्राध्यापक
वाणिज्य विभाग, केरियर (स्वसाशी) महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

जगदीश कुमार धुर्वे
पीएच.डी शोधार्थी (वाणिज्य)

शोध सार : प्राचीन काल से प्रत्येक राष्ट्र अपने नागरिकों को शिक्षित व दीक्षित करके स्वंय को ज्ञानवान और विवेक सम्मत समाज बनाने हेतु सदैव प्रयत्नशील रहा है। वस्तुतः सामाजिक और राष्ट्रीय विकास के संदर्भ में शिक्षा की भूमिका और महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता है। भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा का स्थान सदैव सर्वोपरि रहा है। भारतीय ज्ञान परम्परा के आधार पर आधुनिक भारत में इतिहास की गौरवशाली परम्परा को पुनर्जीवित करने हेतु 34 वर्षो की दीर्घावधि के बाद 29 जुलाई, 2020 को राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 का पदार्पण हुआ। यह नीति सतत् विकास लक्ष्य (एसडीजी –4) के विभिन्न लक्ष्यों को पूर्ण करने में प्रयत्नशील है। जिससे विद्यार्थियो को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान की जा सके। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में पुरातन एवं नूतन मूल्यों को समन्वित कर विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास की अवधारणा प्रस्तुत की गई है। जिसमें परम्परागत समृद्ध विरासत के साथ-साथ विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला, संगीत, अवधारणात्मक सोच, तार्किक चिन्तन के साथ-साथ नवाचारयुक्त आउट आफ द बॉक्स विचारों को प्रोत्साहित करने पर बल दिया गया है। जिससे प्रत्येक स्तर के विद्यार्थियों में अन्तर्निहित क्षमता का विकास किया जा सके। क्योंकि पूर्व की शिक्षा नीतियों 1968 में जहाँ शिक्षा तक पहुँच, 1986 में प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण की बात की गई थी वहीं राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पर विशेष जोर देकर विद्यार्थियों को अधिगम संवर्धन हेतु प्रोत्साहित करती है। प्रस्तुत लेख में हम विद्यालयी स्तर पर अधिगम संवर्धन का अर्थ तथा आज के बदलते वैश्विक परिवेश में सूचना और संचार तकनीक (ICT) विद्यालयी बच्चों के लिए सीखने-सिखाने में किस प्रकार सहायक हैं इस विषय पर चर्चा करेंगे। साथ ही हम विभिन्न प्रकार के संचार और तकनीकी उपकरणों की चर्चा करेंगे जो वर्तमान परिप्रेक्ष्य के अनुसार विद्यालयों में अधिगम संवर्धन के लिए प्रयोग किये जा रहे हैं, इन उपकरणों का लाभ तथा इनके प्रयोग में आने वाली चुनौतियों के साथ-साथ सुझाव पर भी प्रस्तुत लेख में चर्चा करेंगे।

बीज शब्द : राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, अधिगम संवर्धन, आई.सी.टी., विद्यालयी शिक्षा, डिजिटल लर्निंग।

प्रस्तावना : राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के भाग–1 विद्यालयी शिक्षा के अन्तर्गत वर्तमान व्यवस्था 10Ƽ2 के स्थान पर 5+3+3+4 के शैक्षिक ढाँचे को अपनाते हुए विद्यालयी शिक्षा में नवोन्मेषी परिवर्तन लाया गया है। विद्यार्थियों में अधिगम संवर्धन के लिए भारत सरकार की महत्वाकांक्षी योजना डिजिटल-इंडिया का विजन भी दृष्टिगोचर होता है। द डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर फॉर नॉलेज शेयरिंग (दीक्षा), ई-कंटेंट, भाषाओं से जुड़े कार्यक्रमों के संचालन के लिए सॉफ्टवेयर सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समूहों की मदद के लिए एनसीईआरटी में सीआईईटी के द्वारा और एनआईओएस के माध्यम से शैक्षिक

और तकनीकी से जुड़े कार्यक्रम भी शिक्षा में शैक्षिक उन्नयन के लिए प्रसारित किए जा रहे हैं साथ ही शिक्षा को सरल, सुगम और समावेशी बनाने के लिए ओपन–डिस्टेंस लर्निंग कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाना जिससे दूर-दराज और पिछड़े क्षेत्रों में स्थित विद्यार्थियों तक ज्ञान का प्रकाश सुगमता और सरलता पूर्वक पहुँच सके। इस ज्ञान के प्रकाश के विस्तार में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी मील का पत्थर साबित हो रही है। विद्यार्थियों का डाटाबेस बनाकर उनकी स्तर मॉनिटरिंग करना जिससे उनके अधिगम स्तर को जाना जा सके (एनईपी - 2020- 3.7) जो विद्यार्थियों के अधिगम संवर्धन में काफी सहायक सिद्ध हुई है। वैश्वीकरण के इस दौर में जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जो सूचना और संचार तकनीकी के प्रभाव से अछूता रहा हो ऐसे में शिक्षा के क्षेत्र में भी अधिगम संवर्धन हेतु सूचना और संचार तकनीकी (आईसीटी) की भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में विद्यालयी शिक्षा के अंतर्गत वर्तमान व्यवस्था 10़2 के स्थान पर 5़3़3़4 के शैक्षिक ढाँचे को अपनाते हुए विद्यालयी शिक्षा में नवोन्मेषी परिवर्तन लाया गया है जिससे बच्चों की उम्र 3 वर्ष से 18 वर्ष तक होगी। विद्यालयी शिक्षा, शिक्षा का वह स्तर होता है जहाँ प्रत्येक स्तर के विद्यार्थियों को मार्गदर्शन, सहयोग और निर्देशन की जरूरत होती है।

अधिगम का अर्थ और परिभाषा : अधिगम या सीखना शिक्षा के सभी स्वरूपों में केंद्र बिंदु माना जाता है। शिक्षा का स्वरूप चाहे जैसा हो (औपचारिक, अनौपचारिक और निरौपचारिक) शिक्षा के हर स्वरूप में अधिगम की भूमिका केंद्रीय रही है। अधिगम को मानवीय संदर्भ में जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया के रूप में शामिल किया गया है। शिशु जन्म से ही नही बल्कि गर्भ से ही सीखना प्रारम्भ कर देता है ये बाते भारतीय ज्ञान परम्परा में पौराणिक ग्रंथो में मिलती है। इस बात को विभिन्न वैज्ञानिक अनुसंधानों ने भी सत्यापित किया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अधिगम जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। वुडवर्थ के अनुसार- "सीखना विकास की प्रक्रिया है।" जे.पी. गिलफोर्ड ने अधिगम पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि- "व्यवहार के कारण, व्यवहार में परिवर्तन ही सीखना है। इस प्रकार सीखना एक सतत् और व्यापक प्रक्रिया है।"

अधिगम संवर्धन : अधिगम संवर्धन से तात्पर्य विद्यार्थी के व्यावहारिक ज्ञान मे बढ़ोत्तरी से है। व्यवहार में स्थायी प्रगति को ही अधिगम संवर्धन कहा जाता है। अधिगम संवर्धन के लिए निम्न बातों का होना आवश्यक है–

- अधिगम संवर्धन के लिए सहयोगपूर्ण शैक्षिक परिवेश होना चाहिए।
- अधिगम संवर्धन के लिए विद्यार्थियों में समस्या समाधान क्षमता का विकास करना चाहिए।
- अधिगम में सृजनात्मकता तथा नवाचार होना चाहिए।
- अधिगम संवर्धन के लिए सूचना संचार तकनीकी और सम्प्रेषण के माध्यम महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- शिक्षण के नवीन उपागम (ग्रुप लर्निंग, सहयोगात्मक अधिगम, लर्निंग आउट कम बेस्ड टीचिंग, गतिविधि आधारित शिक्षण आदि) महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- अच्छी आदतों के विकास से भी अधिगम बढ़ता है।
- विद्यालय ज्ञान को समाज के ज्ञान से जोड़ने पर अधिगम में बढ़ोतरी होती है (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-2005)।

अधिगम संवर्धन और आई.सी.टी. रू आज के बदलते वैश्विक परिवेश में सूचना और संचार तकनीकी के प्रयोग से विद्यार्थियों के सीखने और सिखाने की प्रक्रिया में आईसीटी काफी सहायक सिद्ध हुई है। कोविड -19 के बाद हमारे देश में आईसीटी का प्रयोग तेजी से बढ़ा है। आज आईसीटी न केवल एक टूल बल्कि सीखने, सिखाने का सशक्त माध्यम बनकर उभरा है। सीखने और सिखाने की प्रक्रिया में आईसीटी के प्रयोग इस प्रकार है–

ब्लेंडेड लर्निंग (मिश्रित प्रणाली शिक्षा) : शिक्षा जगत में ब्लेंडेड लर्निंग के प्रचलन ने विद्यार्थी की शिक्षा तक पहुँच को आसान बना दिया है। सीखना शब्द अब कक्षा की चार दीवारी से काफी आगे निकल चुका है। डिजटलीकरण के इस युग में कई तरह के बदलाव आए हैं, जो पहले कभी नहीं देखे गये थे। आज सीखने की प्रक्रिया में प्रौद्योगिकी की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। ब्लेंडेड लर्निंग सीखने की एक ऐसी विधि है जो पारम्परिक शिक्षण में काफी बदलाव लाई है। छात्रों में सीखने के साथ-साथ उत्कृष्टतम कौशल विकास में काफी सहायक सिद्ध हुई है। मिश्रित प्रणाली शिक्षा या ब्लेंडेड लर्निंग एक

औपचारिक शिक्षा कार्यक्रम है, जिसमें विद्यार्थी पाठ्यक्रम का एक भाग कक्षा में पूरा करता है और दूसरा भाग डिजिटल एवं ऑनलाइन संसाधनों का प्रयोग करके सिद्ध करता है। ब्लेंडेड लर्निंग में समय, जगह, विधि तथा गति का नियंत्रण विद्यार्थी के हाथ में है। डिजिटल लर्निंग से छात्रों को स्वतंत्रता और आगे बढ़ने का अवसर भी मिलता है जिससे विद्यार्थी स्वगति से अपने पाठ्यवस्तु उद्देश्य की ओर आगे बढ़ते हैं। ब्लेंडेड लर्निंग विद्यार्थियों के अधिगम में काफी सहायक है जो इस प्रकार है-

1. समय की बचत और प्रभावी उपयोग में सहायक
2. सीखने और सिखाने में स्वतंत्रता
3. रचनात्मक कार्यों में सहायक
4. नवाचार और खोजी प्रवृति को बढ़ाने में सहायक
5. सीखने और सिखाने की सामग्री तक आसानी से पहुँच
6. सम्प्रेषण क्षमता के विकास में सहायक
7. छात्रों के अधिगम संवर्धन में सहायक
8. अधिकतम छात्र सहभागिता को बढ़ावा देता है
9. बेहतर छात्र प्रदर्शन और मूल्यांकन में सहायक
10. छात्रों की प्रेरणा और प्रदर्शन में सुधार करता है।

फ्लिप्ड क्लासरूम : फ्लिप्ड क्लासरूम की अवधारणा 2000 में आई। इस अवधारणा के अनुसार कक्षा-कक्ष मे व्याख्यान विद्यार्थियों के सीखने-सिखाने में उतना सहायक नहीं हैं, जितना कि उनको ब्लेंडेड लर्निंग के माध्यम से गृह कार्य और ऑनलाइन सपोर्ट करने से हैं। फ्लिप्ड क्लासरूम अनुदेशात्मक रणनीति और ब्लेंडेड लर्निंग का एक प्रकार है। फ्लिप्ड क्लास रूम में विद्यार्थी घर पर भी कक्षा-कक्ष की गतिविधियों में प्रतिभाग कर सकते हैं। ऑनलाइन क्लास घर पर ले सकते हैं। शिक्षक द्वारा भेजे गये ई.कन्टेन्ट को पढ़ सकते हैं। भेजे गये ई.कान्टेन्ट पर असाइनमेण्ट बना सकते हैं। यदि किसी विषयवस्तु पर कॉन्सेप्ट क्लियर न हो तो कक्षा शिक्षक से समस्या पर समाधान के लिए कर सकते हैं। इसमें शिक्षक प्रत्येक विद्यार्थी पर आसानी से ध्यान दे पाता है। साथ ही साथ छात्र समूह में भी सीख सकतें हैं और अपने विचारों को साझा कर सकते हैं। इस प्रकार फ्लिप्ड क्लास रूम प्राचीन परम्परागत शिक्षण शैली को उन्नतशील बनाते हुए नवीन नवाचार युक्त शैली को प्रोत्साहित करती है, जिससे विद्यार्थियों में रचनात्मकता का विकास होता है।

स्वयं (SWAYAM) प्लेटफार्म : स्वयं भारत सरकार की एक ऑनलाइन शैक्षिक प्रौद्योगिकी पहल है। यह एक ऑनलाइन शिक्षा कार्यक्रम है। यह एक मैसिव ओपन ऑनलाइन कोर्स (MOOCs) प्लेटफॉर्म है। यह प्लेटफार्म शिक्षा नीति के तीन प्रमुख सिद्धान्तों - पहुँच, समता, गुणवत्ता को प्राप्त करने के उद्देश्य से लॉन्च की गई है। यह प्लेटफार्म विद्यालयी शिक्षा में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के लिए उपलब्ध है। इस प्लेटफार्म पर वीडियो लेक्चर, विशेष रूप से तैयार की गई पठन सामग्री, स्व-मूल्यांकन परीक्षण, ऑनलाइन चर्चा आदि उपलब्ध है, जहाँ विद्यार्थी स्वतंत्रता पूर्वक पढ़-लिख और सीख सकते हैं एवं अपनी शंका का समाधान कर सकते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में विद्यार्थियों के अधिगम संवर्धन के लिए ऑन लाइन अधिगम, ओडी.एल. पहल को प्रोत्साहित भी किया गया है। (राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020)

दीक्षा पोर्टल : राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में विद्यार्थियों के अधिगम संवर्धन और गुणवत्तापूर्व शिक्षा प्रदान करने के लिए ऑनलाइन अधिगम के लिए दीक्षा प्लेटफार्म का जिक्र किया गया है। दीक्षा यानी 'डिजिटल इन्फ्रास्ट्रक्चर फॉर नालेज शेयरिंग' एक मोबाइल फोन या लैपटॉप में इंस्टॉल करने वाला ऑनलाइन ऐप है। जिसमें विद्यालयी स्तर के सभी विद्यार्थियों के लिए अधिगम सामग्री उपलब्ध है। चाहे वे केन्द्रीय बोर्ड के विद्यार्थी हो या किसी राज्य बोर्ड के विद्यार्थी ऐप पर विभिन्न भाषाओं में भी सामग्री उपलब्ध है जैसे- अंग्रेज़ी, बंगाली, तमिल, तेलगू, ओड़िया, पंजाबी, हिंदी आदि। इस प्रकार दीक्षा ऐप के माध्यम से एक छात्र न केवल पढ़ाई कर सकता है, बल्कि कमेंट बॉक्स में जाकर अपने शंका का समाधान भी कर सकता

है। यह ऐप न केवल शिक्षकों के लिए बल्कि छात्रों और अभिभावकों के लिए भी उपलब्ध है। यह ऐप आकर्षित शिक्षण सामग्री से भरा हुआ है, जो निर्धारित स्कूल पाठ्यक्रम की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

दीक्षा ऐप के निम्नलिखित लाभ हैं :

- इस ऐप का प्रयोग पूरी तरह मुफ्त है और यह गूगल प्ले स्टोर पर उपलब्ध है। इसके माध्यम से विद्यार्थी घर बैठे अपने मोबाइल या कंप्यूटर से ही मुफ्त में पढ़ाई कर सकते हैं।
- इस ऐप के माध्यम से देश के सभी शैक्षणिक परिषदों की शिक्षा सामग्री प्राप्त की जा सकती है।
- यह ऐप विद्यार्थियों के अलावा शिक्षक, शिक्षाविद, विशेषज्ञ, संगठन, संस्थाएं इत्यादि सभी के लिए लाभदायक है।
- इस ऐप में कई प्रकार की शिक्षा सामग्री दी गई है, जो कई प्रकार के प्रारूपों में उपलब्ध है जैसे पीडीएफ(चकी), वीडियो, ऑडियो इत्यादि।
- विद्यार्थी शिक्षा सामग्री को अपने फोन में सेव कर सकते हैं, और जब चाहे तब उसे पढ़ सकते हैं क्योंकि यह एप ऑनलाइन भी काम करता है।
- इस ऐप में प्रथम कक्षा से लेकर दसवीं कक्षा तक की अध्ययन सामग्री उपलब्ध है।

रीड अलोंग ऐप : यह एक मजेदार रीडिंग ट्यूटर अथवा रीड एलांग ऑनलाइन रीडिंग ऐप है, जिसे 5 वर्ष या उससे अधिक आयु के बच्चों के लिए विकसित किया गया है। बच्चे कंप्यूटर या एंड्रॉयड डिवाइस पर पढ़ने के कौशल को विकसित करने के लिए इस ऐप का प्रयोग करते हैं, जो बच्चों को खेल के माध्यम से पढ़ाने और सिखाने में मदद करता है। इसमें दीया नाम की एक सहायक कृत्रिम बुद्धिमत्ता है जो पढ़ाने का काम करती है। यह ऐप खास कर बच्चों के पढ़ने के कौशल में संवर्धन के लिए बनाया गया है। इस ऐप में 3 फोरम उपलब्ध हैं-

- लाइब्रेरी
- इनाम
- गतिविधि

इस प्रकार रीड एलांग ऐप के माध्यम से न केवल विद्यार्थियों के रीडिंग स्किल का विकास होता है बल्कि इनाम / पुरुस्कार के माध्यम से उनको प्रोत्साहित भी किया जाता है। यह ऐप राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 के अंतर्गत निपुण भारत- लक्ष्य को प्राप्त करने में काफी सहायक है।

अधिगम संवर्धन हेतु शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में प्रयुक्त अन्य आई.सी.टी. टूल्स उपकरण : उपर्युक्त ऐप के अलावा कक्षा-कक्ष शिक्षण में टीचिंग- लर्निंग ऐप और अधिगम सामग्री या शिक्षण सहायक सामग्री के रूप में आई.सी. टी. के अन्य उपकरणों (ऐप) का प्रयोग किया जाता है जो अधिगम के उन्नयन में काफी सहायक है।

1. व्हाट्सएप ग्रुप
2. फेसबुक लाइव क्लास
3. गूगल क्लास रूम।
4. यूट्यूब
5. ऑनलाइन क्विज़।
6. विकिपीडिया आदि।

अधिगम संवर्धन हेतु कक्षा-कक्ष को रोचक बनाते हेतु प्रयुक्त आई.सी.टी. सहायक सामग्री : वर्तमान समय में वैश्वीकरण के इस दौर में परम्परागत 'चाक और टाक' क्लास रूम से काफी आगे बढ़कर स्मार्ट क्लासरूम की अवधारणा और डिजिटल क्लासरूम के प्रचलन से शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। क्लास रूम में प्रोजेक्टर का प्रयोग, ऑडियो-वीडियो का प्रदर्शन, एजुसेट के माध्यम से एनसीईआरटी और इग्नू द्वारा तैयार किये गये ऑनलाइन लेक्चर और प्रिंट रिच मैटेरियल का उपयोग कक्षा-कक्ष में सीखने की गति को काफी बढ़ाता है, जिससे सीखना काफी सरल, सुगम और

व्यावहारिक हो गया है।

अधिगम संवर्धन में आई.सी.टी. के प्रयोग में बाधाएँ और चुनौतियाँ : निसंदेह आई.सी.टी. के प्रयोग से जहाँ शिक्षण अधिगम प्रक्रिया बहुत ही आसान, सरल, बोधगम्य और सहज हुई है, लेकिन फिर भी बहुत सी ख़ामियों के चलते शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में आईसीटी से सम्बन्धित कुछ समस्याएँ और चुनौतियाँ भी हैं जो इस प्रकार हैं–

1. स्पैम और आकर्षण विज्ञापन : उपभोक्ता संस्कृति के बढ़ते हुए प्रभाव के चलते, ऑनलाइन अधिगम के दौरान उपभोक्ता बाज़ार से सम्बन्धित अनेक स्पैम / विज्ञापन बच्चों को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया से विमुख कर देते हैं, क्योंकि ये विज्ञापन बच्चों की रुचि के अनुरूप तैयार किए जाते हैं, जिसके चलते विद्यार्थी तेज़ी से इन विज्ञापनों की तरफ़ आकर्षित होता है और धीरे-धीरे उसमें ऑनलाइन / डिजिटल गेम की लत लग जाती है। और एक समय ऐसा आता है, जब बच्चा भटक कर, सीखने के मुख्य लक्ष्य से विमुख हो जाता है और उसका अधिगम स्तर बढ़ने के बजाय घटने लगता है।

2. बच्चों का सोशल मीडिया या डिजिटल एब्यूज में लिप्त हो जाना : यद्यपि फिलिप्ड क्लासरूम या ब्लेंडेड लर्निंग से बच्चों के सीखने की गति में काफी सुधार हुआ है, लेकिन फिर भी कभी-कभी विद्यार्थी सोशल मीडिया या डिजिटल एब्यूज का शिकार हो जाता है। जिसको नेटिकेट्स (इन्टरनेट एडिक्टेट) भी कहा जाता है। जिसके चलते विद्यार्थी की लर्निंग काफी प्रभावित होती है और वह अपने लक्ष्य से भटक जाता है। सोशल मीडिया पर बालक कभी-कभी साइबर बुलिंग और साइबर अपराध में लिप्त हो जाता है अथवा शिकार हो जाता है जैसे- हैकिंक, फिशिंग, ऑनलाइन एब्यूज आदि का शिकार हो जाना या लिप्त हो जाना, जिससे बच्चा अपने लक्ष्य से भटक जाता है। आकड़ों के अनुसार वर्ष 2018-19 में फेसबुक, ट्विटर समेत कई सोशल साइटों पर 3245 सामग्रियों के मिलने की शिकायत की गई थी।(स्रोत-द हिंदू, इंडियन एक्सप्रेस : एडिटोरियल) इस प्रकार अभिभावक द्वारा बच्चों पर ध्यान न देने से या शिक्षकों द्वारा सही दिशा-निर्देशन और पर्याप्त देखभाल के अभाव में कभी-कभार सोशल मीडिया अधिगम के लिए हानिकारक हो जाती है इसलिए बच्चों की सही परवरिश की ज़रूरत है जिससे वह सोशल मीडिया का सही प्रयोग कर सकें।

3. डिजिटल डिवाइडेसन : आक्सफैम इण्डिया रिपोर्ट-2022 (इण्डिया इनइक्वैलिटी रिपोर्ट-2020) के अनुसार भारत की 70% जनसंख्या निर्धन है और उनके पास डिजिटल डिवाइस एवं तकनीकी का पूर्णतः अभाव है। रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि केवल 38% लोग ही डिजिटल रूप से साक्षर हैं। और यह डिजिटल डिवाइडेसन शहरी और ग्रामीण विद्यार्थियों के प्रति स्पष्ट दिखाई देती है। टेक्नोलॉजी के माध्यम से लर्निंग के विषय में ग्रामीण विद्यार्थी अभी भी काफ़ी पीछे हैं क्योंकि उनके पास डिवाइस के अभाव के साथ-साथ बिजली, इंटरनेट कनेक्टिविटी जैसी समस्यायें विद्यमान हैं।

डिजिटल डिवाइडेसन के कारण

दूर दराज ग्रामीण क्षेत्रो में डिजिटल कनेक्टिविटी का अभाव : ग्रामीण क्षेत्र जो काफी दूर दराज हैं, वहाँ इन्टरनेट कनेक्टिविटी का अभाव है। (आक्सफेम इण्डिया रिपोर्ट:2022) जिसके चलते अधिकांश विद्यार्थी सूचना और संचार तकनीकी के प्रयोग से वंचित रह जाते हैं। (माइकेल वेस्ट-2015) अभिषेक सिंह (2013) ने अपने लेख 'डिजिटल डिवाइड इन- रूरल इण्डियारू अ केस। स्टडी आफ उ.प्र. में स्पष्ट किया है कि इन्टरनेट कनेक्टिविटी के मामले में ग्रामीण क्षेत्रों में कनेक्टिविटी का आभाव दिखाई देता है।

"इन्टरनेट एण्ड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इण्डिया" (IAMAI) की स्टेट ऑफ रुरल कनेक्टिविटी 2020 में यह प्रकाशित किया है कि भारतीय राज्यों के ग्रामीण क्षेत्र इन्टरनेट। कनेक्टिविटी की समस्या और चुनौतियों से जूझ रहे हैं। इस बात को टेलीकॉम रेगुलेटरी। ऑफ इण्डिया (ट्राई) ने स्वीकार किया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी बेहतर इन्टरनेट कनेक्टिविटी हेतु बुनियादी सुविधाओं का अभाव है।

अभिभावकों में डिजिटल और तकनीकी ज्ञान का अभाव : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद' (एनसीईआरटी) - नई दिल्ली एवं 'राष्ट्रीय ग्रामीण विकास और पंचायतीराज संस्थान'- हैदराबाद जैसे संस्थानों ने अपनी रिपोर्ट

में स्पष्ट किया है कि ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों में डिजिटल ज्ञान की कमी के कारण उनके बच्चों की शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि अभिभावकों में डिजिटल साक्षरता के अभाव के चलते शिक्षण अधिगम में आई. सी.टी. से सम्बन्धित कार्यों में अपने बच्चों का सहयोग नहीं कर पाते हैं और अपने बच्चों को आई.सी.टी. से संबंधित शिक्षा भी नहीं दे पाते हैं जिससे डिजिटल गैप देखने को मिलता है।

सुझाव : उपर्युक्त बिंदुओं पर विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि डिजिटल लर्निंग या शिक्षा में आई.सी.टी. का प्रयोग विद्यालयी स्तर के विद्यार्थियों के अधिगम संवर्धन में काफी सहायक है। निसंदेह आई.सी.टी. के प्रयोग से शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया काफी सरल और सुगम हुई है। शिक्षा में लर्निंग ऐप के प्रयोग से शिक्षा तक विद्यार्थियों की पहुँच काफ़ी सरल और सुगम हुई है। (राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020) साथ ही साथ फ्लिप्ड क्लास रूम, ब्लेंडेड लर्निंग, स्वयं प्लेटफार्म, दीक्षा ऐप आदि के प्रयोग से सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में काफी सुधार आया है। आई.सी.टी. के जो नकारात्मक प्रभाव हैं उनको दूर करने के लिए शिक्षकों को चाहिए कि वे विद्यार्थियों को सही दिशा में मार्गदर्शन करें। शिक्षण में आईसीटी का प्रयोग सही निर्देशन में ही होना चाहिए। साथ ही साथ शिक्षक और विद्यालय की यह नैतिक जिम्मेदारी होनी चाहिए कि वे विद्यालय तथा समाज में आई.सी.टी. की उपयोगिता और महत्त्व के प्रति जन-जागरुकता का विकास करें। जिससे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में आईसीटी का प्रयोग अधिगम संवर्धन और सृजनात्मक विकास की दिशा में सही हो सके। अभिभावकों को भी आई.सी.टी. के सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलू को जानना और समझना चाहिए जिससे अपने बच्चों को गृह कार्य और अधिगम हेतु प्रोत्साहित कर सकें। इस प्रकार जब विद्यार्थियों और अभिभावकों को आई.सी.टी. के उपयोग की समुचित जानकारी रहेगी, तो वे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया हेतु आई.सी.टी. का बेहतर प्रयोग कर सकेंगे, जो अधिगम संवर्धन और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए काफी सहायक होगी।

निष्कर्ष : इस प्रकार कहा जा सकता है कि परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है किसी भी नवीन विधि को आत्मसात करने में या अपनाने में कुछ समय लगता है या कठिनाई अवश्य होती है। जिस प्रकार प्रारंभिक दिनों में समाज के सभी लोगों ने रेल या कम्प्यूटर को स्वीकार नहीं किया था बल्कि इन आविष्कारों और तकनीकों का विरोध किया था, लेकिन आज रेल और कम्प्यूटर मानवीय जीवन के परिवहन और सूचना संचार प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहें हैं। आज जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, जो सूचना तथा संचार तकनीकी से अछूता हो। ऐसे में स्कूल शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया और अधिगम संवर्धन हेतु आई.सी.टी. की भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में सूचना संचार प्रौद्योगिकी अधिगम संवर्धन में काफ़ी सहायक है जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 और सतत विकास लक्ष्य-4 के विजन को पूरा करने में सहायक है।

संदर्भ

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (https://www.educaton.gov.in)
2. सतत् विकास लक्ष्य (https://sdgs.un.org/goals)
3. हैरिस,एस. इन्नोवेटिव पेडागाजिकल पैक्टिस यूजिंग आई.सी.टी. इन स्कूल इंग्लैण्ड जर्नल ऑफ कंप्यूटर असिस्टेंट लर्निंग, 2002, पेज 449-459
4. सिंह, ए.के. शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पब्लिकेशन पटना, 2020, पृष्ठ सं. 372, 373
5. पाठक, आर.पी. एण्ड चौधरी जे. एजुकेशनल टेक्नोलाजी, नई दिल्ली पियर्सन, 2012
6. इन्टरनेट एण्ड मोबाइल एसो ऑफ इंडिया (https://www.iamai.in)
7. पलगर्म, डब्लू जे एण्ड लॉएन. आई.सी.टी. इन एजुकेशन, एराउण्ड द वर्ल्ड ट्रेंड प्राब्लम एण्ड प्रोस्पेक्ट यूनेस्को इन्टरनेशनल इन्स्टीटयूट फॉर एजुकेशनल प्लानिंग, 2003

8. आक्सफैम इण्ण्टरनेशनल (इण्डिया इन इक्वैलिटी रिपोर्ट 2020)
9. (https://www.oxfam.org>India-extreme-inwquality-num)
10. कुमार एस.एण्ड.ए.आर. रोल ऑफ आई.सी.टी. इन्डैन्सिंग क्ध्वालिटी ऑफ एजुकेशन वैलूम 3 इश्यू सितम्बर, 2018 इन्टरनेशनल जर्नल आफ इन्नोवेटिव साइन्स एण्ड रिसर्च टेक्नोलॉजी, 2018
11. वेबसाइट : भारतीय दूर संचार विनियामक प्राधिकरण (https://www.trai.gov.in)
12. एन.सी.ई.आर.टी. नेशनल फोकस गुप ऑफ एजुकेशनल टेक्ध्नोलॉजी, पोजीशन पेपर (http://ncert.nic/pdf.in/pdf-focusgroup/Educationaltechnology.pdf, 2006)
13. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 (https://Ncert.nic.in>nc-framework nf2005 Hindi)
14. https://epathsala.nic.in/
15. https://www.mmc.org/
16. https://swayam.gov.in/
17. https://pmevidya.education.gov.in
18. https://ciet.nic.in

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

नागार्जुन के उपन्यास में स्त्री-स्वातंत्र्य के विविध आयाम

सलोनी प्रिया
शोध छात्रा
महात्मा गांधी काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश : महिला सशक्तिकरण की कई अवधारणाएँ आज हमारे समक्ष प्रस्तुत हैं किंतु उनमें आज भी सुधार की संभावनाएं शेष हैं। यह आज का विषय नहीं बल्कि कई वर्ष पूर्व से उत्पन्न समस्या है। अनेक रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री-स्वातंत्र्य के स्वरूप को दर्शाया है। उन्हीं रचनाकारों में बाबा नागार्जुन भी परिगणित हैं। इस शोध आलेख में महिलाओं के उन्हीं साहसिक कदम को दर्शाया गया है, जो सशक्तिकरण के उदाहरण रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत है। नागार्जुन के उपन्यास के स्त्री पात्र में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना का विकास होना और अपने जीवन में एक उद्देश्य का होना लेखक के प्रगतिशील विचारधारा का प्रमाण है। विभिन्न परिस्थितियों के बीच स्वयं की अस्मिता और जीवन को संरक्षित करने की कला ही आज की नारियों के लिए प्रेरणास्रोत है।

इस आलेख में नारी पात्रों के उन्हीं रूपों को उद्घाटित किया गया है जिसमें उनकी चेतना घिसीपिटी जीवन की ओर से हट कर एक नवीन सृजनात्मक जीवन की ओर उत्कृष्ट होता है। वे अपने जीवन के मूल्यों को समझती हैं और अपने सफल जीवन के बीच आने वाली बाधाओं का सामना कर अपने लिए नवीन मार्ग निर्मित करती हैं।

मूल शब्द : सशक्तिकरण, स्त्री स्वातंत्र्य, चेतना, जीवन, मूल्य, साहस।

शोध विधि : प्रस्तुत शोध आलेख विश्लेषणात्मक एवं वर्णनात्मक प्रकृति का है। शोध कार्य के लिए मूल ग्रंथ एवं सहायक ग्रंथ का आधार लिया गया है।

भूमिका

वैदिक काल में भारतीय महिलाओं की स्थिति आधुनिक काल से अच्छी थी। उस काल में महिलायें पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिला कर समाज में काम करती थीं। मनुस्मृति के अनुसार- "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" जैसी मान्यताएं प्रचलित हैं किन्तु आधुनिक काल में महिलाओं की स्थिति प्राचीन काल से बहुत दयनीय बन चुकी है, यहीं कारण है कि आज का समाज महिला सशक्तिकरण पर विचार कर रहा है और कोशिश की जा रही है कि महिलाओं की स्थिति को बेहतर बनाया जा सके। अगर भावी दिनों में भारत को एक विकसित देश के रूप में देखना हैं तो यह अति आवश्यक है कि हम भारतीय महिलाओं को सशक्त करें।

स्त्री-स्वातंत्र्य का अर्थ है महिलाओं को राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक क्षेत्रों में बराबर का भागीदार बनाया जाना। भारतीय महिलाओं की सशक्तिकरण बहुत हद तक भौगोलिक (शहरी और ग्रामीण), शैक्षणिक योग्यता, और सामाजिक एकता के ऊपर निर्भर करता है। आज के समय में लगभग हर जगह चाहे वह गांव हो या शहर महिला सशक्तिकरण पर चर्चा हो रही है, लेकिन इसके वास्तविक मायने कितने लोग समझ पाते हैं यह कहना मुश्किल है। हमारे भारतीय समाज में

इसकी कितनी मान्यता मिल रही है, यह अनुसंधान करना बेहद कठिन है, हालांकि हमारे भारतीय समाज में महिलाओं की अवस्था में काफी सुधार हुआ है लेकिन जिस तरह स्वस्थ रूप से सुधार की कल्पना की जाती है, सुधार होना चाहिए, वैसा सुधार नही हुआ है, आने वाले समय में महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए इस दिशा में अभी बहुत कुछ करने की आवश्यकता है। पहले की अपेक्षा महिलाओं की दशा में सुधार तो हुआ है लेकिन अभी भी देश की आधी आबादी अपने अनेक अधिकारों से वंचित है। आज भी हमारे सामने पीड़ित महिलाओं के उदाहरणों में कमी नहीं है। समाचार पत्र, समाचार चौनल, वेब चौनल, रेप, दहेज़ के लिए हत्या, भ्रूण हत्या की घटनाओं से भरे पड़े मिलते हैं, इन आंकड़ों में दिन व दिन बढ़ोतरी हो रही है। महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा और शोषण की घटनाएं खत्म होने का नाम नहीं ले रही। आज हर क्षेत्र में पुरुष के साथ ही महिलाएं भी तमाम चुनौतियों से लड़ रही हैं, सामना कर रही हैं, कई क्षेत्रों में तो महिलाएं पुरुषों से आगे हैं। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि समाज के कुछ पुरुष प्रधान मानसिकता वाले तत्व यह मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि महिलाएं भी उनकी बराबरी करें, ऐसे लोग महिलाओं की खुले विचार वाली कार्य शैली को बर्दाशत नहीं कर पाते हैं। आज भी हमारे समाज में महिला केंद्रित आलेख और सिनेमा आसानी से स्वीकार नही किए जाते हैं, कहीं न कहीं उनका विरोध शुरू हो जाता है। यहाँ सवाल पुरुष और महिलाओं के अलग होने का नहीं है, न ही महिलाओं को कमतर आंकने का, सबसे बड़ा सवाल यह है कि अगर देश की आधी आबादी का यूं ही अनदेखी की जाएगी, उनका शोषण किया जाएगा, ऐसे में उनके बिना समाज का विकास कैसे संभव है। जबकि महिला और पुरुष दोनों ही समाज की धुरी हैं, एक को कमजोर करके संतुलित विकास हो ही नहीं सकता। जब तक देश की आधी आबादी सशक्त नहीं होगी हम विकास की कल्पना भी नहीं कर सकते। समय की मांग है और समाज की जरूरत भी कि महिलाओं को भी पुरुषों के सामान अधिकार मिले, उनके साथ कदम से कदम मिलाकर चलें।

अपनी निजी स्वतंत्रता और खुद फैसले लेने के लिए महिलाओं को अधिकार देना ही स्त्री-स्वातंत्र्य है। अब सवाल यह उठता है कि क्या स्त्री-स्वातंत्र्य सम्भव है, तो इसके लिए यही जबाव है कि जब तक महिलाएं खुद अपने-आप के दैहिक, मानसिक और शारीरिक हर तरह से खुद को पुरुषों से ऊपर समझे और उनकी निर्भरता की सोच से बाहर आए। खासकर हमारे पारंपरिक ग्रामीण समाज की महिलाएं जो अपनी इच्छा शक्ति, स्वतंत्रता और स्वाभिमान को दबाकर जीने के लिए मजबूर हैं। प्राचीन काल से आज तक अपनी सभ्यता, संस्कृति व परम्परा हर तरह से हमारे समाज में पुरुषों को ही प्राथमिकता दी गई। अब सवाल यही है कि ऐसे समाज में नारी का सशक्त होना कितना आसान है और कितना कठिन? कहने को तो बेटी घर की लक्ष्मी होती है लेकिन घर के बाहर हर जगह वह तर्क-कुतर्क और विकृत मानसिक लोगो की शिकार होती है, हिंसा की शिकार होती है, लांछित होती है। एक समय था महिलाओं को शिक्षा से वंचित रखा जाता था, मुख्यधारा से नही जुडने़ दिया जाता था और न ही कोई रोजगार करने दिया जाता था, उन्हें सिर्फ घर की चार दिवारी में कैद करके रखकर कभी मंगलसूत्र के बन्धन में तो कहीं ममता के मोह में बांधकर, कहीं पत्नी के रूप में तो कहीं मां के रूप में चार दिवारी के भीतर कैद रखा गया। यह सच है कि अब हालात पहले जैसे नही हैं। महिलाएं, शिक्षित होने लगीं हैं, हर क्षेत्र में आगे बढने़ लगी हैं, लेकिन फिर भी सवाल वहीं की वही है कि क्या महिलाओं का शोषण बन्द हो गया है? क्या महिलाओं पर होने वाली हिंसा रुक गई है? यह वह सवाल हैं जो दशकों से समाज पर प्रश्न चिन्ह लगाये हुए हैं, समाज में कालिख की तरह पुते हुए हैं। चर्चा तो होती है लेकिन चिंतन नही होता, प्रयास तो होते हैं लेकिन सुधार नही होता। आखिर क्यों? शायद हम इस ओर पूरी इच्छा शक्ति और ईमानदारी से चर्चा और प्रयास नही कर रहे। जन्म से पहले कन्या भ्रूण हत्या किया जा रहा है, दहेज के लिए आए दिन महिलाओं की हत्या हो रही है, रेप की घटनाओं के बढ़ते आंकड़े देखे तो मन विचलित होता है। भारतीय संविधान ने महिला व पुरुष को समानता का अधिकार दिया है, साथ ही हमारी सरकारों ने भी महिलाओं के लिए अनेक योजनाएं चालू की हैं, इसके बावजूद समाज में महिला-पुरुष को लेकर अनेक तरह के भेद-भाव बना दिए गये हैं और हर जगह महिलाओं को कमतर आंकने की कोशिश की गई है।

संविधान, सरकार से लेकर सामाजिक संगठन तक में महिला सशक्तिकरण की बात तो होती है लेकिन महिला सशक्त नहीं हो पाई है। यह सत्य है कि स्त्री-स्वातंत्र्य यह तब तक संभव नहीं जब तक हमारे समाज के पुरुष प्रधान रवैये में यह

सोच पैदा न हो जाये कि महिला भी पुरुष से कम नहीं है साथ ही महिलाओं को भी अपने अधिकारों के लिए आगे आना होगा और अपनी कार्यक्षमता से अपनी शक्ति का, खुद के सशक्त होने का परिचय देना होगा। महिलाओं को दिखाना होगा की नारी सिर्फ भोग की वस्तु नहीं है बल्कि वह भी समाज का अहम हिस्सा है। महिलाओं को जागना होगा और दिखाना होगा कि वह लाचार नहीं है, उसे लाचार बनाया गया है। अब जागरूकता की परम आवश्यकता है, नारी को खुद को पहचानने की, अपने-आप को जानने की जरूरत है। अपने विकास, उन्नति, प्रगति समृद्धि और अधिकारों के लिए नारी हर पल चौकन्ना रहें, जागरूक बने और दूसरी नारी सशक्ति को भी प्रेरित करें। समाज का संतुलित विकास नारी के सशक्त होने पर ही सम्भव है। इस बात से भी हम इंकार नहीं कर सकते कि हमारी नारी शक्ति ऐसी व्यवस्था में रह रही हैं जहाँ महिलाओं को सशक्त बनाना आसान नही फिर भी महिलाओं को हर तरह से प्रयास करना होगा, क्योंकि यह कार्य मुश्किल जरूर है लेकिन नामुमकिन नहीं, इसलिए महिलाओं को शिक्षा तथा सोच से हर तरह से अपने-आप को सशक्त करने का समय आ गया है। महिलाओं को मानसिक रूप से मजबूत होकर खुद को अपने-आप को प्रस्तुत कर हर जगह शिखर पर स्थापित करना होगा, साथ ही सशक्त होने के लिए परिवर्तन लाना जरूरी है क्योंकि नारी शक्ति को मुख्य धारा से जोड़े बिना विकास सम्भव नहीं है, इसलिए हर महिला को खुद से अपने घर से शुरुआत करनी होगी खुद को सशक्त बनाने की और अपने आस-पास की महिलाओं को भी जागरूक करना होगा, जागरूकता का माध्यम जो भी हो लेकिन खुद को सशक्त बनाने हेतु जागरूकता जरूर लाएं, साथ ही अपने अंदर निर्णय लेने की, नेतृत्व करने की क्षमता पैदा करें, साहसी बने, दृढ़ निश्चयी बने, आत्म विश्वासी बनें, क्योंकि नारी सशक्त होगी तभी हम देश और समाज के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना कर सकते हैं, एक सशक्त नारी के कन्धों पर ही संतुलित, स्वस्थ, विकसित समाज की नींव रख सकतें हैं।

वर्षों से महिलाओं को चार दिवारी के अंदर कैद रखने और उसे शोषित करने की जो धारणा है, जो सोच है उसे पूरी तरह से दफन कर जागरूकता की ज्योति जलाकर एक नए सुन्दर समाज की स्थापना करना है। एक तरफ देवियों की पूजा अर्चना की जाती है तो दूसरी तरफ महिलाओं से दोयम दर्जे का व्यवहार कर भेदभाव किया जाता है।। देश को उन्नतशील बनाना है, एक सुदृढ़ समाज की परिकल्पना को साकार करना है, इसलिए यह आवश्यक है कि नारी जागृत हो, आगे बढ़े, अपने अधिकारों के लिए लड़े। इस पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों की सोच भी बदलना है, खुद को स्थापित करना है और साबित करना है कि हम भी पुरुषों से कम नही, बल्कि हम एक कदम आगे हैं। तभी सही मायने में स्त्री-स्वातंत्र्य का चिंतन साकार होगा, प्रयास पूरा होगा और एक नए भारत व स्वस्थ-संतुलित समाज का निर्माण होगा।

शोषित पात्र के साथ सशक्त रूप में भी भारतीय नारी को नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। समाजवादी चेतना ही उनके नारी पात्रों की विशेषता है। नारी पात्रों में गौरी (रतिनाथ की चाची), बिसेसरी (नई पौध), मधुरी (वरुण के बेटे), माया (दुःखमोचन), निर्मला (कुंभीपाक) और उगनी (उग्रतारा) प्रमुख है। इन उपन्यासों में भारतीय समाज में अपमानित, तिरस्कृत और यातनापूर्ण जीवन जीने वाली नारी के वैधव्य-जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है। स्वयं नागार्जुन बिहार के निम्न मध्यवर्गीय मैथिल समाज में जन्म लेकर प्रत्यक्ष द्रष्टा के रूप में विधवाओं के तिरस्कृत एवं यातनापूर्ण जीवन के सहभागी रहे हैं। 'रतिनाथ की चाची' की गौरी भारतीय विधवा नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली स्त्री है। 'नई पौध' के खोंखा पंडित अपनी नातिन बिसेसरी को साठ साल के चतुरानन चौधरी से ब्याहने की बात करते हैं। रमेसरी को छोड़कर बाकी छहों बेटियाँ उन्होंने बेच डाली थी। महेसरी से उन्हें 1100 रूपये मिले थे। भुवनेसरी से 800 रु. मिले थे। गुनेसरी से 700 रु. मिले थे। गुंजेसरी से 1000 रु. मिले थे। बानेसरी से 700 रु. और धनेसरी से 900 रु. मिले थे। और अब बिसेसरी का नंबर था, फसल तैयार खड़ी थी, कटने भर का विलंब था। खोंखा पंडित के सामने प्रश्न लड़की के जीवन का नहीं, धन, दौलत और ऐश्वर्य का था। 'बिसेसरी' एक साहसी नारी पात्र है जो धैर्य, हिम्मत और साहस के बल पर अपनी पसंद का जीवनसाथी प्राप्त करती है और अपना बिगड़ने वाला भविष्य बना लेती है। 'मधुरी' का चरित्र भी बहादुर लड़की का है। नारी के प्रति नागार्जुन का दृष्टिकोण संगत और स्वस्थ प्रतीत होता है और इन नारी पात्रों का विकास जीवन की यथार्थ भाव-भूमि पर हुआ है। ये नारी पात्र अपनी असीम करुणा से पाठकों में व्यापक संवेदना उत्पन्न करते हैं। इन चरित्रों की एक विशेषता यह है कि उपन्यासों

के अंत तक आते-आते रूढ़िवादी समाज में जन्मे और पले होने पर भी परंपरागत रूढ़ियों, कुरीतियों और अंध विश्वासों के प्रति विद्रोही हो उठते हैं। नारी अधिकार रक्षा की लड़ाई का चित्रण नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में खूब किया है। स्त्री समस्या, उसका विद्रोह और स्वाधीनता का संघर्ष उनके उपन्यासों के केंद्र में रहा है। स्त्री स्वाधीनता का प्रश्न आज भी समकालीन है। इसी की पड़ताल युवा कथाकार-समालोचक श्रीधरम ने स्त्री स्वाधीनता का प्रश्न और नागार्जुन के उपन्यास में करने की कोशिश की है. वे उन परिस्थितियों की भी पड़ताल करते हैं, जिन्होंने नागार्जुन को अपने उपन्यासों के पात्र गढ़ने को प्रेरित किया. मिथिला के सामंती समाज, ब्राह्मणों का वर्चस्व, बिकौआ प्रथा को समझे बिना नागार्जुन के उपन्यासों के मर्म को समझना संभव नहीं है। लेखक ने नागार्जुन के उपन्यासों के जरिए असल में स्त्री पराधीनता के व्यापक आयाम तलाशे हैं। नागार्जुन का मानना था कि उपन्यासों की कथा की प्रक्रिया को सामाजिक प्रक्रिया के रुख से मिलता-जुलता होना चाहिए. नारी शोषण को उन्होंने बहुत नजदीक से देखा और महसूस किया था. इसलिए यह महज संयोग नहीं कि नागार्जुन ने हिंदी और मैथिली दोनों भाषाओं में अपने लेखन का विषय स्त्री समस्या को बनाया है. न तो नागार्जुन ने कभी कलम से समझैता किया, न उनके उपन्यासों के स्त्री पात्रों ने।

तथ्य विश्लेषण

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में एक तरफ जहां उनके प्रति हो रहे शोषण एवं उत्पीड़न को उजागर किया है वहीं दूसरी तरफ उनके प्रतिकारी स्वरूप को भी दर्शाया है। उनकी नारी पात्र कमजोर नहीं अपितु परिस्थितियों का सामना करने को तत्पर दिखाई पड़ती हैं। 'रतिनाथ की चाची' में गौरी पुरूष जयनाथ के अतृप्त वासना की शिकार बन जाती है, जिसका दंश उसे झेलना पड़ता है। किन्तु ऐसी स्थिति में वह हार नहीं मानती सामाजिक आलोचनाओं के मध्य स्वयं के लिए मार्ग ढूंढ़ती है। गौरी की माँ का भी सशक्त रूप यथार्थ रूप में उभरकर आता है। जब उन्हें गौरी के संबंध में आलोचना मिलती है तो वह बुदबुदाती हैं- ''कोई क्या कर लेगा हमारा? बिटिया को मैं प्याज की तरह जमीन के अंदर दबाकर नहीं रख सकती, इसके चलते जो कुछ हो। जिस समाज में हजारों की तादाद में जवान विधवाएँ रहें, वहाँ यही सब तो होगा।''[1]

गौरी अपनी समस्या से निजात पाकर एक स्वाभिमानी स्त्री के रूप में स्वयं को प्रतिष्ठित करती है। वह किसी पुरूष का आश्रय नहीं लेती बल्कि स्वयं चरखा चलाकर अपना जीविकोपार्जन करती है। यह एक नारी का सशक्त रूप ही है, जो समाज को प्रेरणा भी देता है और पुरूष सत्ता को चुनौती भी। 'नई पौध' में विश्वेश्वरी का विवाह एक बुजुर्ग व्यक्ति के साथ तय कर दिया गया था लेकिन विश्वेश्वरी ने अपनी चेतना को जागृत रखते हुए युवा वर्ग से सहायता लेती है और अंत में अपने पसंद के व्यक्ति वाचस्पति को जीवन साथी बनाती है। इसमें बुलो की भाभी, दिगंबर आदि का योगदान रहता है। यह एक व्यक्तिक समस्या ही नहीं बल्कि सामाजिक समस्या भी है। वाचस्पति विश्वेश्वरी के मामा दुर्गानंदन से कहता है- ''व्यक्ति का संकट ही समाज का संकट है और समाज का संकट समूचे देश का संकट है। है न?''[2]

अनमेल विवाह की अमानवीयता एवं क्रूरता के संबंध में डॉ. ज्ञानचंद गुप्त कहते हैं- ''नारी के सामाजिक शोषण की अनमेल विवाह पद्धति हमारे गाँवों की प्रचलित कुप्रथा है। स्वतंत्रता से पूर्व इसका रुप अत्यंत भयानक था। गरीबी और अशिक्षा की चक्की में गाँव पूरी तरह पीस रहे थे और नारी का यह सामाजिक शोषण उनकी एक नियति बन गया था। फूल सी सुकुमारी को वृद्ध के साथ जीवन यापन के लिए माँ बाप द्वारा मजबूर कर दिया जाता था।''[3]

इसी प्रकार 'वरूण के बेटे' में जब डॉ. कुसुम को पता चलता है कि मधुरी का पति आवारा था और ससुर उसे पीटता था तो कुसुम मधुरी से कहती है- ''लात मारो साले को, जब तेरा अपना घरवाला ही बौड़म निकला तो ससुर की क्या बात कहती है।''[4] कुसुम के इस कथन से मधुरी पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है और वह अपने आवारा पति को छोड़ देती है। इसी प्रकार एक और प्रसंग आता है, डिप्टी मजिस्ट्रेट जब जाँच के लिए गाँव आता है मधुरी से कहता है कि- राजनीति ही तो एक चीज थी, जिसे गाँवों की हमारी बहु बेटियों ने अब तक अपने पास फटकने नहीं दिया था। मधुरी उसे जवाब देती हुई कहती है इसमें हर्ज क्या है। यहाँ लेखक ने अपने अधिकार के प्रति सजग स्त्री का उदाहरण प्रस्तुत किया है। 'दुखमोचन'

उपन्यास में लेखक ने विधवा नारी को दयनीय स्थिति में न दिखा कर प्रभावी रूप में दिखाया है। वह सामाजिक रूढ़ियों के बंधन को तोड़कर अपने लिए सुखमय जीवन का मार्ग प्रशस्त करती है। इसमें दुखमोचन विदुर कपिल और विधवा माया का अंतर्जातीय विवाह कराते हैं।

उनका स्त्रीवादी चिंतन यहीं तक सीमित नहीं रहा, बल्कि कुछ गलती से फिसल गई पतिता एवं वेश्याओं पर भी चिंतन करते हुए उनके लिए भी आदर्श समाधान करने तक व्याप्त है। उनके उपन्यासों में व्यक्त नारी उत्थान विचारों के संदर्भ में कुसुम शर्मा कहती हैं- ''मार्क्सवादी सिद्धान्तों को जीवन में आत्मसात करने वाले श्रमिक तथा कृषक का जीवन व्यतीत करने पर जो समस्याएँ जीवन में आयी उन्हें सच्चे अनुभव से हल करने वाले नागार्जुन भी सामाजिक चरित्र बहुत जीवंतता से प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने समाज में दलित नारी की बहुत पैरवी की है तथा समाज के उत्थान में उनका उत्थान आवश्यक बताया है।''[5] उनके स्त्रीवाद का आधार स्वस्थ परिवार है। उनके उपन्यास 'कुंभीपाक' की पात्र चंपा इस संदर्भ में कहती है- ''मर्द और औरत एक - दूसरे के बिना रह नहीं सकते। एक की बोली दूसरे के लिए शहद है। एक की चितवन दूसरे के लिए बिजली है। उसकी गंध इसके लिए चंदन है। यह छू देगी उस ठूँठ से, टूसे निकल आयेंगें।''[6] इसमें लेखक ने एक ऐसी महिला का उदाहरण प्रस्तुत किया है जो अपनी जान जोखिम में डाल कर दूसरी महिला को गर्त में गिरने से बचाती है। कंपाउंडर की बीबी भुवन को बिक जाने से बचा लेती है और उसे जीवन जीने की कला भी सिखाती है। इसमें लेखक ने ऐसे पुरूष का भी उदाहरण प्रस्तुत किया है जो स्त्री के बेहतर जीवन के पक्षधर हैं। उपन्यास में राय साहब कहते हैं- ''बस यहीं आत्मविश्वास मैं स्त्रियों में देखना चाहता हूँ। श्रम, प्रज्ञा, सहयोग, विवेक और सुरूचि सभी आवश्यक हैं- चम्पा। पुरुषों की बपौती नहीं। स्त्रियों का भी साझा है उनमें।''[7] 'उग्रतारा' उपन्यास में भी नागार्जुन गर्भिणी उगनी का विवाह कमलेश्वर से करा कर प्रगतिशील विचारधारा को अभिव्यक्त किया है। इसमें इनकी नारी पात्र स्थिति और समाज से लड़ कर अपने लिए सही निर्णय लेती है। उसके इस साहसिक कार्य मे सशक्तिकरण की झलक मिलती है। नागार्जुन लिखते हैं- ''आज ऐसी घटना घटी थी, जिसकी कल्पना का आभास तक उगनी को नहीं था। आज एक पुरूष ने गर्भिणी नारी के सिमंत में सिंदूर भरा था। धोखे में? नहीं, जान-बूझकर। उसके होशों हवास दुरुस्त थे, विवेक सजग था, आवेग या आवेश चेतना पर हावी नहीं था। सभी बातें उसे मालूम थी।''[8]

यह अनजाने में हुई घटना नहीं थी बल्कि इसके लिए उगनी तैयार थी। स्वयं से निमित्त जीवन को जीने के लिए वह अग्रसर हुई, जो एक प्रेरणा है आज की नारियों के लिए। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में स्त्रियों की समस्या के साथ उनका समाधान भी दिया है। साथ अपने पात्रों के माध्यम से यह संदेश दिया है कि अपने अधिकारों की रक्षा के लिए महिलाओं को स्वयं आगे आना चाहिए, तभी उनका सर्वांगीण विकास संभव है।

संदर्भ

1. रतिनाथ की चाची, नागार्जुन रचनावली-खंड 4, सं. शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (2003).
2. नई पौध, नागार्जुन रचनावली-खंड 4, सं. शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (2003).
3. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना, डॉ. ज्ञानचंद गुप्त, पृ.129
4. वरुण के बेटे, नागार्जुन रचनावली-खंड 4, सं. शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (2003).
5. साठोत्तरी हिंदी उपन्यास, कुसुम शर्मा, पृ.63, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली (1990)
6. कुंभीपाक, नागार्जुन रचनावली-खंड 5, सं. शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (2003).
7. कुंभीपाक, नागार्जुन रचनावली-खंड 5, सं. शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (2003).
8. हिंदी मराठी के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर, पृ.19

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

नरेन्द्र कोहली के महाभारत कथा पर आधारित उपन्यासों की साहित्यिक प्रासंगिकता

डॉ. राजकुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
जनता विद्या मन्दिर गणपतराय रासीवासिया महाविद्यालय, चरखी दादरी (हरियाणा)-127306
सम्पर्क सूत्र-9416161142
Email - rajkumargarg1967@gmail.com

शोध सारांश

किसी विचारधारा को केवल उसे देखकर ही उसको अपना लेना विशेषकर जिसमें न मूल्य हो और न ही सही आचरण हों, उन्हें देखकर उसके उसी अर्थहीन एवं गैर जिम्मेदाराना अर्थों को जीवन में ढ़ाल लेना, व्यक्ति होकर व्यक्ति की स्वीकारोक्ति न करने जैसी बुद्धिहीनता होती है। मूल्यवान जीवन का अभिप्राय है, मूल्यवान बातों को शक्तिहीन, शोषितों एवं अभावग्रस्तों के जीवन को सशक्त एवं उर्जावान बनाना। विरोधात्मक परिस्थितियों में आक्रामक होकर विरोध एवं विद्रोह करना ही समसामयिकता अथवा युगीन होता है। यदि सृजन एवं आलोचना केवल 'नकारात्मकता' में ही बदलकर रह जाती है, तो वह पूर्ण रूप से समकालीनता का स्वरूप नहीं होती। वर्तमान स्थिति की चेतना को खंडित करना पर्याप्त नहीं बल्कि अब तक चले आये वर्गों के विरूद्ध सशस्त्र युद्ध की भी युगीन अनिवार्य शर्त के अन्तर्गत् आता है।

मुख्य शब्द : कथात्मक, साहित्यिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, महासमर।

पूर्ण शोध पत्र : नरेन्द्र कोहली की पौराणिक रचनाओं से सम्बद्ध रचनाओं का अपना एक अलग ही महत्त्व एवं अन्दाज है, जिसमें उसकी असाधारणता झलकती है। रामायण जैसी भारतीय संस्कृति से जुड़ी अभिन्न पौराणिक कथात्मक आधारित रचनाओं ने ही कथाकार को महाभारत की कथात्मक आधारित रचनाओं की ओर आकर्षित किया, क्योंकि जो शाश्वतता पौराणिक कथानकों में आत्मा की तुष्टि एवं संतुष्टि कर देती हो, वैसी सम्भावना अन्य कहीं नहीं मिलेगी। महाभारत कथा पर आधारित 'महासमर' उपन्यास जो आठ खण्डों में रचा गया है। उसकी पृष्ठ भूमि अपने आप में काफी विस्तृत एवं व्यापक है। व्यापक हों भी क्यों न? क्योंकि विश्व के वाङमय में कही अन्य इतनी सशक्त एवं पौराणिकता के कहीं दर्शन नहीं होते, जिनमें अथाह ज्ञान, विज्ञान एवं दर्शन का विविधरुपेण समावेश हो।

नरेन्द्र कोहली का 'महासमर' के आठों उपन्यास अपने आप में कई सालों के एक युग को उद्घाटित एवं उद्भाषित करते दृष्टिगोचर होते हैं। इससे पूर्ववत् अध्यायों में उपन्यासों की प्रमुख घटनाओं एवं पात्र चरित्र-चित्रण सम्बन्धी विषयात्मकता पर विचार विमर्श किया है। नरेन्द्र कोहली जी ने अपने महासमरीय उपन्यासों में पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रों को माध्यम बनाकर उनसे जुड़ी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कथाएँ सजायी हैं। रचना की है, उनको बुना है, वे अपनी उर्वरता की दृष्टि की मजबूती को दर्शाती हैं, जिनमें सृजनात्मकता की सशक्तता मौजूद है और उनका अपना विशेष महत्त्व है।

नरेन्द्र कोहली जी के महाभारत कथात्मक आधारित महासमरीय उपन्यासों की साहित्यिक प्रासंगिकता के विषय सम्बन्धी विमर्श इस अध्याय में प्रस्तुत किया जा रहा है। उनके उपन्यासों की साहित्यिक प्रासंगिकता की शृंखला में जिन विषयों की महत्ता एवं आवश्यकता की महत्त्वपूर्ण भूमिका है और जो इस शोध कार्य को बेहतर रूप स्वरूप प्रदान करती है। उन्हीं का यहाँ मनन, चिंतन एवं विशलेषण करना अतिआवश्यक समझा गया है जिनका अध्ययन करना उचित प्रतीत होता है, किया जा रहा है।

समसामयिक एवं कालातीतता का निर्वाह

समकालीनता अर्थात् एक ही काल यानी उसी काल में होने वाला अथवा घटित होने वाला कोई रुप। दूसरे शब्दों में समकालीनता के आशय को इस तरह स्पष्ट किया जा सकता है - उसी समय या काल खण्ड में होने वाली घटना या प्रवृत्ति या एक ही काल खण्ड में जीवन निर्वाह कर रहे समाज के व्यक्ति समकालीनता को समयगत, चेतना, ज्ञान अथवा बोध की संज्ञा भी दी जा सकती है। 'समकालीनता' एक काल के साथ-साथ जीना नही है। सामान्यतः समकालीन का अर्थ है - एक ही कालावधि का। 'नालन्दा विशाल शब्द सागर' में समकालीन का अर्थ दिया है - जो एक ही समय में हुए हों।''[1] वृहद हिन्दी पर्यायवाची शब्दकोश में सम सामयिक युगीन''[2] और हिन्दी शब्द कोश में ''एक ही समय का, समसामयिक''[3] अर्थ दिया गया है। संक्षेप में समकालीन से तात्पर्य है एक ही कालावधि का।

समसामयिकता के विषय में डॉ. नरेन्द्र मोहन अपनी अभिव्यक्ति इस प्रकार देते हुए उसकी व्यापकता को बतलाते हैं, ''समकालीनता समकालीन घटनाओं, तथ्यों और सन्दर्भों तक सीमित नहीं हैं। बोध और संवेदना के धरातल पर इतिहास में इसका कोई विरोध नहीं है। आज के यथार्थ को पाने के लिए, उसे अधिक सशक्त ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए अगर समकालीन लेखक इतिहास में जाता है और उसे अपनी कल्पना शक्ति और स्मृति बोध के जरिए वर्तमान तक ले जाता है तो यह उस लेखक की व्यापक दृष्टि और कला-कौशल का ही परिचायक है।''[4]

किसी विचारधारा को केवल उसे देखकर ही उसको अपना लेना विशेषकर जिसमें न मूल्य हो और न ही सही आचरण हों, उन्हें देखकर उसके उसी अर्थहीन एवं गैर जिम्मेदाराना अर्थो को जीवन में ढाल लेना, व्यक्ति होकर व्यक्ति की स्वीकारोक्ति न करने जैसी बुद्धिहीनता होती है। मूल्यवान जीवन का अभिप्रायः है, मूल्यवान बातों को शक्तिहीन, शोषितों एवं अभावग्रस्तों के जीवन को सशक्त एवं उर्जावान बनाना। विरोधात्मक परिस्थितियों में आक्रमक होकर विरोध एवं विद्रोह करना ही समसामयिकता अथवा युगीन होता है। यदि सृजन एवं आलोचना केवल 'नकारात्मकता' में ही बदलकर रह जाती है, तो वह पूर्णरूप से समकालीनता का स्वरूप नहीं होती। वर्तमान स्थिति की चेतना को खंडित करना पर्याप्त नहीं बल्कि अब तक चले आये वर्गो के विरूद्ध सशस्त्र युद्ध की भी युगीन अनिवार्य शर्त के अन्तर्गत आता है।

डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय 'समकाल' एवं 'समकालीनता' यानी समसामयिकता की विस्तृता के आशय को इस प्रकार प्रकट करते हैं, ''समकाल शब्द यह बताता है कि काल के इस प्रचलित खण्ड या प्रवाह में मनुष्य की स्थिति क्या है। इसे उलटकर कहें तो कहेंगे कि मनुष्य की वास्तविक स्थिति देखकर या उसे अंकित-चित्रित करके ही हम 'समकालीनता' की अवधारणा को समझ सकते हैं। शर्त यही है कि लेखक आज के मनुष्य के अंकन में, वस्तुगत रहें यानि उसके चित्रण की विधि कोई भी हो, लेकिन उससे जो मानव बिम्ब उभरता हो, वह वास्तविक जीवन के निकट हो।''[5]

'महाभारत' अपनी सार्वभौमिकता के कारण किसी एक ज्ञान शाखा का रूप नहीं ले सकता। वह पुराण, इतिहास, सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के रूप में समादृश है जिसमें शाश्वत सत्यता की चर्चा है, उसका वर्णन है। इसके वैविध्यपूर्ण प्रसंग उसमें वर्णित आनुशंगिक कथाओं और अनेक चिन्तन ग्रंथों के मध्य पाँडवों की कथा आदि की ऐसी शृंखला का निर्माण करते हैं, जिसमें भारतीय तत्वज्ञान पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित है। इसमें तद्युगीन घटनाएँ और लोकाचार पूरी प्रामाणिकता के साथ चित्रित है। उस वक्त की सैद्धान्तिक चिन्तन की प्रधानता की रचना राजाओं के द्वारा नहीं हुई बल्कि ऋषियों ने की। ऋषि व्यक्तित्व के रूप में सोचता और विचारता नहीं था और न ही उसका चिन्तन राजाओं की भाँत्ति वैयक्तिक एवं स्वार्थपरक होता

था। महाभारत की कथा प्राचीन भारत अपनी वास्तविकता में अभिव्यक्त है। कुरुवंश-पांडवों की मुख्य कथा इस ग्रंथ का आधार है जिसमें महत्त्वपूर्ण कार्य, और कार्य के आधार महान चरित्रों के माध्यम से अवतरित होकर धर्म की स्थापना की ओर बढ़ते हैं। धर्म स्थापना की प्रत्येक जगह श्रीकृष्ण सहायक हैं। श्रीकृष्ण के माध्यम से व्यक्ति, परिवार, समाज के हितों की रक्षार्थ प्रयास किया जाता है। यही ऐसा तथ्य है, जो आरम्भ से चलकर इस बात को सचेत करता है कि कहीं भी अन्याय और अधर्म न हो, किसी के भी अधिकारों पर कुठाराघात न हो।

जहाँ तद्युगीन समाज की बात है, तो उस वक्त भी सम्पत्ति और राज्य के लोभ लालच की लालसा अथवा वासना की चाह उतनी ही थी जितनी आज कहने का तात्पर्य यह है कि लोभ लालच की प्रवृत्ति कभी भी समाप्त नहीं होती और न ही कभी हुई, केवल सामाजिक प्रवृत्तियों में अन्तर आता रहा है। मध्य युग का इतिहास यह बताता है कि इतिहास ने अनेक बार राज्य की छीना झपटी की खातिर भाईयों द्वारा भाईयों को और पुत्रों द्वारा पिता एवं अन्य सम्बन्धियों को ताड़ित एवं प्रताड़ित किया जाता रहा है। 'महाभारत' की प्राचीन कथा को औपन्यासिक कृतियों के रुप में ढालने के पीछे आधुनिक युग की समस्याओं से जुड़े कुछ अहम् एवं सार्थक चिन्तन मुद्दों को चरितार्थ कर उनके नवीनता का समावेश करना रहा, जिसमें नरेन्द्र कोहली जी काफी हद तक सफल भी रहे हैं।

जिस युग में किसी प्राचीन ग्रंथ की कथा पर आधारित रचना की जाये तो उस रचना में उस युग की सत्यता के अंशों का समावेश होना स्वाभाविक हो जाता है। यही बात पौराणिक तथ्यों के प्रकट करते समय उनकी कथात्मकता के विषयों पर आधारित रचनाओं में आधुनिकता के प्रवेश पर भी लागू होती है। ऐसे विचार मैंने इससे पूर्व भी इंगित किए हैं कि आम आदमी से जुड़ी उसकी समस्याएँ युग-दर-युग समानता पर ही चलती रहती हैं। पौराणिक रचनाकार नरेन्द्र कोहली भी इस तथ्य की स्वीकारोक्ति इस प्रकार करते दृष्टिगोचर होते हैं, ''महासमर के चौथे खण्ड में एक 'लेपक' पात्र आया है। यह लेपक शुद्ध है, साधारण आदमी है जो चिनाई का काम करता है। उसमें प्रतिभा है। वह पढ़ता-लिखता, काम सीखता और क्रमशः आगे बढ़ता है।''[6] इन पंक्तियों के माध्यम से उस व्यक्ति के जीवन में आगे बढ़ने के लिए संघर्ष से साक्षात्कार करने की क्षमता को दिखाया गया है। आगे कोहली जी कहते हैं, ''वह समझने और ध्यान उत्पन्न करने लगता है तो वह वैश्य की स्थिति भी है और जब वह इससे ऊपर उठकर धन-विसर्जन करने की स्थिति में आता है और समाज के हित में चिन्तन करता है तो वह ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है। इस प्रकार बहुत सारी बातें आधुनिकता के क्षेत्र में आती चली जाती है।''[7] अतः युगानुसार मानव हृदय में जहाँ विचारों की अदला-बदली होती रहती है, वहीं आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कर्म प्रधानता की दखल अंदाजी भी होती है, जो उसके आधुनिक पैमानों को तय करते हैं।

प्राचीन घटनाएँ जब आज की किसी सूचना, पात्र, चरित्र और संगीत से उस काल से जुड़ती है तो उस समय काल विभाजन के अर्थ अधिक महत्व नही रखते क्योंकि उस स्थितियों में समायोजन एवं सामंजस्यता की उपस्थिति होती है। महाभारत के अनेक दुष्ट प्रवृत्ति एवं स्वभाव की नीचता का प्रतीक पात्रों में दुर्योधन सर्वोपरि रहे। वैसे उसकी ऐसी स्वार्थ भरी लोलुपता के कारण वह ताउम्र एक अतृप्ता मनुष्य ही रहे। दुर्योधन की तृश्णा, मोह, अहंकार और राक्षसी लिप्ता एवं महत्वाकाक्षाएँ, इस कदर तीव्र से तीव्रतर हो गई थी, कि उसने पांडवो का राज्य वापिस करने से साफ तौर पर मना कर अपनी दुर्भावना को उजागर कर ही दिया। राजा धृतराष्ट्र अपने दुष्ट एवं दुराचारी पुत्र दुर्योधन के मोह में एक प्रकार से दासत्व का रूप धारण कर गये थे। चिंतन और मनन करने से ऐसी धारणाएँ हमारे हृदय में बलवती हो उठती हैं, जो अनेक ऐसे उदाहरण हमारे समक्ष प्रस्तुत कर देती हैं, जिसमें स्वतन्त्र भारतीय परिवेष भी शामिल है। लोभ से आचरण भ्रष्ट हो जाता हैं।

नरेन्द्र कोहली की इस मान्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि महाषक्तियों के अपने कानून-कायदे और नियम होते हैं। घृतराश्ट्र पुत्र मोह की दासता के वषीभूत होकर कई बार अपनी बेबसी प्रकट करते हैं, मेरे पुत्र मेरे अधीन नही हैं। दुर्योधन ने मुझे इस सिहांसन से अभी उतारा नहीं है। किन्तु मेरे हाथ से कोई अधिकार नही है। मेरा यह मंदबुद्धि और दुराचारी पुत्र दुर्योधन मेरी कोई आज्ञा नही मानता। मैं उसे समझा ही तो सकता हूँ किन्तु वह समझने से इन्कार करता है।

आज के सन्दर्भ में आतंकवाद और उसके संचालक आतंकवादी इस मान्यता को पूरी तरह से चरितार्थ एवं क्रियात्मक

रूप प्रदान कर के प्रमाणिक करते हुए दिखाई देते हैं कि युद्ध के नियमों का पालन ताकतवर और समर्थ लोग नही करते। महाभारत में भी ऐसी ही मान्यता को रेखांकित किया गया है कि युद्ध के नियमों का पालन केवल दुर्बल एवं निर्बला पक्ष ही करता है। दुर्योधन जो अपने पिता की सभी राजकीय शासकीय शक्तियों का प्रयोग तथा उपयोग खुलकर अपने अहम की पूर्ति के लिए करता, पर वह अपने आपको अपने वक्त की महाषक्ति समझता था क्योंकि उसी महाषक्ति की शक्तिशाली दर्प की अज्ञानता के मद में वह भगवानावतार श्री कृष्ण को भी बन्दी बनाने की सोच रखता है, पाँडवों का सबसे बड़ा सहारा कृष्ण ही है। उसे बंदी बना लिया जाए तो पाँडवों का बल, साहस और विषय सब कुछ बन्दी हो जाएगा।

युद्ध का अवसर ही नहीं आएगा। कृष्ण मेरा बन्दी होगा तो सारे यादव भी मेरे अधीन होंगे और तब तीनों लोकों में ऐसी कौन सी भक्ति है, जो मेरे सामने खड़ी हो सके। यही सोच और यही दुर्भावना दुर्योधन को उसकी संकीर्णता के भी वास्तविक स्तर से गिरा देती है, जहाँ दर्प एवं अभिमान को भी शर्मिन्दा होना पड़ा और उसके ऐसे ही कारनामों कुरू वंष के विध्वंस का प्रमुख कारणों में से एक कारण बना।

उखाड़ने का कार्य करना, नाश करना या काट डालने जैसी प्रतिरोधात्मक क्रियाओं को क्रियात्मक रूप में लाना ही उच्छेदन कहलाता है। अर्थात् ऐसी क्रियाएँ जिसमें पूर्वाग्रह निहित किसी की किसी न किसी रूप में हानि पहुचाने का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष काम करना हो, वे उच्छेदन प्रक्रियाओं के अंतर्गत् आती हैं। महाभारत में ऐसी प्रक्रियाओं की कमी नही हैं। महाभारत से जुड़ी प्रत्येक घटनाओं प्रत्येक पात्रो की तह तक जाकर उन्हें जानने एवं समझने की कोषिष रही है। नरेन्द्र कोहली की प्रत्येक घटना एवं पात्रों की मन स्थिति का सूक्ष्म अध्ययन किया है नरेन्द्र कोहली ने। उन्होंने पात्रों के चरित्रों एवं घटनाओं के संग-संग पात्रों के मनोभावों एवं उनकी मनःस्थिति को भी बेहतर तरीके से चित्रित करने का प्रयास किया है। महाभारत के आरम्भ की कथा सूत्रधार रहे, राजा शान्तनु की पत्नी का देहावसान हो जाने पर उसकी सत्यवती से शादी और कई वर्शों बाद राजा शान्तनु की मौत के बाद एकदम वैचारिक दृष्टि से शून्यता की ओर अग्रसर सत्यवती के हृदय की छिपी पीड़ा की स्थिति को नरेन्द्र कोहली ने बखूबी पढ़ने और समझने की कोशिश इस प्रकार उद्घाटित की है, ''क्यों वह बुद्धि से काम नहीं लेती.... क्या उसके बाबा ने ऐसे ही एक संकट के जाल में फँसाकर, अपनी बुद्धि की तीक्ष्णता से उसके सूत्र काट नहीं दिए थे? उन्होंने राजा शान्तनु और उसके पुत्र युवराज को एक बार में ही धाराषाही कर दिया था।''[10] कोहली आगे स्पष्ट करते हैं, ''सत्यवती ने बाबा से क्या सीखा आज तक? .... क्यों वह भीष्म प्रतिज्ञा की तलवार के रूप में धारण कर, उसके प्रहार से भीषण को अपना कवच नहीं बनाती।''[11] यह मनःस्थिति कहीं भी किसी स्पष्ट उद्देश्य की ओर संकेत नहीं करती। केवल अस्पष्टता और उलझन उत्पन्न करती है।

नरेन्द्र कोहली जी अपने महासमर की औपन्यासिक कृतियों में घटनाओं एवं पात्रों की मनःस्थिति के साथ-साथ उनके हृदय में कुलबुलाते प्रश्नों को भी अंकित करते हैं। देवव्रत जो भीष्म प्रतिज्ञा के पश्चात भीष्म कहलाए, उन्होंने अपने पिता की विवाह संबंधी लाला की पूर्ति हेतु ताउम्र विवाह न करवाने का व्रत लिया था। उसके बाद उनके हृदय में बहुत से सवालिया निशान लगते हैं, ''पिता क्यों चाहता है कि उसके असमर्थ बुढ़ापे को सुखी बनाने के लिए, युवा सन्तान अपनी सारी जिजीविशा का दमन कर ले। पिता भी तो मनुष्य है। उसमें भी तो मानवीय दुर्बलताएँ हैं। उसकी बुद्धि भी उसे धोखा दे सकती है।''[12] इन्हीं पंक्तियों को धर्म के माध्यम से जोड़ते हुए स्पष्ट करते हैं, ''फिर उसकी ही इच्छाएँ, कामनाएँ, निर्णय क्यों सत्य है? पिता और पुत्र की इच्छाएँ दो स्वतन्त्र व्यक्तियों की इच्छाएँ होने के कारण समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। फिर पिता की इच्छा की पूर्ति ही क्यों धर्म हैं?''[13] यह न्यायसंगत बात नहीं है।

महाभारत वेद व्यास द्वारा रचित एक व्यक्तिगत रचना है। इसी कारण अपने विचारों, तर्क एवं विमर्श को एकाधिकार के नाते लिखा गया है जिसके परिणामस्वरूप इस रचना में मानवीय सीमाओं का उल्लंघन भी पाया जाता है। विश्व के अनेक प्रख्यात साहित्यिक ग्रंथों से इसकी तुलना की जाए तो यही उनसे इक्कीस रचना बैठती है क्योंकि कोई भी विश्व का ग्रंथ इस महाभारत ग्रंथ की समानता करने की समर्थता नहीं जा सकता। नरेन्द्र कोहली ने 'महासमर' में सूर्योदय अथवा समुद्र के ज्वार जैसी दैवी रचनाओं को नित नये रूप में प्रदर्शित किया है। उनकी यही श्रेष्ठता विद्वानों को उनकी रचना के प्रति चिंतन करने

को विवश करती है, ''महासमर' की प्रत्येक घटना, इसका प्रत्येक पात्र प्रत्येक वाचन के समय नित नए रूप, रंग और दर्शन के साथ उपस्थित होते हैं।''[14] क्योंकि यहां कहीं भी गोपनीयता नहीं है, किसी बात को छिपाया नहीं गया है। सर्वत्र अभिव्यक्ति है सिर्फ अभिव्यक्ति अन्य कोई दूसरी बात नहीं।

नियति, प्रारब्ध आदि शब्दों को महाभारत में विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है क्योंकि अनेक स्थानों पर अनेक घटनाओं एवं प्रसंगों में नियमित के खेलों के विराट एवं क्रूर रूप को दर्शाया गया है। परन्तु इन सबके बावजूद भी सच्चाई को छिपाया नहीं जा सकता। वह तो किसी न किसी रूप में सामने आ ही जाती है। जहाँ तक मानव की भौतिक नियति का प्रश्न है वह भी अन्य जीवों के समान ही है। कहीं भी उसमें भिन्नता नहीं है, किन्तु मनुष्य का आत्मिक जीवन सम्पूर्ण भौतिक अविष्करणों का आत्मिक जीवन सम्पूर्ण भौतिक अविष्करणों से दूर दिखाई देता है जो एक चिन्मय शक्ति से बंधा है और महाभारत में भी इसी की झलक मिलती है। विदुर जी भी इस सच्चाई को बड़ी गहनता से अभिव्यक्त करते हैं, ''इस सृष्टि में प्रत्येक जीव को नष्ट होना ही है, किन्तु अपनी आयु भर उसे जीवित रहने का पूर्ण अधिकार है, और प्रकृति ने उसकी रक्षा की भरपूर व्यवस्था की है। वन में सिंह, कुंजर तथा अजगर, बलवान तथा जातक पशुओं के विद्यमान होते हुए भी मूषक, शशक तथाकथित जैसे लघु तथा अल्पबल वाले जीव, अपने पूर्ण समाज के साथ जीवित रहते हैं।''[15] इस तरह कोहली जी घटनाओं की तह तक जाकर उनकी सत्यता की प्रस्तुति करते हैं।

महाभारत में भीष्म पितामह और कर्ण दोनों की मनःस्थिति बड़ी ही विचित्र प्रकार की सतहों से ढ़की हुई थी। उनके हृदय में उनकी भावनाओं में क्या छुपा रहता है। स्पष्टरूपेण कुछ भी उनके अनुमान के बारे में कहा नहीं जा सकता। कोहली जी ने कर्ण की मनःस्थिति को बहुत ही खूबसूरती से रचा है। कर्ण के हृदय की आशंकाओं से शनैः शनैः जब इस तथ्य से आवरण हटता है कि वह सूत पुत्र नहीं है बल्कि वह पाण्डवों का ही भाई है। अर्थात् पाण्डव उसके भ्राता हैं। उस वक्त उसके मन में अपने भाइयों के प्रति भातृत्व भाव एवं सहानुभूति की उमंग उत्पन्न होती है किन्तु अर्जुन के प्रति उसके हृदय में पूर्वाग्रह रूपी द्वेष की मात्रा में कहीं भी कमी नहीं आती। उसके शब्दों में, ''क्या वह अपने छोटे भाई के यश में ही प्रसन्न नहीं हो सकता था, जैसे युधिष्ठिर और भीम ही लेते थे? ... नहीं उसने अपना सिर झटक दिया। ... अर्जुन न युधिष्ठिर को संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होने से रोक रहा था, न भीम को। वह केवल कर्ण को ही रोक रहा था। वह केवल कर्ण का अपराधी था, केवल कर्ण का। इसलिए उसे दण्डित करने का काम भी कर्ण का ही था।''[16] अतः प्रत्येक घटना के पश्चात् पात्रों की मनःस्थिति को चित्रांकन करना ही उपन्यासकार की महासमरीय विशेषता रही है।

इस तथ्य की आपूर्ति आवश्यक हो जाती है कि नरेन्द्र कोहली ने जो महाभारत कथात्मकता आधारित वृहद् उपन्यास 'महासमर' रचित किया है, उसकी महाकाव्य से तुलना करना अथवा न करना कितना तर्क संगत है अथवा नहीं। परन्तु शोध की दृष्टि से यह अनिवार्य हो जाता है कि 'महासमर' को महाकाव्य की संज्ञा से अभिहित किया जाए अथवा नहीं। महाकाव्य की व्याख्या की जा चुकी है जो महाकाव्य के स्वरूप का परिचय देती है। संस्कृत के आचार्यो द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के विषय में उसके लम्बे एवं वृहद् कथानक, उदात्त एवं महान गुणों से सुशोभित महानायक, महान चरित्रों पर आधारित पांच संधियों से युक्त, उत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ एवं अलंकृत शैली की महिमा में रचना जाने वाला ग्रंथ जिसमें जीवन के विविध रूप, रूवरूप एवं कार्यों की अभिव्यक्ति उल्लेख रूप में सर्गबद्ध की गई हो और जिसका मूल उद्देश्य 'सुखान्त' काव्य को दर्शाता हो वहीं महाकाव्य कहलाता है।

निष्कर्ष : साहित्य सदैव ही शाश्वत रहता है, उसके रूप-स्वरूप में परिवर्तन आ जाता है परन्तु उसकी सत्यता, तथ्यता एवं प्रमाणिकता में कहीं बदलाव नहीं आता, क्योंकि वह उद्देश्य मूलक एवं पर हितकारी होता है। यह समझने वाले पर निर्भर करता है कि वह उसको किस रूप में समझकर उसके अर्थ एवं उद्देश्य को अपने जीवन में ढालने का कितना सार्थक प्रयास करता है क्योंकि साहित्य की साहित्यिक प्रासंगिकता में सदैव ही सार्थक चेतना रहती है।

नरेन्द्र कोहली के वृहद् 'महासमर' उपन्यास की रचना आठ खंडों में 'महाभारत' के कथानक पर आधारित है। इन उपन्यासों की साहित्यिक प्रासंगिकता का अध्ययनोपरान्त इसकी विवेचना इसे प्रत्येक कसौटी पर खरा पाया गया है या यूं कहिए

की 'महासमर' उपन्यास साहित्यिक प्रासंगिकता के अन्तर्गत् अध्ययन करने पर यह हर कसौटी पर सही उतरता है। पौराणिक तथ्यों को अभिव्यक्त एवं चित्रित करते वक्त आधुनिकता का समावेश होना सहज की स्वाभाविकता का द्योतक है। इसे टाला नहीं जा सकता क्योंकि यह अपरिहार्य हो जाता है। यहाँ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आम आदमी की समस्याएँ प्रायः सभी युगों में समान होती हैं। वर्तमान की कोई घटना जब प्राचीन युग से अपना नाता जोड़ती है, तब वही घटना प्राचीन घटना समकालीन वेदना का एहसास करवाकर अपने वक्त की संवेदना की उपस्थिति दर्ज करवाकर अपनी क्षमता का बोध करा देती है। कोहली जी ने प्रत्येक घटना को 'महासमर' उपन्यास के आठों खंडों में उसके यथायोग्य स्थानानुसार एवं परिस्थितिनुसार संज्ञा स्वरूप चित्रित किया है जो घटना स्वरूप में और एहसास स्वरूप में पाठकों के हृदय को पूरी तरह जागृत कर सोचने और जानने को विवश कर देते है।

अतः नरेन्द्र कोहली जी ने 'महासमर' के अपने सभी आठों उपन्यासों में रोचकता के साथ प्रत्येक सन्दर्भ में स्पर्श करने का सार्थक प्रयास किया है। जैसा कि निर्धारित किया गया है कि महाकाव्य का कथानक लम्बा होना चाहिए तो इस कसौटी पर तो कथानक के लिहाज से 'महासमर' की कथानक महाकाव्य की समानता करता है परन्तु महाकाव्य की अन्य शर्तों पर यह महासमर महाकाव्य की कसौटी पर खरा उतरने में सफलता नहीं पाता। कोहली जी ने इस वृहद् उपन्यास की रचना में मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों, तत्सम शब्दावली आदि का प्रयोग काफी सफल रूप में किया है, जो इसकी साहित्यिक अस्मिता को विशेष स्थान प्रदान करता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पौराणिक ग्रंथों के कथानक पर आधारित साहित्य रचना करने वाले रचनाकार नरेन्द्र कोहली का यह उपन्यास 'महासमर' साहित्य की कसौटी पर खरा उतरता हैं क्योंकि उन्होंने इसकी रचनात्मक अभिव्यक्ति में मन की स्थिति को भली-भाँत्ति समझ और परखकर की है, जो अपने आप में श्रेष्ठता को प्रमाणित करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्री नवल जी (2005) : नालन्दा विशाल शब्दसागर, नई दिल्ली, आदीश, पृ. 1404
2. चातक गोविन्द (2010) : वृहद् हिन्दी पर्यायवाची शब्दकोष, तक्षशीला प्रकाशन अन्सारी रोड, दरियागंज (नई दिल्ली), पृ. 290
3. बाहरी डॉ. हरदेव (2025), हिन्दी शब्दकोष, बाहरी प्रकाशन दिल्ली, पृ. 644
4. मोहन नरेन्द्र (2017), बात से, बात चले, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. 72
5. सिंह पुष्पाल (2011), समकालीन कहानी : उद्धधृत : युगबोध का सन्दर्भ, सम्यक प्रकाशक, नई दिल्ली, पृ. 83
6. कोहली नरेन्द्र (1997), नरेन्द्र कोहली ने कहा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 87
7. वही, पृ. 87
8. कोहली नरेन्द्र (2000) महासमर : प्रत्यक्ष, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 252
9. वही, पृ. 252
10. कोहली नरेन्द्र (1988), महासमर : बन्धन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 130
11. वही, पृ. 130
12. वही, पृ. 40
13. कोहली नरेन्द्र (1988), महासमर : बन्धन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 40
14. वही, पृ. 194
15. कोहली नरेन्द्र (1988), महासमर : बन्धन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 75
16. कोहली नरेन्द्र (1999) महासमर : प्रत्यक्ष, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 383

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Women Entrepreneurship in Haryana -Contemporary Issues

Dr. Satyawan Jatain
Associate Professor
GPGCW Rohtak, Haryana

Abstract

Women entrepreneurship is central to inclusive economic growth and gender-equal development. In Haryana — a state with strong industrial clusters and high per-capita income but historically low female labour force participation — women entrepreneurs present both an opportunity and a policy challenge. This paper maps the contemporary status of women entrepreneurship in Haryana, synthesizing administrative registrations (Udyam), state-level self-help group mobilisation, labour-force trends, financial access indicators, and policy architecture. Key findings show that 128,245 women-led MSMEs were registered in Haryana on the Udyam portal during 2021–22 to 2023–24, reflecting rising formalisation but far from parity with men's entrepreneurship. While national campaigns and state policies have increased registrations (over 450,000 women registered nationally on Udyam campaigns in 2024), women-owned firms still receive a small share of MSME credit (RBI estimate: 7.09% of outstanding MSME credit to women-owned firms as on March 31, 2023). Haryana's rural mobilization via DAY-NRLM has created 59,000–60,000 self-help groups covering roughly 5.9 lakh households — an important pipeline for micro-enterprise development — but challenges remain: limited credit access, social norms and mobility constraints, low female labour force participation (relative to national trends), skill-market mismatch, digital/market access gaps, and infrastructure shortfalls. This paper uses official sources (Udyam/MoSPI/PIB/MSME), Haryana state documents, PLFS/analytical reports, and program data from HSRLM and Startup Haryana; provides an integrated diagnosis; and proposes evidence-based policy, financial, training, and institutional recommendations to scale sustainable women-led ventures in Haryana.

Keywords: Women entrepreneurship, Haryana, Udyam, MSME, SHG, female labour force participation, access to finance, Startup Haryana.

1. Introduction

Women entrepreneurs create jobs, diversify incomes, and can improve household welfare and resilience. India's national policy push to broaden women's participation in enterprise — via Udyam registration drives, PMEGP, MUDRA, CGTMSE concessions for women, and Startup India women-focused efforts — has grown in the last five years. Haryana occupies a distinct policy space: economically advanced in several indicators (high per-capita GSDP, sizeable manufacturing and services clusters) but with persistent gender gaps in labour participation and some conservative

social norms in parts of the state. This combination makes Haryana both promising for women entrepreneurs (market access, proximity to Delhi NCR) and challenging (gendered constraints on mobility, family responsibilities, and lower representation in formal wage employment).

This research article synthesizes the latest administrative and secondary data to examine who Haryana's women entrepreneurs are, where they operate, what constraints they face, the state's enabling ecosystem, and what policy interventions can accelerate sustained, higher-quality women entrepreneurship. The analysis draws on Udyam registration data (state-wise women-led MSME numbers), Haryana State Rural Livelihoods Mission (HSRLM) SHG statistics, central government MSME reports, labour-force surveys and interpretive research on female labour force participation, and Haryana government policy documents.

Sources and key data used are explicitly cited throughout; the most load-bearing data points (Udyam state counts, SHG coverage, national MSME/women figures, financial inclusion metrics) are drawn from government releases and institutional reports.

2. Context: Haryana at a glance

Demographics and education. According to Census-derived and health system summaries, Haryana's overall literacy rose from 67.9% in 2001 to 75.6% in 2011; female literacy in 2011 was reported at 65.9% (male 84.1%). While literacy has continued to improve since 2011, gender gaps persist.

Economic profile. Haryana's economy is driven by services (including IT/ITES clusters in Gurugram), manufacturing (automotive components, white goods, machinery), and agriculture/dairy. State estimates and budget analysis indicate a GSDP growth trajectory and relatively high per capita GSDP compared to the national average; the state's sectoral composition and proximity to Delhi provide demand spillovers and market access that are favourable for entrepreneurs.

Gendered labour market. National data (PLFS and analytic reports) show a recent rise in female labour force participation nationally (notably in rural areas); still, northern states including Haryana have lagged on female labour force participation. Multiple analytical reports (Economic Advisory Council to the PM, IWWAGE, PLFS summaries) highlight that Haryana's female labour participation remains low relative to the national average and that women's employment in the state is concentrated in self-employment and informal work.

3. Data sources and methodology

1. **Administrative registration data** — Udyam registration counts and Ministry of Statistics state tables that list women-owned MSMEs by state and year (Udyam portal aggregates for the period 01/07/2020 to 31/10/2024; state-wise breakdown used for Haryana).
2. **State program data** — Haryana State Rural Livelihoods Mission (DAY-NRLM) data on the number of self-help groups (SHGs), households covered, and revolving/community investment funds disbursed.
3. **Central government reports** — Ministry of MSME annual report (2024-25) on women entrepreneur registrations and scheme statistics; RBI statements on the share of MSME outstanding credit going to women-owned firms.

4. **Labour market analyses** — PLFS and analytic reports (IWWAGE, EAC-PM) for female labour force participation and composition of women's employment.
5. **State policy documents** — Startup Haryana & Department of Industries and Commerce pages describing the state's startup policy and women entrepreneurship focus.
6. **Supplementary academic & institutional work** — recent state studies and papers on female workforce participation, SHG functioning, and Haryana-specific gender labour analyses.

Methodological notes: This is not primary field research. Where Udyam counts and program figures are cited, the paper uses the official cut-offs and reporting periods provided by the agencies (e.g., Udyam data for 2021–22 to 2023–24 as released in the PIB/MoSPI tables). For labour-force trends, PLFS aggregated metrics and reputable secondary analyses are used; when precise state-level indicators are not available in free-format releases, careful interpretation from IWWAGE or EAC-PM reports is used.

4. Status of women entrepreneurship in Haryana: numbers and patterns

4.1 Udyam / MSME registration: formalisation trends

The Government of India's Press Information Bureau reported state-wise Udyam registration counts for women-led MSMEs across three financial years. Haryana's women-led Udyam registrations were:

- 2021–22: **24,575**
- 2022–23: **41,925**
- 2023–24: **61,745**

Total (2021–24): 128,245 women-led MSMEs registered in Haryana.

These figures show rapid year-on-year growth in formal registration of women entrepreneurs in Haryana. Nationwide, the Ministry of MSME reported several awareness campaigns resulting in hundreds of thousands of women registering on Udyam; MSME annual reporting noted the registration of over **450,000 women entrepreneurs** on the Udyam portal in awareness drives as of December 31, 2024 (national figure).

4.2 SHGs and micro-enterprise pipeline

HSRLM (DAY-NRLM in Haryana) documents indicate substantial grassroots mobilisation:

- **Self-Help Groups (SHGs) formed: 59,000**
- **Households covered: 5.9 lakh households.**
- Revolving Fund (RF) and Community Investment Fund (CIF) disbursed to tens of thousands of SHGs (RF: Rs. 65.24 crore to 51,891 SHGs; CIF: Rs. 393.93 crore to 32,347 SHGs; HSRLM site summary).

SHGs are an important channel for women to begin micro-enterprises, access small savings, and build financial identity that later enables credit access.

4.3 Credit and financial access

Despite growing formal registrations, credit flows to women-owned MSMEs remain limited in relative

terms. RBI analysis referenced by PIB estimated that the **share of women-owned MSMEs in outstanding MSME credit stood at 7.09% as of March 31, 2023**. The CGTMSE scheme provides concessions to women (higher guarantee cover and lower fees), but the distribution of bank credit still trails male counterparts.

4.4 Startups and innovation landscape

State startup policy (Startup Haryana and Startup India) includes explicit emphasis on promoting women entrepreneurship and providing incubation/mentorship. Recent state initiatives (e.g., entrepreneurship events, district centres of excellence) aim to increase the pipeline of women-led startups; media reporting in mid-2025 stated Haryana had over **9,000 recognized startups**, with a claim that **45%** were women-led (local news reporting of state announcements). These policy and ecosystem efforts strengthen opportunities for scalable women entrepreneurs in sectors such as agri-tech, digital services, and artisanal manufacturing.

5. Major contemporary issues and constraints

Despite encouraging registration trends, multiple interlinked constraints shape the quality, scale, and sustainability of women entrepreneurship in Haryana.

5.1 Low and uneven female labour force participation (LFPR)

While national PLFS data show an encouraging rise in FLFPR in recent years (with notable rural increases), Haryana continues to show relatively low female participation compared to many other states. Analyses by EAC-PM and IWWAGE highlight that northern states, including Haryana, have lagged on this metric; low LFPR reduces the pool of women with work experience and market exposure who might become entrepreneurs. Social norms, marriage-related labour withdrawal, and household responsibilities are major drivers.

5.2 Access to formal credit and financial instruments

Administrative data underline the skew: women-owned MSMEs represent a growing share of registrations but a small share of outstanding credit (7.09% as per RBI-referenced analysis). Barriers include lack of formal credit history for many micro-enterprises, perceived credit risk by banks, and complexities in collateral or documentation. Although CGTMSE offers higher guarantee cover and reduced fees for women, uptake and bank lending behaviour still limit effective credit flow.

5.3 Scale and sectoral composition (concentration at micro scale)

A large share of women entrepreneurs begins in micro, home-based, or service sectors (dairy, food processing, tailoring, agri-value add, handicrafts). While these sectors provide livelihood and local incomes, they often feature thin margins and informal market linkages, constraining firm growth into MSME small/medium categories. Formalisation via Udyam is necessary but insufficient unless market linkages, branding, and scale support are present.

5.4 Skill-market mismatch and management capacity

Entrepreneurship requires business development, financial literacy, digital skills, and market-level capacities (pricing, procurement, compliance). Many women starting micro-enterprises lack structured access to such training, and transitions from SHG micro-enterprise to registered MSME or startup often fail due to managerial and marketing capacity gaps. State incubation and training programs are

being expanded but need scaling and tailoring for women.

5.5 Mobility, social norms, and safety concerns

For many women in Haryana, mobility restrictions (socio-cultural norms, safety concerns, lack of flexible transport) affect access to markets, customers, and training. This is an especially acute constraint for women entrepreneurs from rural and semi-urban districts; digital solutions can partially overcome these barriers but require connectivity and digital literacy. Several state initiatives aim at localized incubation and district-level support to reduce travel burdens.

5.6 Digital divide and market access

While Haryana has strong urban digital clusters (e.g., Gurugram), many women entrepreneurs (especially in rural districts) face limited digital know-how, constrained access to e-commerce channels, and inadequate logistics to reach urban markets. Training programs and aggregator partnerships could bridge this gap, but program scale remains a challenge.

5.7 Regulatory and compliance costs

While Udyam registration simplifies formalisation, regulatory compliance (GST, labour rules for employees, formal bookkeeping) can be burdensome for small women-led firms. Without simplified compliance routes and affordable advisory services, many micro enterprises remain informal or formalise only partially.

6. Positive developments and enabling factors

Despite the constraints, several positive trends and interventions bolster women entrepreneurship prospects in Haryana.

6.1 Growing Udyam registrations & formalisation

The surge in Udyam registrations by women in Haryana (24,575 '! 41,925 '! 61,745 across three years) indicates increasing awareness and formalisation, which is a first step toward access to government procurement, credit, and official schemes.

6.2 Strong grassroots SHG network

HSRLM's coverage of 59,000 SHGs and hundreds of thousands of households creates a substantial micro-enterprise development pipeline. RF and CIF disbursals demonstrate that financial instruments at group level are being deployed. SHGs are often the first organizational step toward group enterprises, producer companies, and market access.

6.3 Policy support (state & national)

Startup Haryana, national Startup India women initiatives, MSME awareness campaigns, and targeted guarantee fee concessions all provide supportive policy tailwinds. State announcements focusing on women entrepreneurship, incubation support, and district centres potentially decentralize access.

6.4 Increasing recognition and visibility

Publicity around women-led start-ups and state events increases visibility, fosters role models, and can change perceptions; media reports and CM-led entrepreneurship initiatives can accelerate the "aspirational" effect among potential women entrepreneurs.

7. Case illustrations and program examples

1. **Udyam/Yashasvini campaigns (national MSME drive)** — large awareness drives that contributed to hundreds of thousands of women registering on Udyam (MSME Annual Report notes over 450k women registrations tied to campaigns). Increased registration unlocks access to schemes and procurement preferences.
2. **HSRLM / DAY-NRLM SHGs** — SHGs receive RF (Revolving Fund) and CIF (Community Investment Fund) and training; multiple success stories on the HSRLM site show women leveraging CIF + bank loans to start micro-enterprises (e.g., mustard oil pressing, jute bag production). HSRLM's data: 59,528 SHGs formed, 5.93 lakh households covered, RF and CIF disbursed reaching tens of thousands of SHGs.
3. **Startup Haryana and district incubators** — the state startup policy and ongoing initiatives target women with incubator support, rental subsidies for incubator space, and mentorship; the policy explicitly lists promotion of women entrepreneurship as an objective.
4. **CGTMSE concessions and PMEGP support** — central interventions offering higher guarantee cover for women and additional PMEGP margin money for special categories (including women) provide financial incentives to enter micro and small enterprise space.

8. Limitations of available data and research gaps

1. **Administrative registrations do not equal active businesses.** Udyam registration numbers indicate formal registration but do not by themselves show survival, employment created, turnover, or growth trajectories. Further micro-level surveys are necessary to track operational status.
2. **State LFPR detail and segmentation.** Labour force surveys (PLFS) provide national and often state aggregates, but district-level or gender-disaggregated longitudinal tracking of entrepreneur transitions (from SHG to MSME to SME) is limited. IWWAGE and EAC-PM provide useful analyses but more Haryana-specific field data would strengthen policy design.
3. **Credit flows vs. outcomes.** RBI and central analyses capture outstanding credit shares but granular data on loan sizes, interest rates, NPA rates for women-owned enterprises in Haryana are not centrally published in an easily linkable form — restricting deep causal analysis on credit constraints.
4. **Program impact evaluation gaps.** Many state and central programs (awareness campaigns, incubator subsidies, SHG financing) lack rigorous, independent impact evaluations specific to Haryana that measure firm survival, revenue growth, or job creation among women entrepreneurs.

9. Policy and program recommendations

Recommendations below are organized into short-term (within 12–24 months) and medium/long-term (2–5 years) interventions. They are grounded in evidence about constraint pathways: finance, skills, markets, norms, infrastructure.

9.1 Improve access to tailored finance

- **Tiered credit products for women micro & small entrepreneurs:** Design micro-credit and growth credit lines that match enterprise needs (working capital vs. capex), with simplified documentation for SHG-backed enterprises. Use HSRLM SHG records to pre-screen and fast-track loan adjudication.
- **Leverage CGTMSE with proactive bank outreach:** While CGTMSE increases guarantee cover for women, banks need proactive promoter engagement and gender-sensitised scoring to increase credit sanction rates. A "women MSME accelerator fund" — a state seed fund blended with private backing — could provide risk capital alongside bank credit.

9.2 Strengthen market access and value chains

- **Aggregator partnerships & e-commerce linkages:** Facilitate tie-ups between SHGs/ women MSMEs and major e-commerce platforms, city-based retail chains, and institutional procurement. Provide logistics subsidies or collection-centres in districts to reduce the cost of access to national markets.
- **Public procurement quotas enforcement:** Use Haryana's public procurement to source from certified women-owned MSMEs (as national policy encourages). Map state procurement needs (e.g., institutional food, garments) and create forward contracts for women-producer groups.

9.3 Scale capacity building & incubation

- **District-level Women Entrepreneurship Hubs:** Convert HSRLM VO/CLF structures into local hubs offering business development services (BDS), digital skills, certification assistance, and linkages to incubators.
- **Tailored curricula:** Incubation and training modules must be sector-specific (food processing, dairy value chain, handicrafts, agri-tech) and delivered in local languages with flexible timings to accommodate women's household responsibilities.

9.4 Address mobility, safety and normative constraints

- **Localized market days & safe transport:** Promote weekly market days for women producers in panchayats and subsidized women-only transport routes for clusters of women entrepreneurs.
- **Role model campaigns & male ally engagement:** State and district campaigns with successful women entrepreneurs and male allies (e.g., husbands / community leaders) can help change social norms.

9.5 Data & evaluation

- **Create a Haryana Women-Entrepreneur Dashboard:** Integrate Udyam registration, district SHG counts, credit disbursal to women, turnover and survival data. This dashboard enables targeted outreach and evidence-based policy.
- **Impact evaluations:** Invest in randomized/evaluation studies of key interventions (e.g., bundling BDS + credit vs. credit alone) to generate state-specific evidence.

9.6 Institutional coordination

Haryana State Entrepreneurship Commission (proposed): The state's recent announcements of an entrepreneurship commission (Aug 2025) create an opportunity to have a dedicated body to coordinate across Departments (Industries, Women & Child, Rural Development, Skill Development, and Finance) with a women-entrepreneurship cell and measurable goals (e.g., % increase in women-led startups, credit share targets).

10. Roadmap for action: prioritized interventions

Short term (0–12 months)

- Launch district market linkage pilots (3–5 districts) connecting SHG clusters to urban wholesale buyers and e-commerce channels.
- Rapid bank-HSRLM bank fairs: pre-approved SHG lists + KYC camps to fast-track small loans.
- State-sponsored "Women Entrepreneurs Bootcamp" (monthly) for scaling micro-enterprises to small MSMEs (focus: bookkeeping, pricing, digital payments).

Medium term (12–36 months)

- Establish women entrepreneurship hubs in every district (co-located with existing HSRLM VO infrastructure).
- Set up state matching fund to co-invest with banks/angel funds for women-led startups.
- Enforce women-supplier targets in state procurement (with monitoring dashboard).

Long term (3–5 years)

- Expand incubator-to-fund pipelines: successful women entrepreneurs as fund managers/ mentors.
- Create a Haryana Women Enterprise Growth Index to measure growth across districts and inform resource allocation.

Embed entrepreneurship skill-building in higher secondary & vocational curricula with mandatory exposure to district incubation.

11. Conclusions

The analysis of women entrepreneurship in Haryana reveals a complex interplay of opportunity, growth, and persistent constraints. On the one hand, Haryana has demonstrated encouraging trends: rapid growth in Udyam registrations by women-led MSMEs, expansion of self-help groups under DAY-NRLM, and the emergence of a vibrant startup culture where women are increasingly visible. These developments signal that women are no longer passive participants in the state's economic structure but are gradually assuming the role of active change agents in enterprise creation, job generation, and innovation. The fact that more than 128,000 women-led enterprises have been formally registered in just three years marks a significant departure from the historical invisibility of women's economic contributions in Haryana.

At the same time, the findings highlight deep-rooted structural challenges that continue to restrict

women's entrepreneurial potential. Despite increased registrations, women-led enterprises remain concentrated in micro and small-scale ventures, often restricted to traditional, low-growth sectors such as food processing, tailoring, handicrafts, and retail. These enterprises, while vital for household income diversification, rarely achieve the scale necessary to contribute meaningfully to broader industrial growth or exports. Moreover, the financial ecosystem still remains gender-skewed: only about 7% of total MSME credit flows to women-owned firms, reflecting both supply-side hesitancy among banks and demand-side challenges rooted in limited collateral ownership, lack of credit history, and gender bias in lending practices.

Labour force participation statistics further complicate the picture. Haryana continues to rank below the national average in female labour force participation, which constrains the pool of potential entrepreneurs. Low female educational attainment in rural areas, limited mobility due to socio-cultural norms, and persistent safety concerns act as invisible barriers that discourage women from pursuing entrepreneurial opportunities. Even when women manage to start businesses, they often face difficulties in scaling up due to inadequate exposure to markets, limited access to technology, and lack of structured mentoring support.

Yet, the study also identifies several bright spots that can be leveraged to accelerate change. The self-help group model has created a strong foundation for grassroots entrepreneurship, mobilizing nearly six lakh rural households and providing them with credit and financial literacy. Haryana's integration into the NCR economy and its proximity to globalized clusters in Gurugram and Faridabad also present unmatched opportunities for women entrepreneurs in sectors such as IT-enabled services, e-commerce, and light manufacturing. Programs like Startup Haryana and central government initiatives such as PMEGP, MUDRA, and CGTMSE have opened new pathways for women to access capital and incubation facilities, though uptake remains uneven.

From a policy perspective, the evidence suggests that while schemes are plentiful, their impact is diluted by lack of convergence, weak implementation at the district level, and poor monitoring mechanisms. What is required is not merely more programs but sharper execution strategies that directly address the lived realities of women entrepreneurs — be it through simplified credit processes, market access facilitation, or family sensitization campaigns to ease mobility restrictions.

In conclusion, women entrepreneurship in Haryana stands at a critical crossroads. The state possesses the economic dynamism, industrial clusters, and policy frameworks necessary to foster a robust ecosystem of women-led enterprises. However, without addressing the structural constraints of finance, skills, mobility, and cultural norms, the promise of women entrepreneurship will remain under-realized. A forward-looking roadmap must therefore focus on (i) expanding women's access to affordable credit through specialized funds and guarantees, (ii) integrating digital and market access into enterprise development strategies, (iii) building district-level entrepreneurship hubs with incubation and mentorship services, and (iv) institutionalizing gender-sensitive monitoring of entrepreneurship policies.

If Haryana succeeds in tackling these challenges, it can transform its women entrepreneurs from marginal participants in small-scale enterprises to central actors in innovation, manufacturing, and global value chains. The potential dividends extend beyond economics: increased women's entrepreneurship can generate employment for other women, alter social attitudes towards gender roles, and create a virtuous cycle of empowerment that strengthens the state's development trajectory.

Ultimately, the success of women entrepreneurs in Haryana is not just a matter of economic growth but of social justice, gender equality, and sustainable development.

References

1. Press Information Bureau, Government of India — "WOMEN-LED MSMEs" (Press release; July 22, 2024). State-wise Udyam counts (2021–22 to 2023–24) including Haryana total (128,245).
2. Ministry of Micro, Small & Medium Enterprises — *MSME Annual Report 2024–25* (women entrepreneur registration and awareness campaigns — >450,000 women registered on Udyam portals via campaigns as of Dec 31, 2024).
3. Ministry of Statistics & Programme Implementation (MoSPI) — State-wise tables and Udyam aggregates (Statewise Women Owned MSMEs Registered & Classified under Udyam; site listing and downloadable tables).
4. Haryana State Rural Livelihoods Mission (HSRLM / DAY-NRLM) — SHG statistics and RF/CIF disbursals (HSRLM website, SHG formed H"59,528; households covered H"593,212; RF & CIF figures).
5. EAC-PM (Economic Advisory Council to the Prime Minister) — *Female Labour Force Participation* working paper and analyses on state variation and trends (analysis that highlights low female LFPR in Punjab and Haryana).
6. IWWAGE (Initiative for What Works to Advance Women and Girls in the Economy) — trends and state factsheets on female labour force participation and Haryana factsheet (detailing FLFPR trends and urban/rural distinctions).
7. Startup Haryana / Department of Industries and Commerce, Government of Haryana — Haryana Startup Policy and program pages (policy objectives including promotion of women entrepreneurship; state initiatives).
8. Times of India — "Haryana to set up state entrepreneurship commission: CM" (Aug 21, 2025) — reporting CM's statements about startups and women-led shares (context on state entrepreneurship commission announcement).
9. Haryana Economic Survey / Department of Economic & Statistical Affairs (Haryana) and PRS India — GSDP, per-capita and sectoral context for Haryana's economy (Economic Survey: sectoral shares and GSDP figures; PRS budget analysis).

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

ग्रामीण भारत में शैक्षिक असमानता, राजनीति और आई.सी. टी. की चुनौतियाँ

डॉ. एम.एम. अंसारी
राजनीति विज्ञान
घिस्सुपुरा-हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

शोध सार- (Abstract)

प्रस्तुत शोध में यह बताया जायेगा कि ग्रामीण भारत में शिक्षा लंबे समय से असमानताओं और चुनौतियों से किस प्रकार घिरी हुई है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा आज भी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चुनौतियों का सामना कर रही है। यह असमानता केवल भौगोलिक दूरी, विद्यालयी ढांचे की कमी या आर्थिक संसाधनों की विषमता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह राजनीतिक इच्छाशक्ति, नीतिगत प्राथमिकताओं और स्थानीय प्रशासनिक व्यवस्थाओं से भी गहराई से प्रभावित होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के विकास की गति किस प्रकार धीमी होने के कारण शैक्षिक अवसरों की समानता आज भी एक दूर का लक्ष्य प्रतीत होती है।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) ने शिक्षा के क्षेत्र में नई संभावनाओं को जन्म दिया है। आईसीटी ऑनलाइन प्रशिक्षण जैसे माध्यम ग्रामीण शिक्षा की गुणवत्ता और पहुँच को सुधारने की क्षमता रखते हैं लेकिन, डिजिटल अवसंरचना की कमी, संसाधनों का असमान वितरण और डिजिटल साक्षरता का अभाव किन कारणों से आई०सी०टी० के प्रभाव को सीमित कर देता है। राजनीतिक इच्छाशक्ति और नीति-निर्माण की दिशा इस बात को तय करती है कि आईसीटी ग्रामीण शिक्षा में अवसर प्रदान करने का साधन बनेगी या असमानताओं को और गहरा करेगी।

इस शोध में शैक्षिक असमानता, राजनीति और आईसीटी के बीच अंतर्संबंधों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन यह रेखांकित करता है कि ग्रामीण शिक्षा में वास्तविक सुधार किस प्रकार संभव है जब आईसीटी का प्रयोग केवल तकनीकी हस्तक्षेप के रूप में न होकर राजनीतिक प्रतिबद्धता, नीति-समन्वय और सामाजिक सहभागिता के साथ किया जाए।

मुख्य शब्द (Keywords) शैक्षिक असमानता, ग्रामीण शिक्षा, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, राजनीति, डिजिटल साक्षरता, नीति हस्तक्षेप

प्रस्तावना (Introduction)

भारत गाँव का देश है जिसकी पहचान अपनी अलग संस्कृति के रूप में होती है और अलग ही समस्याएँ भी है, फिर चाहे शैक्षिक हो, राजनीतिक हो या तकनीकी। भारत में शिक्षा का क्षेत्र ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में असमान रूप से विकसित हो रहा है। ग्रामीण भारत में शिक्षा की स्थिति आज भी संसाधनों की कमी, भौगोलिक दूरी, अपर्याप्त शैक्षिक संरचना, उपकरणों का मंहगा होना और सामाजिक बाधाओं से प्रभावित है। शैक्षिक असमानता केवल विद्यालयों की भौतिक स्थिति या शिक्षकों

की संख्या तक सीमित नहीं है, बल्कि यह राजनीतिक निर्णय, नीतिगत प्राथमिकताएँ और स्थानीय शासन संरचनाओं से भी गहराई से जुड़ी हुई है। गत दशक में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी ने शिक्षा के क्षेत्र में नए अवसर प्रदान किए हैं। विभिन्न प्रकार के डिज़िटल उपकरण ग्रामीण शिक्षा में समान अवसर और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने की दिशा में महत्वपूर्ण साबितहो सकते हैं। फिर भी, आईसीटी के प्रभाव में राजनीतिक हस्तक्षेप की कमी, वित्तीय असमानता और डिजिटल साक्षरता की कमी जैसी बाधाएँ उसे पूरी तरह प्रभावी होने से रोकती हैं।

इस संदर्भ में, राजनीति विज्ञान के दृष्टिकोण से यह अध्ययन ग्रामीण शिक्षा में आईसीटी की भूमिका, शैक्षिक असमानता के कारण और राजनीतिक कारकों के प्रभाव का विश्लेषण करता है। यह शोध यह समझने का प्रयास करता है कि कैसे राजनीतिक इच्छाशक्ति, नीतिगत प्राथमिकताएँ और तकनीकी संसाधनों का समन्वय ग्रामीण शिक्षा में सुधार के लिए आवश्यक है। ग्रामीण शिक्षा में आईसीटी आधारित हस्तक्षेप की समीक्षा करने और राजनीतिक प्रभाव के साथ इसे जोड़ने की आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि यह न केवल सैद्धांतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि नीति निर्माण और योजना क्रियान्वयन के लिए भी मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है। इसके माध्यम से यह शोध ग्रामीण शिक्षा में सुधार के लिए संभावित रणनीतियों और सशक्त नीति हस्तक्षेपों की पहचान करता है।

उद्देश्य (Objectives)

इस शोध का उद्देश्य ग्रामीण भारत में शैक्षिक असमानता की प्रकृति और उसके कारणों को समझना है। अध्ययन राजनीति विज्ञान के परिप्रेक्ष्य से यह विश्लेषण करता है कि शिक्षा-नीतियों और राजनीतिक हस्तक्षेपों का ग्रामीण शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है। साथ ही, इसमें यह मूल्यांकन किया गया है कि सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी किस हद तक ग्रामीण शिक्षा में असमानताओं को कम करने में सहायक हो सकती है। अंततः यह शोध शैक्षिक असमानता, राजनीति तथा आईसीटी के बीच के संबंधों को स्पष्ट करते हुए नीति-निर्माताओं और शैक्षिक योजनाकारों के लिए उपयुक्त सुझाव प्रस्तुत करता है।

शोध पद्धति (Research Methodology)

इस शोधपत्र में ग्रामीण भारत में शैक्षिक असमानता, राजनीति तथा सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी से संबंधित चुनौतियों का विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में केवल द्वितीयक स्रोतों पर आधारित पद्धति अपनाई गई है। इसके अंतर्गत विभिन्न शोध ग्रंथों, शैक्षिक रिपोर्टों, सरकारी प्रकाशनों, पत्र-पत्रिकाओं तथा इंटरनेट पर उपलब्ध प्रामाणिक सामग्री का उपयोग किया गया है। साथ ही, शिक्षा, राजनीति और आईसीटी के अंतर्संबंधों पर पूर्व में किए गए अध्ययनों की समीक्षा कर तुलनात्मक व विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। इस पद्धति से विषय की गहन समझ विकसित करने और ग्रामीण भारत की चुनौतियों को समग्र रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

ग्रामीण पृष्ठभूमि में शिक्षा (Education in Rural Areas)

शोध से संभंधित विभिन्न विद्वानों व उनकी रचनाओं का गहन अध्यन व विश्लेष्ण किया गया है, इससे ग्रामीण शिक्षा की स्थिति स्पष्ट होती है और किस प्रकार वर्तमान अध्ययन पूर्ववती अध्ययनों से अलग और प्रासंगिक है।

अमर्त्य सेन (1999) ने अपनी प्रसिद्ध कृति "विकास के रूप में स्वतंत्रता" में यह स्पष्ट करते हैं कि विकास केवल आर्थिक वृद्धि का नाम नहीं है, बल्कि यह लोगों की स्वतंत्रताओं को बढ़ाने की प्रक्रिया है। उनके अनुसार पाँच प्रकार की स्वतंत्रताएँ राजनीतिक स्वतंत्रता, आर्थिक सुविधाएँ, सामाजिक अवसर (विशेषकर शिक्षा और स्वास्थ्य), पारदर्शिता की गारंटी तथा सुरक्षा- वास्तविक विकास के आधार हैं। इनमें शिक्षा को केंद्रीय स्थान दिया गया है, क्योंकि शिक्षा न केवल व्यक्तिगत क्षमताओं का विकास करती है, बल्कि यह अन्य सभी स्वतंत्रताओं तक पहुँचने का माध्यम भी बनती है।[1] ग्रामीण भारत के संदर्भ में यह दृष्टिकोण अत्यंत प्रासंगिक है, जहाँ शैक्षिक असमानता लोगों को राजनीतिक भागीदारी, आईसीटी के अवसरों

और सामाजिक-आर्थिक प्रगति से वंचित कर देती है। इस प्रकार, सेन का विचार स्पष्ट करता है कि यदि ग्रामीण शिक्षा को मजबूत नहीं किया गया तो लोकतांत्रिक समानता और समग्र विकास अधूरा ही रहेगा।

सुभाष कश्यप (2004) ने अपनी पुस्तक 'हमारा संविधान : भारत का संविधान और संवैधानिक विधि' में भारतीय संविधान की संरचना, कार्यप्रणाली और संवैधानिक प्रावधानों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया है। जिसमे विशेष रूप से शिक्षा, सामाजिक न्याय और समानता के अधिकारों को संवैधानिक दृष्टि से समझाया है। उनके अनुसार शिक्षा केवल एक सामाजिक आवश्यकता नहीं है, बल्कि यह नागरिकों के मौलिक अधिकारों और लोकतांत्रिक भागीदारी को सुनिश्चित करने का माध्यम भी है।[2] ग्रामीण भारत के संदर्भ में यह पुस्तक दर्शाती है कि संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद शिक्षा की वास्तविक पहुँच और गुणवत्ता में असमानता बनी हुई है। कश्यप के विचार यह स्पष्ट करते हैं कि शिक्षा और राजनीतिक जागरूकता के बीच गहरा संबंध है, और ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा सुधार के बिना सामाजिक तथा राजनीतिक समानता अधूरी रहती है।

रामचंद्र गुहा (2007) 'गांधी के बाद का भारत' में स्वतंत्र भारत के इतिहास का एक विस्तृत और गहन विश्लेषण प्रस्तुत करते है। यह पुस्तक भारतीय लोकतंत्र की जटिलताओं, विविधताओं और संघर्षों को समझने के लिए महत्वपूर्ण स्रोत मानी जाती है। गुहा ने इस कृति में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के भारत की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक धारा का सम्यक अध्ययन किया है। उन्होंने भारतीय समाज की विविधता, धर्मनिरपेक्षता, जातिवाद, और क्षेत्रीय असंतुलन जैसे मुद्दों पर प्रकाश डाला है। गुहा का यह कार्य न केवल इतिहासकारों के लिए, बल्कि समाजशास्त्रियों, राजनीतिक विश्लेषकों और सामान्य पाठकों के लिए भी अत्यंत उपयोगी है। यह पुस्तक भारतीय समाज की जटिलताओं और उसकी प्रगति की यात्रा को समझने में सहायक है।[3]

शशि भूषण (2014) अपनी पुस्तक 'ग्रामीण भारत में शिक्षा और समाज' में बताते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में बच्चों को शिक्षा के समान अवसर नहीं मिलते, जिससे उनकी सामाजिक और आर्थिक प्रगति प्रभावित होती है। ग्रामीण स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं का अभाव है। कई स्कूलों में कक्षाओं की संख्या अपर्याप्त है।[4]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) ने भारतीय शिक्षा प्रणाली में व्यापक सुधार और नवाचार के दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। इस नीति में ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की पहुँच बढ़ाने, गुणवत्ता सुधारने और डिजिटल शिक्षा को सुलभ बनाने पर विशेष ध्यान दिया गया है। NEP 2020 का यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्ति का माध्यम नहीं है, बल्कि सामाजिक समानता, आर्थिक विकास और राजनीतिक जागरूकता के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। ग्रामीण भारत में अभी भी डिजिटल डिवाइड और संसाधनों की कमी शैक्षिक असमानता को बढ़ा रही है, और छम्च् 2020 की सिफारिशें इन चुनौतियों को दूर करने का मार्ग दिखाती हैं।[5]

UNESCO (2022) की 'ग्लोबल एजुकेशन मॉनिटरिंग रिपोर्ट' में यह दर्शाया गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की पहुँच और गुणवत्ता में असमानताएँ व्यापक रूप से मौजूद हैं। रिपोर्ट के अनुसार डिजिटल शिक्षा और आईसीटी के अवसरों तक ग्रामीण बच्चों की सीमित पहुँच शिक्षा में अंतर को और बढ़ाती है। इसके अलावा, लैंगिक असमानता, आर्थिक पिछड़ापन और अवसंरचना की कमी जैसी समस्याएँ भी ग्रामीण शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं।[6] यह रिपोर्ट स्पष्ट करती है कि शिक्षा के क्षेत्र में सुधार के बिना ग्रामीण भारत में सामाजिक और आर्थिक समानता स्थापित करना कठिन है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009) भारत में शिक्षा का अधिकार संविधान द्वारा प्रत्येक 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का मौलिक अधिकार प्रदान करने का अधिकार रूप देता है। शिक्षा के इस अधिकार को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009श कहा जाता है, जो 1 अप्रेल 2010 से प्रभावी है फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षिक असमानता एक गंभीर चुनौती बनी हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की स्थिति शहरी क्षेत्रों की तुलना में कहीं अधिक विकट है, जहां संसाधनों की कमी, सामाजिक-आर्थिक कारक और सांस्कृतिक भिन्नताएँ प्रमुख बाधाएँ पैर पसारे हुए है।

संरचनात्मक और भौतिक अवसंरचना की कमी- एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में स्कूल न जाने वाले बच्चों की

संख्या शायद पचानवे करोड़ से भी ज़ूयादा है। इस आँकड़ा का एक बड़ा हिस्सा ग्रामीण भारत में है। यह बेहद चिंताजनक आँकड़ा तब और भी भयावह लगता है जब हम जानते हैं कि ग्रामीण भारत में हाई स्कूल डिप्लोमा हासिल करने वाले बच्चों में लड़कों का प्रतिशत कहीं ज़ूयादा है, जिससे लड़कियों को, ख़ासकर लड़कियों को, नज़रअंदाज़ किया जाता है और बुनियादी शिक्षा से वंचित रखा जाता है। फिर भी, छठी कक्षा के आधे से ज़ूयादा छात्र तीसरी कक्षा की किताब पढ़ने में भी सक्षम नहीं हैं। वे बुनियादी गणित के सवाल भी मुश्किल से हल कर पाते हैं।[7] ग्रामीण भारत में शिक्षा की असमानता का अध्ययन करने के लिए विभिन्न विद्वानों और शोधकर्ताओं ने अपने दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं। शिक्षा में असमानता का प्रभाव केवल व्यक्तिगत विकास पर नहीं बल्कि सामाजिक और राजनीतिक सहभागिता पर भी पड़ता है।

उत्तराखंड के राजकीय प्राथमिक स्कूलों में अधिकांश दो कमरे होते है जिसमे कक्षा 1 से 5 तक के बच्चे बैठाये जाते है इन स्कूलों में सामान्यतः एक सहायक अध्यापक और एक प्रिसिपल होता है सहायक अध्यापक बच्चो को घेरे रहता है और प्रिंसिपल कागज़ी काम पूरा करता रहता है मै जिसका स्वयं प्रत्यक्ष प्रमाण हूँ। दो कमरों के साथ एक स्टाफ रूम होता है जिसमे 50 से 70 प्रकार के रजिस्टर रखे जाते है उसी रूम में प्रिंसिपल साहब को इन रजिस्टर में विभन्न प्रकार कि एंट्री करनी होती है उसी स्टाफ रूम को ही स्टोर के रूप में भी इस्तमाल किया जाता है जिसमे मध्यान भोजन की सामग्री व खाने आदि का अन्य सामान रखा जाता है और विद्यार्थियों के बैठने के लिए पर्याप्त डेस्क-बेंच नहीं हैं। गमी के मौसम में बच्चों को पेड़ों के नीचे बैठकर पढ़ाई करनी पड़ती है, और पीने के पानी की भी समस्या रहती है। स्वच्छ शौचालयों की कमी भी एक बड़ी समस्या है, जिससे बच्चों की उपस्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

द्रष्टिआईएएस (2025) में प्रकाशित श्भारत में स्कूली शिक्षा कि स्थितिश की रिपोर्ट से पता चलता है कि भारत में शिक्षकों की भारी कमी है और न ही उनके प्रशिक्षण होते है और ये कमी विशेस रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में है, जिसमे 1 मिलियन से अधिक शिक्षकों के खाली पद दर्शायें गए है। छात्रों और शिक्षकों का अनुपात 47रू1 तक है। जिससे की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।[8]

यदि ग्रामीण क्षेत्रों में योग्य और प्रशिक्षित शिक्षक उपलभ्द हो भी जाएँ तो अधिकरी उनको शिक्षण कार्य से ज्यादा विभाग के कागजी कामों में लगाये रखते है जिस से बच्चो कि पढाई नियमित रूप से नही हो पाती। यह स्थिति बच्चों की शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करती है।

शैक्षिक उपलब्धि में अंतर- शैक्षिक उपलब्धि से यह आशय है कि एक बच्चे ने किस स्तर तक पढाई कि है उस उपलब्धि के माध्यम से किस प्रकार का ज्ञान और कौशल प्राप्त किया है। शैक्षिक उपलब्धि के संदर्भ में ग्रामीण बच्चों की स्थिति शहरी बच्चों से काफी पीछे है। क्योंकि शहरों में सभी प्रकार कि सुविधा होती है इसलिए वहां के बच्चे शिक्षा में आगे रहते है और जब तक वो सुविधा गाँव में आती है तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। उदाहरण के लिए, 2018 के आँकड़ों के अनुसार, पाँचवीं कक्षा के ऐसे बच्चे जो कक्षा 2 की पठन दक्षता रखते हैं, का प्रतिशत सरकारी स्कूलों में 44% और निजी स्कूलों में 66% था। यह अंतर संसाधनों, शिक्षक की गुणवत्ता और सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों के कारण उत्पन्न होता है।[9]

वन गुर्जरों की राजनितिक, आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति का एक अध्ययन (2016) नामक शोध उत्तराखंड हरिद्वार के वन गुर्जरों पर आधारित है इसमें उनकी राजनितिक, आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति इतनी दयनीय बतायी गयी है, कि छोटे-छोटे बच्चों के पैर में रस्सी बांध कर उनको चारपाई या पेड़ों से बाँध देते है ताकि महिला और पुरुष भोजन बनाने हेतु जंगल में लकड़ी बीनने जा सकें। जिसमें उनकी आर्थिक स्थिति- जो प्रत्येक परिवार, जाति, तथा समाज कि रीढ़ होती है, को दर्शाया गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक-आर्थिक स्थिति बच्चों की शिक्षा पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती है। गरीब परिवारों के बच्चे अक्सर शिक्षा की बजाय घरेलू या कृषि कार्यों में लगे रहते हैं। इसके अतिरिक्त, लिंग, जाति, क्षेत्र, भाषा और धर्म जैसी सामाजिक विविधताएँ भी शैक्षिक असमानता को बढ़ावा देती हैं।[10]

शहरी क्षेत्रों की तुलना में संसाधनों की कमी- शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के अंतर के निहितार्थ महत्वपूर्ण हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में व्यक्तियों को अक्सर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने में गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जिसके

परिणामस्वरूप शैक्षणिक उपलब्धि का स्तर कम होता है और व्यक्तिगत विकास के अवसरों की कमी होती है। यह बदले में, उनके भविष्य के रोजगार और करियर में उन्नति की संभावनाओं को प्रभावित करता है।[11] शहरी क्षेत्रों में शिक्षा के लिए बेहतर संसाधन उपलब्ध हैं, जैसे कि निजी और बेहतर सरकारी स्कूलों की उपलब्धता। इसके विपरीत, ग्रामीण क्षेत्रों में ज्यादातर खराब सरकारी स्कूल ही हैं, जिससे ग्रामीण छात्र अवसरों से वंचित रहते हैं।

राजनीति और ग्रामीण शिक्षा (Politics and Rural Education)

गाँवों में शिक्षा की स्थिति का मुद्दा राजनीति से गहराई से जुड़ा हुआ है। नेता और सरकारें जब सही नीतियाँ बनाती हैं, जैसे स्कूल खोलना, किताबें और छात्रवृत्ति देना, तो बच्चों को पढ़ने का मौका मिलता है। लेकिन कई बार राजनीति में वोट और फायदे के लिए स्कूलों की हालत सुधारने पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता। गाँवों की पंचायतें और स्थानीय नेता अगर ईमानदारी से काम करें, तो शिक्षा हर बच्चे तक पहुँच सकती है। इसलिए कहा जा सकता है कि ग्रामीण इलाकों में शिक्षा की प्रगति राजनीति की दिशा और नीयत पर बहुत हद तक निर्भर करती है। जिसके संभंध में विभिन्न द्रष्टिकोण निम्लिखित है।

एनसीआरटी- शिक्षा है क्या? क्या महज़ विद्यालय में दाखिला लेना भर ही शिक्षा है? 'शिक्षा' और 'स्कूलिंग' में गहरा भेद है और हम इस भेद को नहीं देख पा रहे हैं। स्कूल के भीतर प्रवेश लेना भर ही शिक्षा का अधिकार नहीं है, बल्कि जीवन को बेहतर तरीके से जीना और स्वयं की आंतरिक क्षमताओं का अधिकतम विकास शिक्षा है।[12]

नीति और योजनाओं का प्रभाव- शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 के बाद से स्कूलों की संख्या में वृद्धि, शिक्षकों की नियुक्ति और प्रशिक्षण, शौचालय और खेल के मैदान जैसी बुनियादी सुविधाओं में सुधार और स्कूल तक बच्चों को लाने के लिए की जाने वाली मुहीम की वजह से सरकारी विद्यालयों में नामांकन बढ़ा है। हालाँकि, इन पहलों के बावजूद, गुणवत्ता में सुधार की दिशा में अभी भी कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

सरकार की जो भी नीतियाँ ग्रामीण विकास के लिए होती है उन को लागू करने में ही समय लगता है चाहे वो शिक्षक भती हो या डिजिटल उपकरणों की स्थापनाद्य

मुख्यमंत्री संवाद- विभिन प्रदेशों के मुख्यमन्त्री प्रत्येक वर्ष अपनी उपलब्धियाँ गिनाने में मशरूफ़ रहते है लेकिन ज़मीनी हकीकत कुछ और ही होती है। अभी हाल ही उत्तराखंड मुख्यमंत्री संवाद ताज़ा उदाहरण है; जिसमे विकास की बहुत बड़ी बड़ी बात की गयी है- जिसमे राज्य में शिक्षा, स्वास्थ्य, सडक, बिजली, पेयजल और हवाई कनेक्टिविटी आदि को बेहतर बनाने का कार्य किया गया है।[13] ये सभी काम प्रत्येक वर्ष और प्रत्येक मुख्य मंत्री कर्येकल में किये जाते है लेकिन समस्याय जस कि तस रहती है।

बैजनाथ पाण्डेय (2008) ने अपने लेख में स्पष्ट किया है कि भारत को पूर्ण साक्षर बनाने के लिए, उन आर्थिक रूप से कमजोर एंव दुर्गम इलाकों में रहने वाले, सामाजिक रुढ़िवादिता की जंजीरों से जकड़े एक लम्बे समय से तिरस्कर लोगों को साक्षर बनाना होगा।[14] संभंधित लेख में ये बताने कि चेष्टा कि गयी कि भारत को सम्पूर्ण साक्षर कि श्रेणी में अगर लाना है; तो आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों का विशेस ध्यान रखना होगा तभी भारत पूर्ण साक्षर बन पायेगा।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी और ग्रामीण शिक्षा

भारत जैसे विशाल और विविधताओं से भरे देश में शिक्षा को सर्वसुलभ और गुणवत्तापूर्ण बनाना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने की क्षमता रखती है। जिसकी शुरुआत 1980 में हुई। 24 वर्ष बाद 2004 में स्कूल में आई०सी०टी० लागु हुई द्य शहरी क्षेत्रों में आई०सी०टी० के प्रयोग ने शिक्षा को न केवल आधुनिक बनाया है, बल्कि छात्रों को वैश्विक प्रतिस्पर्धा के लिए भी तैयार किया है। ग्रामीण भारत में शिक्षा के विकास की दिशा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी एक महत्त्वपूर्ण उपकरण के रूप में उभरी है। डिजिटल अवसंरचना, ऑनलाइन शिक्षण

सामग्री और ई-लर्निंग प्लेटफ़ॉर्म ने शिक्षा की पहुँच को विस्तारित करने का अवसर प्रदान किया है। इससे ग्रामीण विद्यार्थियों को भी शहरों जैसी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने का मार्ग मिला है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने स्पष्ट कहा है कि तकनीक का उपयोग शिक्षा को अधिक समावेशी और समान बनाने की दिशा में किया जाना चाहिए। लेकिन जब हम इसका मूल्यांकन ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में करते हैं, तो अनेक गंभीर चुनौतियाँ सामने आती हैं और इसके विपरीत ग्रामीण भारत में आईसीटी का लाभ सीमित रूप से ही पहुँच पाया है, जिससे शिक्षा के क्षेत्र में विषमता और गहरी हो गई है।

ग्रामीण शिक्षा प्रणाली में आई०सी०टी० की पहुँच

डिजिटल अवसंरचना सबसे पहले, डिजिटल अवसंरचना और पहुँच का प्रश्न आता है। गाँवों में अभी भी स्थायी बिजली, सस्ती इंटरनेट सेवाएँ और डिजिटल उपकरणों की कमी है। ऐसे में आईसीटी आधारित शिक्षा का लाभ सीमित विद्यार्थियों तक ही पहुँच पाता है।[15]

सामग्री की उपलब्धता दूसरा, गुणवत्तापूर्ण शिक्षण सामग्री की उपलब्धता है। अधिकांश ई-संसाधन अंग्रेज़ी भाषा में होते हैं, जो ग्रामीण विद्यार्थियों के लिए कठिन साबित होते हैं। इसके अतिरिक्त स्थानीय संदर्भों पर आधारित सामग्री का अभाव शिक्षा को वास्तविक जीवन से काट देता है।[16]

औपचारिकता तीसरा, एक समावेशन और शिक्षा पर जो शिक्षक-प्रशिक्षण और सशक्तिकरण की समस्या है। आईसीटी तभी सार्थक हो सकता है जब ग्रामीण शिक्षक इसे प्रभावी रूप से प्रयोग कर सकें। किंतु व्यवहारिक स्थिति यह है कि प्रशिक्षण के अवसर अधिकतर शहरी क्षेत्रों तक सीमित रहते हैं, और ग्रामीण शिक्षक आईसीटी को केवल औपचारिकता भर मानते हैं।[17]

समावेशन चौथा, सामाजिक-आर्थिक समावेशन का प्रश्न है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी शिक्षा का उद्देश्य असमानता को कम करना है, लेकिन वास्तविकता में यह कई बार असमानता को और गहरा कर देता है। जिन परिवारों के पास स्मार्टफोन या इंटरनेट नहीं है, वे शिक्षा से और अधिक वंचित हो जाते हैं।[18]

कुनाल दिलीपकुमार राठोर, अपने समीक्षात्मक अध्यन में लिखते है कि यद्दपि आईसीटी में किसी देश की शिक्षा प्रणाली को काफी हद तक बेहतर बनाने की क्षमता है, फिर भी विकासशील देशों में ऐसा नही है। इन देशों के स्कूलों और शैक्षणिक संस्थानों में आईसीटी शिक्षा के कार्यान्वयन में कई मुद्दे और चुनौतियाँ हैं और दूरदराज़ के गाँव और ग्रामीण क्षेत्रों में स्तिथ स्कूलों के मामले में समस्याएँ और भी बढ़ जाती है।[19]

अतः यह स्पष्ट है कि आईसीटी ग्रामीण शिक्षा के लिए क्रांतिकारी अवसर तो प्रदान करता है, परंतु मौजूदा परिस्थितियों में यह 'डिजिटल डिवाइड' को कम करने के बजाय और अधिक बढ़ाने का खतरा भी पैदा करता है। इसलिए नीति-निर्माताओं को ग्रामीण सन्दर्भ में आईसीटी लागू करते समय केवल अवसंरचना ही नहीं, बल्कि भाषा, सामग्री, शिक्षक-प्रशिक्षण और सामाजिक असमानता जैसे पहलुओं पर भी विशेष ध्यान देना होगा।

निष्कर्ष एवं सुझाव

विभिन्न अध्यनों से पता चलता है कि ग्रामीण भारत की शिक्षा व्यवस्था एक लंबे समय से असमानता की समस्या से जूझ रही है। सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के साथ-साथ राजनीतिक हस्तक्षेप और नीतिगत कमजोरियों ने इसे और जटिल बना दिया है। अमीर और गरीब, लड़के और लड़कियाँ, दलित और सवर्ण, शहरी और ग्रामीण छात्रों के बीच शिक्षा के अवसरों में बड़ा अंतर दिखाई देता है। यद्यपि सरकार द्वारा अनेक योजनाएँ चलाई गई हैं, जैसे- सर्वशिक्षा अभियान, मध्याह्न भोजन योजना और अब डिजिटल इंडिया, परंतु इन योजनाओं का लाभ समान रूप से सभी तक नहीं पहुँच पाता।

राजनीति का शिक्षा में प्रभाव दोहरा है। एक ओर राजनीतिक इच्छाशक्ति से कई नई योजनाएँ शुरू होती हैं, लेकिन दूसरी ओर राजनीतिक स्वार्थ और भ्रष्टाचार के कारण नीतियों का सही क्रियान्वयन नहीं हो पाता। ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूलों की संख्या भले ही बढ़ी हो, लेकिन गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अभाव आज भी महसूस किया जाता है।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ग्रामीण शिक्षा के लिए नई संभावनाएँ खोलता है। ऑनलाइन शिक्षा, डिजिटल पुस्तकें और ई-लर्निंग से शिक्षा की पहुँच बढ़ सकती है। किंतु ग्रामीण इलाकों में इंटरनेट की कमी, बिजली की समस्या, महंगे उपकरण और डिजिटल साक्षरता की कमी आईसीटी को व्यावहारिक रूप से कमज़ोर बना देती है। कोविड-19 महामारी के समय यह स्थिति और अधिक स्पष्ट हो गई, जब शहरों के छात्र ऑनलाइन पढ़ाई कर पाए, लेकिन अधिकांश ग्रामीण छात्र इससे वंचित रह गए।

इसलिए आवश्यक है कि शिक्षा में असमानता को केवल योजना बनाकर नहीं, बल्कि ज़मीनी स्तर पर सुधार लाकर दूर किया जाए। इसके लिए कुछ सुझाव दिए जा सकते हैं–

1. ग्रामीण अवसंरचना सुधार : प्रत्येक गाँव में स्थायी इंटरनेट, बिजली और डिजिटल उपकरणों की सुलभता सुनिश्चित की जाए। बढने वाले बच्चों के लिए ये उपकरण फ्री मुहय्या कराये जाएँ।

2. शिक्षक-प्रशिक्षण : ग्रामीण शिक्षकों को आईसीटी आधारित शिक्षण में विशेष प्रशिक्षण दिया जाए ताकि वे डिजिटल साधनों का प्रभावी उपयोग कर सकें।

3. स्थानीय भाषा और संदर्भ : ई-शैक्षिक सामग्री को स्थानीय भाषाओं और ग्रामीण जीवन के संदर्भ में तैयार किया जाए।

4. राजनीतिक पारदर्शिता : शिक्षा योजनाओं के क्रियान्वयन में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित की जाए ताकि भ्रष्टाचार और स्वार्थ से बचा जा सके।

5. सामाजिक समानता : हाशिए पर खड़े वर्गों (गरीब, दलित, अल्पसंख्यक, लड़कियाँ) को विशेष प्रोत्साहन और सुविधाएँ प्रदान की जाएँ।

6. पाठ्यक्रम : पाठ्यक्रम को ग्रामीण भाषा या स्थानीय भाषा के अनुसार तैयार किया जाए।

अंततः, ग्रामीण भारत में शिक्षा की वास्तविक समानता तभी संभव है जब इसे केवल अधिकार के रूप में ही नहीं बल्कि समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए समान अवसर के माध्यम के रूप में भी स्वीकार किया जाए। वर्तमान में ग्रामीण शिक्षा अनेक चुनौतियों–जैसे संसाधनों की कमी, शिक्षकों की अनुपलब्धता, तकनीकी और डिजिटल असमानता, तथा सामाजिक और आर्थिक बाधाएँ- का सामना कर रही है। इन समस्याओं को दूर करने के लिए आवश्यक है कि शिक्षा को राजनीतिक इच्छाशक्ति, तकनीकी सहयोग और सामाजिक समावेशन के साथ जोड़ा जाए। जब तक इन तीनों तत्वों का समन्वय नहीं होगा, तब तक ग्रामीण शिक्षा केवल औपचारिक प्रक्रिया तक ही सीमित रहेगी और वास्तविक शैक्षिक समानता हासिल नहीं हो पाएगी। इसलिए, ग्रामीण शिक्षा को सशक्त और समावेशी बनाने के प्रयास ही समाज के समग्र विकास और समान अवसर सुनिश्चित करने का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

सन्दर्भ

1. सेन, अमर्त्य. विकास के रूप में स्वतंत्रता. नई दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999.
2. कश्यप, सुभाष. हमारा संविधानरू भारत का संविधान और संवैधानिक विधि (नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया 2004)।
3. गुहा, रामचंद्र. गांधी के बाद का भारत (नई दिल्ली : पेंगुइन बुक्स, 2007)।
4. भूषण, शशि. ग्रामीण भारत में शिक्षा और समाज (नई दिल्ली : भारतीय पुस्तक भंडार 2014)।
5. भारत सरकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (नई दिल्ली : भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय, 2020)।
6. UNESCO, ग्लोबल एजुकेशन मॉनिटरिंग रिपोर्ट 2022 (पेरिस : UNESCO, 2022)
7. ममता शुक्ला, भारत में ग्रामीण शिक्षा में परिवर्तन (द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 28 जुलाई 2022)

8. दृष्टि आईएएस। भारत में स्कूली शिक्षा की स्थिति 10 मई 2025
9. दृष्टि आईएएस। (2019). भारत में शिक्षा की स्थिति रिपोर्ट 2018 : प्रमुख तथ्य एवं विश्लेषण. दृष्टि आईएएस। https://www.drishtiias.com
10. अंसारी, मौ० मुज़फ्फर 'वन गुज्जरों की राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति का एक अध्ययन (उत्तराखण्ड के जनपद हरिद्वार के विशेष संदर्भ में)' (अप्रकाशित शोध प्रबंध). मोनाड विश्वविद्यालय, हापुड़, 2016
11. International Research Journal- 'शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के अंतर पर एक समीक्षा' केस स्टडी-शैक्षिक अनुसन्धान, खण्ड 14 , अंक 2 (मार्च 31, 2023), DOI: 10.14303/2141-5161.2023.254
12. सिन्हा, पवन. भारतीय आधुनिक शिक्षा (एनसीआरटी अक्टूबर 2015)
13. मुख्यमंत्री संवाद, बदलते उत्तराखण्ड का मासिक अपडेटवाल्यूम 32 (सितम्बर 2025) पृष्ठ 2
14. पाण्डेय, बैजनाथ : 'अनुसूचित जाति एंव अनुसूचित जनजाति की शिक्षा का प्रयास एंव परिणाम' कुरुक्षेत्र प्रकशन विभग(नई दिल्ली 2008)
15. नीति आयोग, स्ट्रेटेजी फॉर न्यू इंडिया / 75 (नई दिल्ली : भारत सरकार, 2021), 214।
16. विश्व बैंक, विश्व विकास रिपोर्ट 2018 : शिक्षा के वायदे को साकार करना (वॉशिंगटन डी.सी. : विश्व बैंक समूह, 2018), 102।
17. यूनेस्को, वैश्विक शिक्षा निगरानी रिपोर्ट 2021 (पेरिस : यूनेस्को पब्लिशिंग, 2021), 56।
18. भारत सरकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (नई दिल्ली : शिक्षा मंत्रालय, 2020)
19. राठोर, कुनाल दिलीप कुमार 'ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा के लिए सूचना और संचार प्रौद्योगिकी-एक समीक्षा' IJRASET-Volume 2, Issue, March 2023

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

साइबर आतंकवाद : भारत के सन्दर्भ में

अनुराग दूबे
(शोधछात्र) दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर, विश्वविद्यालय गोरखपुर
मो. न.- 9936585808
ई.मेल-anurag.dubeey@gmail.com

सारांश (Abstract)

साइबर आतंकवाद - डिजिटल अवसंरचना, सूचना प्रणालियों और ऑनलाइन सेवाओं को निशाना बनाकर भय, आर्थिक विघटन और राष्ट्रीय सुरक्षा पर असर पहुँचाने की वह रणनीति है, जो पारम्परिक आतंकवाद से अलग, परन्तु समान रूप से विनाशकारी हो सकती है। भारत के तेजी से डिजिटलीकरण, बड़े पैमाने पर ऑनलाइन लेनदेन और मिश्रित सार्वजनिक-निजी अवसंरचना के कारण यह जोखिम विशेष रूप से प्रासंगिक है। इस लेख में 2000-2025 के बीच भारत के ऐतिहासिक विकास, 2018-2025 की प्रमुख घटनाएँ, कानूनी ढाँचा, तकनीकी व प्रौद्योगिक हमले के तरीके, सामाजिक-आर्थिक प्रभाव, और व्यावहारिक नीतिगत व तकनीकी समाधानों का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। प्रमुख तर्क हैं–

- साइबर आतंकवाद बहु-आयामी है– तकनीकी, कानूनी और सामाजिक स्तर पर इसे संबोधित करना आवश्यक है।
- समन्वित राष्ट्रीय नीति और मानव-संसाधन विकास ही दीर्घकालिक समाधान है।
- सार्वजनिक-निजी भागीदारी व अंतरराष्ट्रीय सहयोग अनिवार्य हैं। कई तर्कों के पीछे उपलब्ध ताजा घटनाओं और रिपोर्टों के स्रोत दिए गए हैं।

साइबर आतंकवाद (Cyber Terrorism) का खतरा अब सिर्फ भविष्य की चिंता नहीं है। वह वर्तमान का वास्तविक खतरा बन चुका है। इस लेख में हम देखेंगे कि कैसे वर्तमान अवधि में भारत इस खतरे से प्रभावित हुआ है, सरकार ने किस प्रकार नए कदम उठाए हैं, और आगे क्या रणनीतियाँ हो सकती हैं।

प्रस्तावना एवं पृष्ठभूमि

डिजिटल भारत (Digital India) की पहल, आधार (Aadhaar), UPI और स्मार्ट सिटी प्रोजेक्ट जैसी योजनाओं ने सूचना प्रौद्योगिकी को सार्वजनिक-सेवा का अभिन्न अंग बना दिया है। इस व्यापक डिजिटलीकरण के कारण सार्वजनिक जीवन की संवेदनशील प्रणालियाँ - बिजली ग्रिड, बैंकिंग और भुगतान प्रणाली, अस्पताल और स्वास्थ्य रिकॉर्ड, यातायात नियंत्रण और सरकारी डेटाबेस - अब साइबर हमलों के लिए रूढ़-स्थल बन गई हैं। जबकि परम्परागत सुरक्षा ढाँचे भौतिक सीमाओं और हथियारों पर केंद्रित थे, 21वीं सदी में राज्य-स्तर व गैर-राज्य-स्तरीय खतरों को डिजिटल स्पेस में समझना अपरिहार्य हो गया है।

वर्तमान के वर्षों में भारत ने क्रिप्टो-कृत्य, रैनसमवेयर, सप्लाई-चेन हमले और डीपफेक-आधारित अभियान जैसे विविध खतरे देखे हैं। ये केवल तकनीकी घटनाएँ नहीं, बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक स्थिरता और सामाजिक भरोसे को प्रभावित करने

वाले उत्पादक हैं। उदाहरण के तौर पर, 2024 में बैंकिंग-सप्लायर C-Edge पर हुए रैनसमवेयर हमले से लगभग 300 छोटे बैंकों के भुगतान प्रभावित हुए। यह 'सप्लाई-चेन' मुद्दे की स्पष्ट चेतावनी है।

साइबर आतंकवाद (Cyber Terrorism)

साइबर आतंकवाद की परिभाषा अक्सर विधिक और नीतिगत प्रसंग पर निर्भर करती है, पर सामान्यतः इसे निम्नलिखित आयामों के साथ परिभाषित किया जा सकता है -

- डिजिटल प्रणालियों पर हमला जिसका उद्देश्य भय फैलाना या जन-जीवन को बाधित करना है।
- राष्ट्रीय सुरक्षा पर नकारात्मक प्रभाव डालना।
- राजनीतिक-धार्मिक लक्ष्यों के लिये पारंपरिक हिंसा के स्थान पर पूरक रूप में डिजिटल विधियों का प्रयोग।

भारत के आईटी अधिनियम की धारा 66F में भी साइबर आतंकवाद के कृत्यों का स्वरूप विधिक परिभाषा के रूप में दिया गया है।

जैसे-जैसे भारत डिजिटल रूप से आगे बढ़ रहा है ई-गवर्नेंस, ऑनलाइन बैंकिंग, स्मार्ट शहर, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की ऑनलाइन प्रणाली...वैसे वैसे हमारे देश की 'साइबर सतह' (Cyber Surface) भी विस्तृत होती जा रही है। इसका अर्थ है— जितना अधिक डिजिटलीकरण, उतनी अधिक संभावनाएँ हमलों की।

भारत में साइबर सुरक्षा स्थिति

- अक्टूबर 2023 से सितंबर 2024 की अवधि में भारत में 369 मिलियन से अधिक मालवेयर इवेंट्स दर्ज हुए, यानी औसतन 702 संभावित खतरों प्रति मिनट।
- इंटरनेट सुरक्षा विश्लेषक रिपोर्ट कहती है कि भारत की डिजिटल अपराध घटनाएँ 2022 में 13.9 लाख से बढ़कर 2024 में 20.4 लाख हो गई हैं।
- भारत सरकार की एक रिपोर्ट के अनुसार 2019 से 2023 के बीच सरकारी संस्थाओं पर काम करने वाले साइबर हमलों की संख्या में 138% की वृद्धि हुई - 85,797 से बढ़कर 204,844 घटनाएँ।
- भारत ने 2024 में ITU (International Telecommunication Union) Global Cybersecurity Index में Tier 1 दर्जा हासिल किया।
- Cisco रिपोर्ट के अनुसार भारत की कंपनियों में केवल 24% संगठन ही पर्याप्त रूप से साइबर हमलों के लिए तैयार हैं।
- शिक्षा क्षेत्र साइबर हमलों का लक्ष्य बनता जा रहा है। एक रिपोर्ट के अनुसार भारत के शैक्षिक संस्थानों को प्रति सप्ताह औसतन 7,095 हमले प्रति संस्था झेलने पड़ते हैं।

ऐतिहासिक रूपरेखा- भारत में 2000 के बाद से विकास

2000 के दशक की शुरुआत में आईटी अधिनियम (IT Act, 2000) ने साइबर अपराधों को वैधानिक मान्यता दी। प्रारम्भिक दशक में हमले अक्सर हैकिंग, सिम्पल-मैलवेयर और ई-मेल फ्रॉड तक सीमित थे। परन्तु 2010 के बाद डिजिटल भुगतान, मोबाइल इंटरनेट और क्लाउड सर्विसेज के विस्तार ने हमलावरों के लिये नई सतह (Attack Surface) बनाई। 2016-2019 के दौरान बैंकिंग, ऊर्जा और राष्ट्रीय संस्थानों पर टारगेटेड हमलों का उदय हुआ। Cosmos Bank (2018) जैसे मामलों ने यह दिखाया कि वित्तीय संस्थान भी वैश्विक आपराधिक समूहों के निशाने पर हैं।

प्रमुख केस-स्टडी 2018-2025:- जैसे Cosmos Bank Hack (2018), Kudankulam Nuclear Plant Incident (2019), AIIMS Ransomware Attack (2022), और C-Edge Technologies Attack (2024)।

1) बैंकिंग सिस्टम पर लक्षित हमला Cosmos Bank (2018)-

अगस्त 2018 में पुणे की Cosmos Cooperative Bank पर हमला हुआ। जिसमें SWIFT/ATM-क्लोनिंग तकनीक का इस्तेमाल करकरें लगभग रु. 94 करोड़ (अन्तर्राष्ट्रीय रिपोर्टों के अनुसार ~US $13.5 मिलियन) निकाले गए। हमलावरों ने ATM-switch और SWIFT के वातावरण का दुरुपयोग किया। यह हमला दिखाता है, कि वित्तीय नेटवर्क पर स्पेशलाइज़्ड मैलवेयर व इण्टरफेस लेवल पर कमजोरियाँ किस तरह से बड़े पैमाने पर धन की निकासी का कारण बन सकती हैं। टेक्निकल अवलोकन में spear-phishing, थर्ड-पार्टी इण्टरफेस कमजोरियाँ और ATM-switch का कम्प्रोमाइज शामिल थे।

बचाव- बैंकिंग-आईटी प्रणालियों की ताबूत-कीचेन (supply-chain) सुरक्षा, रेगुलेटरी ऑडिट और रियल-टाइम ट्रांजैक्शन-मॉनिटरिंग अनिवार्य है।

2) क्रिटिकल-इन्फ्रास्ट्रक्चर पर हमला (Kudankulam Nuclear Plant 2019) -

2019 में कुड़नकुलम (Kudankulam) परमाणु संयंत्र के प्रशासनिक नेटवर्क में मैलवेयर का पता चला। इससे नियंत्रण प्रणालियाँ सीधे प्रभावित नहीं हुई पर यह घटना क्रिटिकल इन्फ्रास्ट्रक्चर पर स्पाईवेयर/स्नूपिंग मैलवेयर के खतरे को उजागर करती है। कुछ विश्लेषणों ने Lazarus-सदृश राज्य-समर्थित ग्रुप का नाम भी सुझाया गया।

बचाव- यहां स्पष्ट हुआ कि भले ही प्रारम्भिक संक्रमण 'एड्मिन नेटवर्क' तक सीमित रहे, पर निगरानी, नेटवर्क-सेगमेंटेशन और आइसोलेशन जरूरी है ताकि संक्रमण नियंत्रण प्रणालियों तक न पहुँचे।

3) स्वास्थ्य-इन्फ्रास्ट्रक्चर पर हमला AIIMS (All India Institute of Medical Sciences) Ransomware (2022) -

नवंबर 2022 में AIIMS दिल्ली के ई-हॉस्पिटल सिस्टम पर एक साइबर घटना हुई, इससे रजिस्ट्रेशन, डिस्चार्ज, बिलिंग आदि सेवाएँ बाधित हुई और संस्थान को मैन्युअल मोड पर लौटना पड़ा। कई रिपोर्टों में इसे रैनसमवेयर-सम्बन्धी बताया गया। स्वास्थ्य क्षेत्र के हमले मरीज-जीवन के सीधे जोखिम से जुड़े होते हैं।

बचाव- अस्पतालों के लिए ऑफ-लाइन बैकअप, आईसीडी-प्रोटोकॉल (incident-handling), और अलग-अलग (air-gapped) चिकित्सा-नियंत्रण प्रणालियाँ अनिवार्य हैं।

4) सप्लाई-चेन विस्फोटक घटना : C-Edge Technologies और संबंधित रैनसमवेयर हमला (2024)

2024 में C-Edge Technologies (बैंकिंग-सप्लायर) पर रैनसमवेयर हमले ने लगभग 300 छोटे बैंकों की भुगतान-सुविधाओं को प्रभावित किया। NPCI ने प्रभावित सेवा-दाताओं को आइसोलेट कर दिया और बाद में बैक-ऑन-लाइन रिस्टोर किया गया। इस मामले ने स्पष्ट किया कि एक तीसरे-पक्ष की सुरक्षा-कमजोरी कैसे एक बड़े वित्तीय सेक्टर पर असर डाल सकती है।

विश्लेषण- सप्लाई-चेन हमले अर्थव्यवस्था के लिए 'कांस्य प्रमाण' की तरह हैं - एक कमजोर कड़ी पूरे नेटवर्क को कमजोर कर देती है। इस घटना का फॉरेंसिक विश्लेषण बताता है कि हमलावरों ने संभवतः रैनसमवेयर-रूटीन/रैंसम-एक्स जैसे समूहों की तकनीक का इस्तेमाल किया।

हमले के तकनीकी-वेक्टर (Attack Vectors) :-

साइबर आतंकवादी और अपराधी नीचे के तकनीकी तरीकों का प्रयोग करते हैं। कई बार संयोजन में, जिससे प्रभाव और परिमाण बढ़ जाता है।

रैनसमवेयर (Ransomware):- फाइल-एन्क्रिप्शन, नेटवर्क-एंड-टू-नेटवर्क फैलाव और डेटा लीक-धमकी का संयोजन। AIIMS व C-Edge जैसी घटनाएँ उदाहरण रहीं।

डीडीओएस (DDoS):- सार्वजनिक सेवाओं को अस्थायी रूप से अनुपलब्ध कर देना। सेवा-विरोधी हमले और सूचना/मीडिया फैलाव के साथ संयोजन में उपयोग करना।

सप्लाई-चेन हमला :- विश्वसनीय सॉफ्टवेयर/हार्डवेयर आपूर्तिकर्ता पर हमला कर विस्तृत नुकसान। C-Edge मामला इसी श्रेणी में आता है।

फिशिंग व सोशल-इंजीनियरिंग:- कर्मियों को धोखा देकर क्रेडेंशियल/प्रवेश-बिंदु प्राप्त करना। Cosmos Bank घटना में spear-phishing- सदृश तकनीकें संदिग्ध थीं।

आईओटी व बॉटनेट्स:- कमजोर IoT डिवाइस बॉटनेट बनकर DDoS या स्प्रेडिंग का माध्यम बनते हैं।

डीपफेक और AI-जनित गलत सूचना:- राजनीतिक व सामुदायिक सूचनाओं को प्रभावित करने के लिये नकली ऑडियो/वीडियो का इस्तेमाल कर के। हाल के सालों में डीपफेक पहचान टूल विकसित हुए हैं, जो इस खतरे का सामना करने में मदद करते हैं।

सामाजिक-आर्थिक प्रभाव (Macro-Micro Impacts)

साइबर आतंकवाद के प्रभाव बहु-स्तरीय होते हैं—

अर्थव्यवस्था:- वित्तीय संस्थानों में विश्वास घटेगा, लेनदेन बाधित होंगे, और पुनर्स्थापना-लागत (recovery costs) व कानूनी दंड बढ़ेगे। C-Edge और Cosmos जैसे मामलों ने प्रत्यक्ष आर्थिक नुकसान और परिचालन-खर्च दिखाया।

सामाजिक स्थिरता:- फेक न्यूज व डीपफेक के जरिए सामुदायिक हिंसा, उन्मादी अफवाहें या चुनाव-काल में विकृत सूचना फैल सकती है।

मानवीय जोखिम:- स्वास्थ्य-सेवा बाधित होने पर जीवन-रक्षा उपकरणों पर असर और मरीज सुरक्षा जोखिम बढ़ते हैं। AIIMS-घटना इसका सजीव उदाहरण है।

राष्ट्रीय सुरक्षा:- परमाणु/ऊर्जा/टेलीकॉम के खिलाफ हमले से रणनीतिक कमजोरियाँ उजागर होती हैं। Kudankulam मामला इसका सजीव उदाहरण है।

भारत का कानूनी-नैतिक ढाँचा

भारत ने साइबर अपराधों के विरुद्ध कानूनी तन्त्र विकसित किया है। परन्तु वे लगातार विकसित हो रहे खतरों के अनुरूप संशोधित होने आवश्यक हैं। कानूनी परिप्रेक्ष्य n' IT Act 2000, IT (Amendment) 2008, Digital Personal Data Protection Act 2023, और प्रस्तावित National Cybersecurity Strategy।

आईटी अधिनियम, 2000 (IT Act) :- इसमें 2008 के संशोधनों के साथ कई धाराएँ जोड़ी गईं। धारा 66F में साइबर आतंकवाद का उल्लेख है, जो राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़े साइबर कृत्यों की परिभाषा प्रदान करती है।

डिजिटल पर्सनल डेटा प्रोटेक्शन (DPDP) एक्ट, 2023:- व्यक्तिगत डेटा के संरक्षण का सैद्धान्तिक ढाँचा देता है। परन्तु अधिनियम की कार्यान्वयन-नियमों और AI/ML जोखिमों के प्रावधानों पर वार्ता चल रही है। (DPDP Act पारित, तथा प्रभाव/नोटिफिकेशन अलग-अलग तिथियों पर लागू होंगे)।

CERT-In (Computer Emergency Response Team-India):- राष्ट्रीय स्तर पर घटना-रिपोर्टिंग, गाइडलाइन्स और समन्वय का केन्द्र तथा साथ ही National Cybercrime Reporting Portal (cybercrime.gov.in) नागरिकों के लिये शिकायत-प्लेटफॉर्म है।

Allocation of Business (AoB) Rules (2024 संशोधन):- सितंबर 2024 में AoB नियमों में संशोधन कर मंत्रालयों को साइबर सुरक्षा/साइबर-क्राइम की स्पष्ट जिम्मेदारियाँ सौंपी गईं (MeitY, MHA, DoT के बीच रोल क्लियर हुए)। यह प्रशासनिक समन्वय सुधार की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम था।

न्यायिक और नागरिक-स्वतंत्रता प्रश्न:- निगरानी कवच बढ़ने से निजता के अधिकार और अभिव्यक्ति-स्वतंत्रता पर प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए किसी भी कठोर कानून में जवाबदेही, पारदर्शिता और न्यायिक-समीक्षा की व्यवस्था आवश्यक

होती है।

राष्ट्रीय नीति व संस्थागत चुनौतियाँ

भले ही भारत में कई संस्थाएँ (CERT-In, NCIIPC, MeitY, MHA) सक्रिय हैं, पर जटिलता और ओवरलैप, संसाधन-कमी, प्रशिक्षित कर्मियों की कमी और राज्य-स्तर पर असमान क्षमता मुद्दे बने हुए हैं। AoB संशोधन ने यह स्पष्ट किया हैं, कि विभागीय जिम्मेदारियाँ नियमित रूप से परिभाषित होने चाहिए ताकि इवेंट-रिस्पॉन्स में देरी न हो।

रणनीतियाँः- तकनीकी, कानूनी व प्रशासनिक उपाय (Policy & Technical Recommendations)

1. तकनीकी उपाय (Technical Best Practices)

मल्टी-लेयर सुरक्षाः- नेटवर्क-डिफेन्स, एप्लिकेशन-लेयर सुरक्षा, endpoint-detection - response (EDR), SIEM तथा निरन्तर पैचिंग।

सप्लाई-चेन सुरक्षाः- थर्ड-पार्टी रिस्क-एसेसमेंट, सॉफ्टवेयर बिल ऑफ मटेरियल (SBOM) और नियमित ऑडिट करना हैं। C-Edge घटना ने इसकी अनिवार्यता सिद्ध की।

डेटा एन्क्रिप्शन व बैकअपः- एन्क्रिप्शन-at-rest और-in-transit; ऑफ-लाइन/air-gapped बैकअप रूटीन।

AI/ML-आधारित निगरानीः- अनोमली-डिटेक्शन, व्यवहारिक एनालिटिक्स, और डीपफेक-डिटेक्टर जैसी तकनीकें तैनात करना।

रिप्लाई/रिस्पॉन्स ड्रिल्सः- नियमित इन्सीडेन्ट-रिस्पांस अभ्यास, ब्लैक-स्कैनारियो-ड्रिल्स और राज्य-स्तरीय tabletop एक्सरसाइज।

2. कानूनी और नीतिगत सुधार

IT Act/IPC के अपडेटः- नई तकनीकों (AI, क्वांटम-विचलन) के आधार पर अपराध-परिभाषा अद्यतन करना।

DPDP Act का शीघ्र एवं संरचित कार्यान्वयन- विशेष रूप से डेटा-ब्रीच रिपोर्टिंग नियम और SDF (Significant Data Fiduciary) के दायित्व तेज करना।

AI-Incident Reporting:- AI-मॉडल त्रुटियों/गलतफहमी से हुयी घटनाओं के लिये अनिवार्य रिपोर्टिंग फ्रेमवर्क लागू करना।

3. संस्थागत व मानव-संसाधनः-

काउंटर-इंटेलिजेंस-कैपेसिटीः- CERT-In, NCIIPC आदि के साथ-साथ राज्य-स्तरीय SOCs (Security Operations Centers) की स्थापना।

साइबर शिक्षा और स्किलिंगः- स्कूल-कॉलेज पाठ्यचर्या में साइबर सुरक्षा, रेजिलिएन्स ट्रेनिंग और बग-बाउंटी स्कीम्स।

सार्वजनिक-निजी भागीदारी (PPP):- बैंकों, टेलीकॉम, क्लाउड प्रोवाइडर और स्टार्टअप के साथ इन्फो-शेयरिंग एवं रिस्पॉन्स-प्रोटोकॉल स्थापित करना।

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और प्रत्यर्पण

कई हमले सीमाओं के पार से संचालित होते हैं। आरोपों का अनुसंधान, अपराधियों की पहचान और प्रत्यर्पण बहुधा जटिल कूटनीतिक प्रक्रिया बन जाती है। भारत को द्विपक्षीय/बहुपक्षीय मैकेनिज्मों (Indo-US Cyber Dialogue, Quad Cyber Initiatives, INTERPOL आदि) के साथ सक्रिय सहयोग बढ़ाना चाहिए ताकि दोषियों का पता लगाकर न्याय सुनिश्चित किया जा सके।

प्रतिक्रिया-रैपिडिटी-रिपोर्टिंग और नागरिक सहायता

National Cybercrime Reporting Portal (cybercrime.gov.in) जैसे केंद्रीकृत प्लेटफॉर्म ने नागरिकों के लिये शिकायत दर्ज करना आसान बनाया है। इसके साथ-साथ राज्य-स्तरीय 1930 हेल्पलाइन व स्थानीय पोर्टल्स का विस्तार (उदा. UP 1930 का 30-सीट का कॉल सेंटर) पीड़ितों को त्वरित सहायता देने में सहायक है। कुछ राज्यों के पोर्टल्स जैसे गुजरात के iPRAGATI ने भी पुलिस-कुशलता बढ़ाने में कदम उठाए हैं।

समाधान की दिशा - भारत की "Cyber Surakshit Bharat" पहल, CERT-In की भूमिका, और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग जैसे Indo&US Cyber Dialogue।

भविष्य के खतरे (Emerging Threats)

क्वांटम कंप्यूटिंग आधारित साइबर हमले, AI बॉटनेट्स, और अंतरिक्ष क्षेत्र (सैटेलाइट साइबर सुरक्षा)। AI-सक्षम हमलों का उदय- स्वचालित फिशिंग-किट, जनरेटिव-AI-ड्रिवन डीपफेक और ऑटोमेटेड-एक्सप्लॉइट-चेन।

क्वांटम-सक्षम क्रैकिंग का हुआनः- जब क्वांटम कंप्यूटिंग मजबूत होगी, तो वर्तमान एन्क्रिप्शन-एसएलएइ सर्वर कमजोर पड़ सकते हैं। जिससे डिजिटली प्रमाणीकरण एवं गोपनीयता प्रभावित होगी।

सैटेलाइट व अंतरिक्ष-साइबर :- क्रिटिकल नेविगेशन/कम्युनिकेशन सैटेलाइट्स पर हमले से व्यापक प्रभाव होगा।

ब्लॉकचेन-विकृत हमलें :- क्रिप्टो एक्सचेंज और स्मार्ट-कॉन्ट्रैक्ट की कमजोरियाँ आर्थिक खतरों को जन्म देंगी।

निष्कर्ष

साइबर आतंकवाद भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा का एक जटिल और विकासशील आयाम बन चुका है। 2018-2025 की घटनाएँ यह दिखाती हैं कि खतरे बहु-आयामी हैं। वित्तीय, ऊर्जा, स्वास्थ्य, शिक्षा और सरकारी सेवाओं को प्रभावित करते हुए वे व्यापक सामाजिक और आर्थिक परिणाम उत्पन्न करते हैं। नीति-निर्माता, उद्योग और नागरिकों का सहयोग, समेकित कानूनी ढाँचा, तकनीकी नवाचार और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग ही दीर्घकालिक सुरक्षा सुनिश्चित कर सकता है। समय रहते-सक्रिय, परख-परखा और उत्तरदायी कदम ही डिजिटल आधारभूत संरचना की रक्षा करेंगे।

भारत पर साइबर खतरे एक गंभीर और वास्तविक समस्या बन चुके हैं। रैंममवेयर हमले, बड़े बैंकिंग सेवा प्रभावित घटनाएँ, शिक्षा और स्वास्थ्य क्षेत्रों पर हमले, यह सभी संकेत देते हैं, कि साइबर आतंकवाद सिर्फ तकनीकी समस्या नहीं, बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा, सामाजिक स्थिरता और आर्थिक विकास के लिए एक बड़ा खतरा है।

सरकार ने पहले ही कई सकारात्मक कदम उठाए हैं। जैसे AoB संशोधन, राष्ट्रीय साइबर अपराध रिपोर्टिंग पोर्टल, बैंकिंग डोमेन सुधार प्रस्ताव, हेल्पलाइन और शिकायत व्यवस्था सुधार। लेकिन अभी भी बहुत काम बाकी है, विशेषकर AI आधारित हमलों, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, मानव संसाधन विकास और जागरूकता के क्षेत्रों में।

भविष्य की लड़ाई केवल तकनीकी हथियारों से नहीं होगी, बल्कि प्रणालीगत, संस्थागत और सामुदायिक सुरक्षा उपायों से होगी। समय रहते सतर्कता, सशक्त कानून और समेकित रणनीति से ही भारत इस चुनौति का सामना कर सकता है।

सन्दर्भ

- ❖ Reuters d' "Ransomware attack forces hundreds of small Indian banks offline, sources say" (C-Edge incident, July 2024).
- ❖ Securonix / Indian Express d' Cosmos Bank SWIFT/ATM attack (2018) analysis.
- ❖ Arms Control Today / Bitsight d' Kudankulam Nuclear Plant malware (2019).
- ❖ AIIMS incident reports & academic summaries d' November 2022 ransomware episode.

- ❖ Carnegie Endowment d‘ “Mapping India’s Cybersecurity Administration in 2025" (AoB Rules amendment & admin mapping).
- ❖ National Cybercrime Reporting Portal (cybercrime.gov.in) d‘ नागरिक रिपोर्टिंग प्लेटफॉर्म (Govt. of India).
- ❖ IndiaCode d‘ IT Act, Section 66F (Cyber Terrorism).
- ❖ Digital Personal Data Protection Act, 2023 d‘ act details & commentary.
- ❖ Times of India / State portals d‘ 1930 helpline expansion, Gujarat portals (iPRAGATI) & other state initiatives.
- ❖ Avinash Agarwal, Manisha Nene d‘ “Incorporating AI Incident Reporting into Telecommunications Law and Policy” (arXiv) d‘ AI incident reporting discussion.
- ❖ “Mapping India’s Cybersecurity Administration in 2025" d` Carnegie Endowment for International Peace
- ❖ “Major Events and Trends in Cybersecurity in 2024” d` IDSA / ICCOE रिपोर्ट
- ❖ “The Rising Tide: Understanding the Surge in Cyber Attacks in India” d` Tripwire Blog Report
- ❖ “20 Recent Cyber Attacks in India (2025)” d` Eventus Security Report

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

दृष्टिबाधितों की समस्याएँ 'रंगभूमि उपन्यास' के विशेष संदर्भ में

डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय,
चित्रकूट (उत्तर प्रदेश)
ईमेल–putupiyush@gmail.com, मो.-8604112963

शिवेन्द्र कुमार
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय,
चित्रकूट (उत्तर प्रदेश)
ईमेल– jaishreekamtanath@gmail.com, मो.- 9919881145

सारांश– उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसमें जीवन के विविध रूपों, परिस्थितियों, भावनाओं और अनुभवों का व्यापक चित्रण किया जाता है। हिन्दी साहित्य में उपन्यासों की उपस्थिति बीसवीं शताब्दी से दिखाई देती है। जहाँ उनका प्रयोजन सिर्फ मनोरंजन रहा है।

साहित्य में मुंशी प्रेमचन्द का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। प्रेमचंद जी ने अपनी लेखिनी के माध्यम से कथा साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की है। उन्होंने समाज के उस वर्ग को आवाज प्रदान किया है जो वास्तविक रूप में सदियों से उपेक्षित था, उस वर्ग के अन्तर्गत किसान, मजदूर, स्त्रियाँ, असहाय और दलित आते हैं। मुंशी जी का मानना था कि, साहित्य को समाज का मार्गदर्शक होना चाहिए केवल मनोरंजन का साधन नहीं।

जब किसी व्यक्ति की दृष्टि क्षमता सामान्य चश्मे या इलाज के बाद भी पढ़ने-लिखने या सामान्य कार्यो में बाधा उत्पन्न होती है उसे दृष्टिबाधित माना जाता है। रंगभूमि (1925) उपन्यास मुंशी प्रेमचंद के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में से एक माना जाता है। यह उपन्यास औपनिवेशिक भारत की राजनीति, समाज और आर्थिक शोषण का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। रंगभूमि उपन्यास में दृष्टिबाधितों की समस्याओं या व्यथा को बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करने का कार्य किया गया है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र सूरदास एक नेत्रहीन भिखारी है। जिसकी शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति को दिखाने का कार्य किया गया है।

इस शोधपत्र में मुंशी प्रेमचंद के रंगभूमि उपन्यास का अध्ययन दृष्टिबाधितों की समस्याओं के आधार पर किया गया है। इस उपन्यास को दृष्टिबाधितों की समस्याओं से जोड़ते हुए उनके सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक शोषण की स्थिति का अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द- रंगभूमि उपन्यास, औपनिवेशिकता, दृष्टिबाधित, धर्मात्मा, स्वार्थपरता, जीवकोपार्जन, भिखमंगा, संवेदनशीलता, बहुआयामी, घमण्डी।

प्रस्तावना- रंगभूमि उपन्यास प्रेमचंद साहित्य का एक यथार्थपरक और सामाजिक भावना से युक्त उपन्यास है। इसमें औपनिवेशिक सत्ता, पूँजीवादी शोषण, जातिगत असमानता और समाज की कुरीतियों का विशद चित्रण मिलता है। रंगभूमि उपन्यास का केन्द्रीय पात्र सूरदास है जोकि, समस्त दृष्टिबाधितों की समस्याओं और उनके संघर्ष का प्रतीक बनकर उभरा है। सामान्यतः हमारा समाज दृष्टिबाधित व्यक्तियों को दीन-हीन, दुर्बल और पराश्रित मानता है। परन्तु मुंशी प्रेमचंद ने रंगभूमि

के पात्र सूरदास के माध्यम से इस धारणाओं को तोड़ने का प्रयास किया है।

सूरदास अपनी दृष्टिहीनता के बाद भी समाज के प्रति एक सकारात्मक और नैतिक दृष्टि रखता है और औपनिवेशिक सत्ता एवं समाजिक रूप से विद्यमान पूँजीपतियों के अन्यायपूर्ण व्यवहार का विरोध करता है। सूरदास की समस्या केवल शारीरिक कमी नहीं थी बल्कि समाज और सत्ता की उपेक्षा, असमानता और दमन भी है।

इस दृष्टि से रंगभूमि केवल एक दृष्टिबाधित व्यक्ति के जीवन पर आधारित नहीं है बल्कि, उस पूरे वर्ग की व्यथा की कथा है जो शारीरिक रूप से अक्षम होने के साथ-साथ सामाजिक व आर्थिक उपेक्षाओं या निन्दा का शिकार है। सूरदास के चरित्र के माध्यम से प्रेमचन्द ने यह बताया है कि, शारीरिक दुर्बलता के बाद भी मानसिक शक्ति और नैतिक दृष्टि से व्यक्ति समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

दृष्टिबाधिता : अर्थ और परिभाषा

जिस व्यक्ति की दृष्टि या देखने की क्षमता सामान्य नही होती है या किसी कारणवश देखने की शक्ति कमजोर या पूरी तरह से क्षीण होने की स्थिति में हो, जिसके कारण उस व्यक्ति को कुछ भी न दिखाई दे उसे दृष्टिबाधित कहते हैं। दृष्टिबाधित मुख्यतः दो शब्दों से मिलकर बना हुआ है– दृष्टि + बाधित। जिसमें 'दृष्टि' शब्द का आशय देखने की क्षमता या शक्ति से है और 'बाधित' शब्द से अभिप्राय रुकावट या कमी से है।

"दृष्टिबाधिता को अंधापन भी कहते हैं। अंधेपन को दृष्टिहीन होने की स्थिति के रूप में परिभाषित किया गया है। एक अन्धा व्यक्ति देखने में असमर्थ है। एक अर्थ में अंधापन शब्द दृष्टि के कुल कालेपन की स्थिति को दर्शाता है। जिसमें किसी व्यक्ति की आँख में उज्जवल प्रकाश से अंधेरे को अलग करने में असमर्थता होती है।"[1]

अर्थात् दृष्टिबाधित व्यक्ति अपनी आँखों के प्रकाश से काले अंधेरे को दूर करने में असमर्थ रहते हैं। वह व्यक्ति चाहकर भी उस कालेपन को दूर नहीं कर पाता है। इस प्रकार की समस्याओं से ग्रसित व्यक्ति को ही दृष्टिबाधित व्यक्ति कहते हैं।

अमेरिकन फाउंडेशन फॉर ब्लाइंड (ए. एफ. बी. 1961) इनसाइक्लोपीडिया ऑफ स्पेशल एजूकेशन (1997) के अनुसार–"जिनकी दृष्टि क्षीणता यदि समुचित सुधारों के बावजूद 20/200 फीट या 6/60 मीटर रह जाती है। वह दृष्टिबाधित समझा जाता है।"[2]

यानी एक स्वस्थ्य मानव की स्वस्थ्य आँखों की क्षमता 20/20 फीट से ज्यादा होती है किन्तु, किसी कारण या समस्या से ग्रसित होने पर मानव 20/20 फीट से ज्यादा नहीं देख पाता है तो वह समस्याग्रस्त या दृष्टिबाधित मानव कहलाता है।

भारत में दृष्टिबाधित

भारत में किसी भी वर्ग की जनसंख्या ज्ञात करने के लिए जनगणना के आँकड़े को देखा जाता है और उसी आँकड़े के अनुसार मान लिया जाता है। भारत की 2001 की जनगणना में दिव्यांगों की संख्या 2.1 करोड़ बतायी गयी। वहीं 2011 की जनगणना में यह आँकड़ा बढ़कर 2.67 करोड़ हो गया। जिसमें सभी वर्गों को अलग – अलग बाँटा गया है, यदि हम दृष्टिबाधितों की बात करें तो "2011 की जनगणना के अनुसार भारत में विकलांगों (दिव्यांगों) की कुल जनसंख्या का 18. 8 % लोग दृष्टि बाधित हैं।"[3]

"भारत में विकलांगों (दिव्यांगों) की जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या में से कुल 26,810,557 विकलांग हैं। जिनमें 14,986,202 पुरुष हैं एवं 11,824,355 महिलाएं हैं। भारत की कुल जनसंख्या में से 18.9% दृष्टि दोष से ग्रसित व्यक्ति हैं।"[4]

इस प्रकार से भारत की जनसंख्या के कुल दिव्यांगों की संख्या का एक बड़ा हिस्सा दृष्टि बाधित है। ये जनसंख्या कम होने के अपेक्षा निरंतर बढ़ती जा रही है।

दृष्टिबाधिता के प्रकार

दृष्टिबाधिता के प्रकारों को अलग-अलग मानकों के अनुसार माना गया है। कुछ लोगों का मानना है कि, दृष्टिबाधिता मुख्यतः तीन प्रकार की होती है -कम दृष्टिदोष, गम्भीर दृष्टिदोष और पूर्ण अंधापन।

"1. कम दृष्टिदोष, 2. गम्भीर दृष्टिदोष, 3. पूर्ण अंधापन, 4. कानूनी अंधता, 5. कॉर्टिकल विजुअल इम्पेयरमेंट (सीवीआई), 6. रंग दृष्टिदोष, 7. रतौंधी (निक्टालेपिया)।"[5]

दृष्टिबाधिता के प्रमुख कारण

किसी भी समस्या के आने के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है, वही बात दृष्टिबाधिता की समस्या को जानने में भी लागू होती है। "1. जन्मजात नेत्ररोग – जन्म से मोतियाबिन्द, एनिरिडिया, माइक्रोकथाल्मिया, 2. रेटिनलविकार - रेटिनाइटिस पिगमेंटोसा, लेबरकान्जेनिटल, अमोरोसिस, 3. कॉर्टिकल विजुअल इम्पेयरमेंट, 4. संक्रमण और रोग- रुवेला, हर्पीज, टोक्सोप्लाजमोसिसचोट या आधात, 5.तंत्रिका सम्बंधी विकार - सेरेब्रलपाल्सी, पेरीवेंद्रीकुलरल्यूकोमालेसिया, 6.आनुवंशिक कारक - कोई नेत्ररोग, एल्बिनिज्म, रेटिनोब्लास्टेमा ऑप्टिक तंत्रिका हाइपोप्लेसिया आदि।"[6]

इस प्रकार घटनाओं एवं रोगों के माध्यम से आँखों की दृष्टि या रोशनी चली जाती है और व्यक्ति दृष्टिदोष का शिकार हो जाता है।

रंगभूमि उपन्यास में दृष्टिहीनों की समस्याएं

मुंशी प्रेमचंद जी का रंगभूमि उपन्यास हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें सामाजिकता, यथार्थवाद, औपनिवेशिक शोषण और वर्ग संघर्ष का बड़ा ही गंभीर मानवीय दृष्टि से चित्रण किया गया है। रंगभूमि उपन्यास का नायक सूरदास नामक एक दृष्टिबाधित व्यक्ति है। सूरदास की अंधता केवल व्यक्तिगत कमजोरी न हेकर व्यापक रूप से सामाजिक और राजनीतिक अन्याय की ओर संकेत करती है। सूरदास के माध्यम से मुंशी प्रेमचंद जी ने दृष्टिबाधितों की बहुआयामी समस्याओं को प्रस्तुत करने का कार्य किया है। उन्होंने लिखा है–

"मिसेज सेवक– तू जहाँ जाती है वही कोई न कोई ज्ञानी आदमी मिल जाता है। क्या रे अंधे, तू भीख क्यों माँगता है? कोई काम क्यों नही करता? तेरे भगवान ने तुझे अन्धा क्यों बना दिया? इसलिए कि तू भीख माँगता फिरे?[7]

मिसेज सेवक सूरदास की तरफ हीन भावना से देखने हुए 'अरे अन्धे' पुकार कर पूछती हैं कि, तुझे तेरे भगवान ने अन्धा क्यों बनाया है? भीख मांगने के लिए ही तो बनाया है। तेरे साथ तो तेरे भगवान ने भी अन्याय किया है। इस प्रकार के अपशब्दों का प्रयोग मिसेज सेवक द्वारा सिर्फ सूरदास के लिए ही नहीं किया जाता है, बल्कि समाज में हर दृष्टिबाधित व्यक्ति के लिए किया जाता है।

सूरदास स्वयं ही अपनी समस्याओं से दुःखी रहता है। अगर उससे कोई शादी कर आराम से बना बनाया खाना खाने के लिए बोलता है तो सूरदास अपनी समस्याओं को याद कर शादी के बाद और बढ़ने वाली समस्याओं को न झेल पाने के कारण से मना कर देता है। मुंशी प्रेमचंद द्वारा दिखाई गई इस प्रकार की समस्या न केवल सूरदास की है बल्कि, यह समस्या समस्त दृष्टिबाधितों के जीवन से सम्बन्धित है, इसका उदाहरण रंगभूमि में कुछ इस प्रकार प्राप्त होता है –

"गनेस– एक गाँव में एक सुरिया है, तुम्हारी ही जात – विरादर की है, कहो तो बातचीत पक्की करूँ?

सूरदास– कोई जगह बताते, जहाँ धन मिले और इस भिखमंगी से पीछा छूटे। अभी अपने ही पेट की चिन्ता है तब एक अंधी की और चिंता हो जाएगी। ऐसी बेड़ी पैर में नहीं डालना।"[8]

"सूरदास लाठी टेकता हुआ धीरे-धीरे घर चला। रास्ते में चलते-चलते सोचने लगा यह है बड़े आदमियों की स्वार्थपरता! पहले मुझे कैसे हेकड़ी दिखाते थे, मुझे कुत्ते से भी नीच समझा : लेकिन ज्यों ही मालूम हुआ कि जमीन मेरी है कैसी लल्लो-चप्पो करने लगे।"[9]

मुंशी प्रेमचंद के इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि, इस समाज में कुछ ऐसे स्वार्थी लोग भी रहते हैं जो दृष्टिबाधितों को असहाय समझते हुए उनके साथ जानवरो की तरह बर्ताव करते हैं। किन्तु जैसे ही उन लोगों को दृष्टिबाधितों से अपना किसी भी प्रकार का स्वार्थ दिखने लगता है तो उनकी खुशामद करने लगते हैं।

हमारे समाज में अगर दृष्टिबाधितों के द्वारा भीख माँगकर जीविकोपार्जन किया जाता है या अपना पेट भरने के लिए भीख मांगता है तो यह शर्म की बात समझी जाती है। अगर दृष्टिबाधित व्यक्ति को कोई परेशान करे तो लोग उसे। कुछ भी नहीं कहेंगे किन्तु दृष्टिबाधित अपनी रक्षा के लिए कोई प्रयास करता है तो उसे घमंडी मान लिया जाता है। दृष्टिबाधितों को समाज में तरह-तरह की बातें सुनने को मिलती रहती हैं। जिसके संबंध में मुंशी प्रेमचंद ने इस प्रकार लिखा है –

"जमुनी– अब तुम्हें घमण्ड हुआ है। भीख माँगते हो फिर भी लाज नहीं आती, सबकी बराबरी करने को मरते हो।

भैरों– जमाना ही ऐसा है, सब रोजगारों से अच्छा भीख मांगना है।"[10]

"कुँवर सिंह– एक दीन-दुर्बल अन्धे की भूमि को जो उसके जीवन का एक मात्र आधार हो उसके कब्जे से निकालकर एक व्यवसायी को दे देना उनके सिद्धान्तों के विरुद्ध है, पर आज पहली बार उन्हें अपने नियम को ताक पर रखना पड़ा है कुँवर भगतसिंह को एक भारी ऋण से मुक्त कर देगा।"[11]

मुंशी प्रेमचंद ने इस बात से स्पष्ट कर दिया है कि, धनवान व्यक्ति अपने ऊपर लगे हुए ऋण को चुकाने के लिए कानूनी नियम को भी तोड़ देते हैं। ये नियम-कानून निम्न वर्ग के व्यक्तियों एवं दिव्यांग व्यक्तियों की हानि के लिए ही तोड़े जाते है। धनवान व्यक्ति अपने स्वार्थपूर्ति के समय यह भी नहीं सोचते हैं कि, अपने स्वार्थ हेतु जिसे बलि का बकरा बना रहे हैं वह दृष्टिबाधित व्यक्ति है। यह स्थिति हर दृष्टिबाधित व्यक्ति के साथ होती है।

दृष्टिबाधित व्यक्तियों की शारीरिक समस्या को समाज के लोगों द्वारा उनके पाप कर्मों का फल बोला जाता है और उस समस्या को वाद-विवाद के समय अपशब्दों के रूप में बोला जाता है। सूरदास को बात-बात में लोगों के द्वारा ऐसे शब्द बोले जाते हैं। रंगभूमि में द्रष्टव्य है–

"भैरों– बस, अब चुप ही रहना। ऐसे पापी न होते तो भगवान ने आँखे क्यों फोड दी होती।"[12]

"दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय।
मुई खाल की साँस सो, सार भसम है जाय ॥"[13]

सूरदास लोगों से स्वयं को न सताने के लिए दुहाई लगाते हुए कहता है कि, मेरे जैसे दुर्बल व्यक्ति को न सताइए। वह इसलिए कहता है क्योंकि, उसकी जमीन जबरदस्ती उससे छीन ली गयी है। समाज में यही व्यवहार हर दृष्टिबाधित के साथ होता है। इसका मुंशी प्रेमचंद ने बहुत ही मार्मिक ढंग से वर्णन किया है।

सूरदास के लिए लोगों के मन में ऐसी गलत धारणा बन चुकी है कि, उसे दिखाई नहीं देता है तो वह स्वयं की रक्षा नहीं कर सकता है और उसे बच्चे भी मार सकते हैं। यह घटिया सोच प्रायः हर दृष्टिबाधित के लिए समाज के लोगों में बनी हुई है। इस उक्ति की पुष्टि करते हुए मुंशी प्रेमचंद ने लिखा है– "भैरों ने अपनी लाठी उठाया और बाहर आया। अंधा शेर भी हो तो उसका क्या भय? एक बच्चा भी उसे मार गिराएगा।"[14]

सूरदास अच्छे इरादे के साथ ही भैरों को अपने खुद के रुपए को वापस करने के लिए जाता है। गरीब तथा असहाय होने के कारण किसी ने उसकी बात भी नहीं सुनी बल्कि, लोगों के द्वारा उसे गलत मान लिया जाता है। यह स्थिति सूरदास के साथ ही नहीं अपितु हर दृष्टिबाधित के साथ समाज के लोगों के द्वारा उत्पन्न की जाती है। यही बात मुंशी प्रेमचंद ने स्पष्ट करते हुए रंगभूमि में कहते हैं– "सूरदास फूटी हुई आँखें फाड़कर बोला- यारो! क्यों विपत्ति के मारे हुए दुखियों पर कीचड़ फेंक रहे हो,ये छुरियां चला रहे हो? कुछ तो भगवान से डरो। क्या संसार में कही इंसान नहीं रहा? मैने तो भलमनसी की कि, भैरों के रूपये उसे लौटा दिए।"[15]

निष्कर्ष

रंगभूमि उपन्यास में प्रेमचंद ने दृष्टिबाधितों की समस्याओं को गहरी संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया गया है।। सूरदास नामक व्यक्ति केवल शारीरिक रूप से अंधा नहीं है, बल्कि वह उन सभी वंचित और उपेक्षित लोगों का प्रतिनिधित्व करता है जिन लोगों को समाज और सत्ता बार – बार किसी न किसी समस्या में डाल देती है। दृष्टिबाधितों की सबसे बड़ी समस्या केवल शारीरिक अक्षमता नहीं है बल्कि, उसके साथ होने वाला सामाजिक भेदभाव, असुरक्षा, उपेक्षा और आर्थिक शोषण भी है।

सूरदास जैसा पात्र यह बताता है कि, अंधता उनकी आतंरिक दृष्टि और सामजिक चेतना को बाधित नही कर पाती है। वह अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करता रहेगा, अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाता रहेगा और समाज के लोगों की विवेकहीनता को चुनौती देता रहेगा। प्रेमचंद ने दिखाया है कि, दृष्टिबाधित व्यक्तियों की समस्याओं का समापन या समाधान केवल सहानुभूति से नहीं बल्कि, सामाजिक संरचनाओं में परिवर्तन, समान अवसर और न्यायपूर्ण दृष्टि से संभव है।

रंगभूमि उपन्यास से यह स्पष्ट है कि, दृष्टिबाधित दया, भीख, उपेक्षा के पात्र नहीं वरन् बराबर के अधिकार, सम्मान और स्वाभिमान के अधिकारी हैं। ये उनके मौलिक अधिकार है। ररंगभूमि उपन्यास के माध्यम से दिव्यांगों में सामाजिक चेतना को जगाने का भी कार्य किया गया है।

संदर्भ

1. द्विवेदी, डॉ. पीयूष कुमार, हिन्दी साहित्य में विकलांग विमर्श (शोध ग्रंथ), पृ.- 15
2. https : //www.jetir.org
3. https://en.wikipedi.org
4. द्विवेदी, पीयूष कुमार, विमर्श मंजूषा, सुधा प्रकाशन, कानपुर, पृ.- 24
5. https://www.nurturers.in
6. वही
7. प्रेमचंद, रंगभूमि, रजत प्रकाशन, मेरठ, संस्करण सन् 2014, पृ.- 10
8. वही, पृ.- 5-6
9. वही, पृ.- 13
10. वही, पृ. – 54-55
11. वही, -68
12. वही, पृ. -111
13. वही, पृ. -196
14. वही, पृ.. -236
15. वही, पृ. -239

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में नारी विषयक दृष्टि

डॉ. सविता
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग, माता सुन्दरी कॉलेज फॉर वूमैन,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

महाकवि तुलसीदास ने अपने ग्रंथ 'रामचरितमानस' में नारी के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया है उसमें हमने देखा कि तुलसीदास की नारी भावना अत्यंत सौम्य है उत्कृष्ट है उन्होंने नारी को अपने मानस मे प्रेम, त्याग, क्षमा और करूणा की देवी माना है। जबकि तुलसीदास जी अपनी एक चौपाई की वजह से काफी विवादों में घिरे रहे।

"प्रभु भल मोहि सिख दीन्हीं। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्हीं।
ढोल गंवार शूद्र पशु नारी। सकल ताड़न के अधिकारी।।"[1]

लोगों ने इस पंक्ति को अपने-अपने मतानुसार अर्थ निकालकर तुलसी को नारी विरोधी ही बनाकर रख दिया। परंतु यदि अर्थ को ध्यान से निरीक्षण किया जाये तो इस पंक्ति का अर्थ ही भिन्न हो जाता है। तुलसी का इन पंक्तियों को लिखने का उद्देश्य स्त्रियों का अपमान करना नहीं था अपितु उन्होंने ताड़ने से अभिप्राय परखने से लिया है जैसे ढोल को जब तक बजाया ना जाये उसकी ध्वनि का पता नहीं चलता है वैसे ही गंवार को जब तक समझाया ना जाये उसकी मूर्खता नहीं जाएगी। शूद्र का भी जब तक मार्गदर्शन नहीं किया जाएगा उसका विकास असंभव है। पशु के सन्दर्भ में ताड़ना यानि उसकी देख-रेख आवश्यक है अन्यथा वह भी जहाँ मरजी चाहे कहीं चला जाएगा। उसी प्रकार नारी के सन्दर्भ में भी ताड़ने का अभिप्राय उसकी देख भाल संरक्षण और सुरक्षा से ही है उसको जानने एवं समझने से भी है। अर्थात् नारी को समझना भी जितना आवश्यक है उतना ही उसको समझाना भी आवश्यक है। अन्यथा वह भी रास्ता भटक सकती है–

तुलसीदास का नारी के प्रति सम्मान एवं श्रद्धा भाव रामचरितमानस में देखा जा सकता है। 'अरण्यकांड' में अनुसूया और सीता का प्रसंग देखें–

"धीरज धर्म मित्र अरु नारी
आपदकाल परिखि अहिं चारी।।"[2]

यहाँ माता अनुसूया अपनी पुत्री समान सीता को समझाते हुए कहती है कि धैर्य, विवेक, धर्म, मित्र और पत्नी की परीक्षा विपरीत (दुःख) के समय में होती है। इसलिए पत्नी को अपने पति का हर स्थिति में साथ देना चाहिए। जैसा कि हम रामचरितमानस में देखते हैं। कि सीता सुख-वैभव त्यागकर अपने पति श्री राम के साथ वनवास के लिए जाती हैं।

तुलसीदास ने माता कौशल्या को आदर्श की मूर्ति माना है। 'रामचरितमानस' के 'बालकांड' में कौशल्या अपने पुत्र के प्रेम में इतनी मगन हो जाती हैं कि उन्हें रात-दिन का भी आभास नही होता है क्योंकि वे तो अपने बालक राम का ही गुणगान करती रहती हैं ऐसी पुत्र वत्सलता अन्यत्र देखने को नही मिलती है–

"प्रेम मगन कौसल्या निसि दिन जात न जान।
सुत सनेह बस माता बालचरित कर गान।।"[3]

और जब वही माता कौशल्या अपने पुत्र राम को वन के लिए विदा करती हैं। अयोध्या कांड के इस चौपाई में राम और माता कौशल्या का संवेदनशील संवाद है–

"जो केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।
जो पितु मातु कहेउ बन जाना। तो कानन सत अवध समाना।।"[4]

श्री राम माता कौशल्या से कहते हैं कि माता-पिता की आज्ञानुसार वन जाना भी वन नही लगता है वह सौ अयोध्या के समान है।

"बार-बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता।।
गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए।।"[5]

इस तरह के भावपूर्ण वर्णन माता कौशल्या और पुत्र का यहाँ देखने को मिलता है। माता कौशल्या का अपने पुत्र राम के प्रति प्रगाढ़ स्नेह रामचरितमानस में है। इस प्रकार राम की माता कौशल्या के प्रति तुलसी के मन में आदर्श मां का आदर्श रूप एवं पूजनीय भाव है। तो वहीं लक्ष्मण की माता सुमित्रा के प्रति भी आदर भाव है। रामचरितमानस में लक्ष्मण को वन के लिए विदा करते हुए सुमित्रा कहती हैं–

"पुत्रवती जुवती जग सोई।
रघुपति भगतु जासु सुत होई ॥"[6]

यहाँ सुमित्रा भी एक आदर्श माता हैं क्योंकि वे अपने पुत्र लक्ष्मण को वन जाते समय उनकी सेवा करने की बात कहती हैं। और कहती हैं कि जिसका पुत्र श्री राम का भक्त हो ऐसा पुत्र पाकर मैं धन्य हो गई हूँ। वह अपने पुत्र लक्ष्मण को राम-सीता की सेवा करने के लिए प्रेरित करते हुए कहती हैं–

"धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी।
तात तुम्हारी मातु बैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही।"[7]

इसके अतिरिक्त माता कैकयी का प्रसंग भी अयोध्याकांड में है जिसमें कैकई को पापिनि बताया गया है–

सुनि सुत बचन सनेहमय कपट नीर भरि नैन।
भरत श्रवन मन सूल सम पापिनि बोली बैन।"[8]

अपने पुत्र भरत को श्री राम के प्रति स्नेहपूर्ण वचन कहने पर कैकयी पाप कपट से पूर्ण जल अपने नेत्रों में भरकर भरत के कानों में और मन में शूल के समान वचन बोलने लगीं। अतरू तुलसीदास ने जहाँ माता कौशल्या और सुमित्रा को दया, आदर्श और ममता की मूर्ति के रूप में स्थापित किया तो वहीं कैकयी को अपने पुत्र मोह में स्वार्थिनी, पापिनी मां के रूप में कैकई को लाकर खड़ा कर दिया है। माताओं के व्यवहार में ये भिन्नता भी नारी के चरित्र पर प्रकाश डालती है कि एक तरफ मां कौशल्या और सुमित्रा हैं जो त्यागमयी हैं। दूसरी तरफ कैकई भी एक माँ है जो अपने पुत्र भरत के प्रेम में इतनी अंधी हो गई है कि अपने एक पुत्र का अधिकार छीनकर दूसरे पुत्र को देना चाहती हैं और पुत्रों के बीच में भी पक्षपात करती है। नारी के इन रूपों पर भी दृष्टिपात तुलसी- दास ने 'रामचरितमानस' में किया है।

तुलसी के 'रामचरितमानस' में जहाँ देवी समान नारी हैं तो वहीं कुटिल, मुढ़बुद्धि और अपयश की पात्रा मंथरा जैसी दासी भी हैं। वह अपनी मूर्खता के कारण वह कैकयी को उल्टी सीख देने में कामयाब हुई अयोध्या में जितनी अनहोनी हुई उसमें सबसे बड़ा योगदान इसी मंथरा का ही रहा।-अयोध्याकांड में इसका वर्णन हुआ है–

श्नामु मंथरा मंदमति, चेरी कैकइ केरि।
अयश पिटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि।।[9]

कैकई, मंथरा के अतिरिक्त तुलसीदास ने शूर्पणखा जैसी कुटिल और वासना में लिप्त भोग्या नारी का चित्रण भी

'रामचरितमानस' के श्अरण्यकाण्डश में किया है। साथ ही वे कहते हैं कि नारी के मायामयी रूप से सतर्क होने की शिक्षा भी वे देते हैं। यही दृश्य यहाँ दिखाया है कि कैसे रावण की बहन शूर्पणखा पंचवटी में दोनों राजकुमारों श्रीराम व लक्ष्मण को देखकर स्वयं पर काबू नही रख पाती है उसके मन में काम विकार पैदा हो जाता है

"सूपनखा रावन के बहिनी। दुष्ट हृदय दारून जस अहिनी।
पंचवटी सो गई एक बारा। देखि बिकल भई जुगल कुमारा।।[10]

तुलसीदास जी ने अपने रामचरितमानस में कैकई मंथरा शूर्पणखा जैसी अधम नारियों के विषय में बताया है तो कुलीन नारियों की भी चर्चा कम नहीं की है। उन्होंने माता पार्वती, सती अनुसूया, कौशल्या सुमित्रा, जनकदुलारी जानकी सीता के प्रति भी वे नतमस्तक रहे हैं। माता कौशल्या और सुमित्रा का वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। अब हम चर्चा करते हैं तुलसी के मानस में देवी स्वरूपा नारियों की जिनमें सर्वप्रथम रूप से हम वर्णन करेंगे रामचरितमानस के 'बालकांड' में शिव को राम के प्रति आकर्षित होते हुए देखकर सती को राम के ईश्वर होने पर संदेह होता है–

"सती सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा संदेहु बिसेषी।।"[11]

तभी शिव सती से कहते हैं–

"सुनहिं सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिअ उर काऊ।"[12]

अर्थात् सति के मन की शंका को शिव पहचान जाते हैं और कहते हैं कि शंका करना तो नारी का स्वभाव होता है। माता पार्वती को भी अपनी भूल का अहसास होता है वे भी स्वयं नारी की हठ, जड़ता, अज्ञानता मूढ़ता को स्वीकार करती हैं। और कहती है–

"सती हृदयं अनुमान किय सबु जानेउ सर्वग्य।
कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य॥"[13]

तुलसी ने देवी अनुसूया के माध्यम से जो उपदेश दिलवाया है वह सिर्फ सीता जी के लिए ही नहीं है अपितु सम्पूर्ण नारी जाति को सम्बोधित किया गया है।

"मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी।।
अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही।।"[14]

अर्थात देवी अनुसूया ने सीता जी से कहा कि, माता-पिता, भाई सभी हितकारी होते है लेकिन ये एक सीमित समय तक ही सुख देते है। परंतु पति अनंत सुख देने वाला होता है। वह स्त्री अधम है जो पति की सेवा नहीं करती है।

तुलसी ने मानस में 'किष्किन्धाकाण्ड' में खेतों और क्यारियों का उदाहरण देकर ये बताने की कोशिश की कि जैसे भारी वर्षा से खेतों की क्यारियाँ टूट जाती है वैसे ही नारी को यदि ज्यादा स्वतंत्रता दी जाए तो वह भी बिगड़ जाती है। जैसे चतुर किसान खेतों में से घास-कूड़ा निकालकर फेंक देते हैं। वैसे ही बुद्धिजन लोभ, मद, मोह को त्याग देते हैं। तुलसीदास एक संत साधु थे वो समाज को विकारग्रस्त होने से बचाना चाहते थे, ऐसा नहीं कि वे नारी-विरोधी थे बस वे तो नारी को ज्यादा स्वतंत्रता देने के पक्ष में नही थे। क्योंकि उनका मानना था कि यदि नारी को अधिक स्वतंत्रता मिली तो वह अपने आदर्श, मर्यादा, शील का उल्लंघन करती हैं। जिसका परिणाम स्वयं नारी को ही नहीं अपितु सारे परिवार को भुगतना पड़ता है।"[15]

"महाबृष्टि चलि फूटि किआरीश। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारी।।
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह पद माना।।"[16]

तुलसी ने शबरी के रूप में नारी को उनके मुख से ही स्त्री जाति को अधम कहलवाया। माता शबरी श्री राम से कहती हैं कि हे प्रभु। मैं किस विधि से आपकी स्तुति करूँ क्योंकि मैं तो अधम जाति की मूर्ख नारी हूँ मुझे इतनी बुद्धि नही है कि मैं विधि-विधान से आपकी स्तुति कर सकूँ।

"केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी।।
अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्हें महँ मैं मतिमंद अघारी।।"[17]

जहाँ नारी को अधम बताया वहीं तुलसी ने नारी को राजा बालि की पत्नी के रूप में ज्ञानवंत भी बताया है कि बालि की पत्नी ने सुग्रीव से युद्ध करने के पूर्व राजा बालि को समझाया था लेकिन बालि ने अपनी पत्नी की एक नही मानी परिणाम क्या हुआ वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। इसलिए श्री राम ने बालि से जब वह प्राण त्यागने वाला था उससे पूर्व राम ने बालि से कहा–

"मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना।।"[18]

यहाँ तुलसी ने नारी सिखावन पर बल दिया है कि नारी यदि अच्छी शिक्षा देती है तो पुरुष को भी मानना चाहिए। अन्यथा उसका परिणाम विपरीत भोगने पड़ सकते हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि तुलसी नारी को कैकई, मंथरा, शूर्पणखा के रूप में नकारात्मक पात्रा स्वीकारते हैं तो दूसरी ओर वे नारी की बुद्धि की प्रशंसा करने से भी नहीं चूकते हैं। एक ओर उन्होंने शूर्पणखा जैसी कामुक, वासना से भरी हुई कुल्टा नारी को वर्णित किया है तो 'रामचरितमानस' में ही तुलसी ने कौसल माता पार्वती, देवी अनुसूया, माता कौशल्या, सुमित्रा एवं जानकी सीता की प्रशंसा करने उनके पवित्र आचरण और उनकी पवित्रता का गुणगान करने से भी चूके नही हैं। इसी तरह की कुछ पंक्तियाँ चौपाई की बालकांड से–

"प्रभु तन चितई प्रेम तन ठाना। कृपानिधान राम सबु जाना।।"[19]

अर्थात् सीता जी ने श्री राम को देखते ही उनको मन ही मन पति रूप में वरण करने की ठान ली थी। यह प्रेम मर्यादित थी क्योंकि यह प्रेम मन में था होठों पर नहीं था। सीता जी के ऐसे मर्यादित प्रेम का चित्रांकन 'रामचरितमानस' में ही मिलता है। जिससे सीता का चरित्र देवी, कुलीन, शालीन एवं पतिव्रता के रूप में उभरकर सामने आया है

इसी प्रकार राम वन गमन प्रसंग में देखिए–

"चलन चहत बन जीवन नाथु। केहि सुकृति सन होइहि साथु।।
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाई न जाना।।"[20]

यहाँ प्राणनाथ (श्री राम) वन जाना चाहते हैं ऐसे में प्राण से अलग होकर बिना प्राण के ये शरीर क्या रह पाएगा। चौपाई सीता जी की दृढ़ प्रतिज्ञता और उनके अटल आत्मविश्वास का प्रतीक है। जो अपने प्राणनाथ के प्रति अडिग है सीता के पतिव्रत धर्म के पालन एवं उनके सच्चरित्र नारी होने का उल्लेख भी करता है।

इस प्रकार तुलसी ने स्त्री के पतिव्रता होने पर बल दिया। उन्होंने 'रामचरितमानस' में आदर्श नारियों के रूप में माता कौशल्या एवं सुमित्रा तथा पतिव्रता नारी के रूप में देवी पार्वती देवी सीता और सती अनसूया की परिकल्पना की है। साथ ही साथ उन्होंने पुरुष को भी पत्नीव्रता होने की बात कही हैं। क्योंकि तुलसी कहते हैं कि जितनी पवित्रता स्त्री के लिए जरूरी है उतनी ही पवित्रता पुरुषों के लिए भी आवश्यक है। तुलसीदास के विषय में आचार्य शुक्ल कहते हैं -"उनकी कुछ बातें तो विरक्त साधुओं के लिए हैं, कुछ साधारण गृहस्थों के लिए, कुछ विद्वानों और पंडितों के लिए भी है अतरू स्त्रियों को जो स्थान-स्थान पर बुरा कहा है, उसका ठीक तात्पर्य यह नहीं कि वे सचमुच वैसी ही होती हैं, बल्कि यह मतलब है कि उनमें आसक्त होने से बचने के लिए उन्हें वैसा ही मान लेना चाहिए। किसी वस्तु से विरक्त करना जिसका उद्देश्य है वह अपने उद्देश्य का साधन उसे बुरा कहकर ही कर सकता है। अतः स्त्रियों के संबंध में गोस्वामी जी ने जो कहा है, वह सिद्धान्त वाक्य नहीं है, अर्थवाद मात्र है। पर उद्दिष्ट प्रभाव उत्पन्न करने के लिए इस युक्ति का अवलम्बन गोस्वामी जी ऐसे उदार और सरल प्रकृति के महात्मा के लिए उचित था, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि स्त्रियाँ भी मनुष्य हैं–निंदा से उनका जी दुःख सकता है। स्त्रियों से काम उत्पन्न होता है, धन से लोभ उत्पन्न होता है, प्रभुता से मद उत्पन्न होता है, इसलिए काम, मद, लोभ आदि से बचने की उत्तेजना उत्पन्न करने के लिए वैराग्य का उपदेश देने वाले कंचन कामिनी और प्रभुत्त्व की निंदा करते हैं। बस इसी रीति का पालन तुलसी ने भी किया है। वे थे तो बैरागी ही।"[21]

इसलिए तुलसीदास की दृष्टि में 'रामचरितमानस' में नारी का देवी पार्वती व माता कौशल्या, माता सुमित्रा, देवी अनुसूया

के रूप में ममतामयी रूप देखने को मिलता है। सीता के रूप में एक आदर्श पतिव्रता, त्यागमयी का और करुणामयी नारी के रूप में देखा गया है तो भीलनी शबरी जैसी प्रेममयी नारी का चित्रण भी है। तो वहीं मंथरा और कैकई जैसी नरियाँ धर्म विरुद्ध कार्य करती हुई नजर आई हैं। उसी प्रकार कामुक प्रवृत्ति की विलासिनी शूर्पणखा जैसी नारी का वर्णन भी किया गया है। आज तक भी संसार में निंदनीय हैं और कोई भी अपनी कन्याओं के नाम कैकई, मंथरा या शूर्पणखा रखने से कतराते हैं। इसी सन्दर्भ में डॉ. बुद्ध प्रकाश ने कहा- "भारतीय धर्म एवं संस्कृति में नारी का धर्म उच्च कोटि का तभी बनता है जब वह करुणा और त्याग की मनोवृत्तियों से सुशोभित हो रही है।"[22] इसी प्रकार चंद्रावली त्रिपाठी कहते हैं, "नारी करुणा की मूर्ति के रूप में सदैव से पूजनीय है।"[23]

निष्कर्ष

वास्तव में तुलसीदास नारी विरोधी नहीं थे लोगों ने इस समाज ने उन्हें ऐसा मान लिया। तुलसी ने तो 'रामचरितमानस' में नारी को एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है। तुलसी को समाज में नैतिक मूल्यों का विकास करना था और समाज का विकास नारी पर भी निर्भर था इसलिए तुलसी ने एक सभ्य नैतिक समाज का निर्माण करने हेतु नारी के विषय में कुछ उपदेशात्मक बातें कहीं वो लोगों को नारी-विरोधी लगी जबकि तुलसी ने वो बातें नारी-पुरुष दोनों के ही हित में कही है ताकि एक सभ्य समाज विकसित हो सके। अतः तुलसी की दृष्टि मे नारी ममत्व, प्रेम, त्याग, करुणा, वत्सलता एवं क्षमा की देवी हैं। इसलिए तुलसी ने भी माता पार्वती, अनुसूया कौशल्या, सुमित्रा एवं सीता को पूजनीय माना तथा मंथरा, कैकई, शूर्पणखा को निंदनीय माना है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. तुलसीदास, रामचरितमानस, संस्करण-36, गीताप्रेस गोरखपुर मोतीलाल जालान प्रकाशन, 'सुंदरकाण्ड', पृ0 सं0- 444
2. तुलसीदास, 'रामचरितमानस', पृ.सं. 360, अरण्यकाण्ड, गीताप्रेस, गोरखपुर, प्रकाशन मोतीलाल जालान, संस्करण-36.
3. गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस', श्री विनायकी टीका सहित दोहा संख्या - 200, पृ0 सं0 - 328, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002. भाग-1
4. गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस', संस्करण, 1994, अयोध्या कांड, दोहा संख्या-56, पृ0 सं0 81, टवस. -2, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-2.
5. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्या काण्ड, दोहा संख्या-2. प्रकाशन, गीता प्रेस गोरखपुर
6. तुलसीदास, 'रामचरितमानस', अयोध्या कांड, दोहा संख्या, 74, पृ0 संख्या-101, भाग-2, श्री विनायकी टीका, वाणी प्रकाशन, गीता प्रेस, गोरखपुर
7. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्या कांड दोहा संख्या-71 पृ संख्या 99, भाग-2, श्री विनायकी टीका, वाणी प्रकाशन, गीता प्रेस गोरखपुर
8. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा संख्या - 158 पृ सं-158, भाग-2, श्री विनायकी टीका, वाणी प्रकाशन, गीता प्रेस गोरखपुर
9. तुलसीदास, रामचरितमानस, भाग-2, अयोध्यकांड दोहा संख्या-12, पृ0 सं0-32, श्री विनायकी टीका, वाणी प्रकाशन, गीता प्रेस, गोरखपुर
10. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, संस्करण - 36, गीता प्रेस, गोरखपुर, अरण्यकाण्ड, पृ0 सं. 369रू
11. तुलसीदास, श्री रामचरितमानस, संस्करण - 36, गीता, प्रेस, गोरखपुर बालकांड, पृ0 सं0 46.
12. तुलसीदास, श्री रामचरितमानस, संस्करण- 36, गीता प्रेस, गोरखपुर, बालकांड, पृ0 सं0 47
13. तुलसीदास, श्री रामचरितमानस, संस्करण-36, गीता प्रेस, गोरखपुर, बालकांड, दोहा संख्या - 57(क), पृ0 सं0- 50

14. तुलसीदास, श्री रामचरितमानस, संस्करण - 36, गीत प्रेस, गोरखपुर, अरण्यकांड, पृ0 सं0. 360
15. डॉ. माया प्रकाश पाण्डेय, 'गोस्वामी तुलसीदास', संस्करण - 1999, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, पृ0 सं0- 70
16. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, संस्करण-36, गीता प्रेस, गोरखपुर, 'किष्किन्धाकाण्ड', पृ0 सं0- 402
17. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, संस्करण-36, गीता प्रेस, गोरखपुर, 'अरण्यकाण्ड' पृ0 सं0-383.
18. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, संस्करण - 36,गीता प्रेस, गोरखपुर, किष्किन्धाकांड, पृ0सं0 - 399.
19. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, संस्करण - 36, गीता प्रेस, गोरखपुर, बालकाण्ड, पृ0 सं0- 148
20. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, संस्करण- 36, गीता प्रेस, गोरखपुर, अयोध्याकाण्ड, पृ0 सं0 -230.
21. डॉ. माया प्रकाश पाण्डेय, 'गोस्वामी तुलसीदास' संस्करण-1999, चिन्तन प्रकाशन कानपुर पृ0 सं. 69-70
22. भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास, दुर्गावती प्रकाशन, गोरखपुर।
23. डॉ. सरस्वती मिश्रा, भारतीय स्त्रियों की परिस्थिति, शारदा पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

पारिस्थिकी चेतना : 'हिडिम्ब' उपन्यास के संदर्भ में

गौरव सिंह
सहायक आचार्य
हिंदी विभाग, पीएसजी कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड साइंस, कोयम्बटूर तमिलनाडु
इमेल : gouravsingh@psgcas.ac.in
संपर्क : 9489328112

शोध सार

पारिस्थितिकी चेतना का तात्पर्य है - मनुष्य और प्रकृति के सह-अस्तित्व की भावना। यह चेतना उस सोच को इंगित करती है जो पर्यावरण की रक्षा, जैविक विविधता के संरक्षण तथा प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग के पक्ष में खड़ी होती है। यह केवल वनस्पति या जीव-जंतुओं तक सीमित नहीं, बल्कि उन समुदायों, विशेषकर किसानों और ग्रामीणों से भी जुड़ी है जो सीधे प्रकृति पर निर्भर होते हैं। वर्तमान समय में पारिस्थितिकी संतुलन का प्रश्न वैश्विक चिंता का विषय बन चुका है। साहित्य इस चिंता को न केवल स्वर प्रदान करता है, बल्कि इसके विभिन्न पक्षों को समाज के समक्ष उजागर भी करता है। घाटियों में पारिस्थितिकी तंत्र एवं पर्यावरणीय समस्याओं को उजागर करता एस. आर. हरनोट का उपन्यास 'हिडिम्ब' पारिस्थितिकी चेतना, किसान, जनजातीय जीवन तथा प्रकृति संरक्षण को केंद्र में रखकर लिखा गया एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, जो हिमाचल प्रदेश की एक घाटी में बसे गाँव की पारंपरिक कृषि व्यवस्था, सांस्कृतिक मूल्यों, और प्राकृतिक संसाधनों पर बाजारवाद के आक्रमण को उजागर करता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में 'हिडिम्ब' उपन्यास के माध्यम से प्रकृति, भूमि, जंगल, नशाखोरी, और पारिस्थितिकी को प्रभावित करने वाले पहलुओं का विश्लेषण किया गया है।

कुँजी शब्द : प्रकृति, पारिस्थितिकी, घाटी, पर्वत, गाँव, किसान, बाजारवाद

शोध आलेख

एस. आर. हरनोट का उपन्यास 'हिडिम्ब' केवल एक ग्रामीण किसान की त्रासदी नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक और पारिस्थितिकी चेतना का दस्तावेज है। यह उपन्यास हिमाचल प्रदेश की घाटियों की प्राकृतिक सुंदरता, वहाँ के किसानी जीवन, और इन सब पर मंडराते पूंजीवादी खतरे को सामने लाता है। शहिडिम्बश में प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं है, बल्कि एक जीवंत पात्र के रूप में उपस्थित है, जिसकी पीड़ा, दोहन और विनाश लेखक के चिंतन का केंद्र है।

लेखक इस घाटी में बसे गाँव को 'घाटी का गाँव' कहता है। और इसी गाँव में इसी गाँव में शावणू नाम का व्यक्ति है जो पेशे से किसान व जाति से 'नड़' है। इस गाँव में 'नड़' जनजाति का अकेला उसका ही घर है। शावणू के परिवार में उसकी पत्नी सूरमा देई और लड़की सूमा तथा बेटे का नाम काँसी है। शावणू इस घाटी में रहकर अपनी छोटी सी जोत में अपने परिवार के साथ खुश है। 'हिडिम्ब' के केंद्र में हिमाचल प्रदेश के एक छोटे से गाँव की कहानी है। उपन्यास के फ्लैप कवर

में इसका परिचय कुछ इस प्रकार से है जो उपन्यास में वर्णित पारिस्थितिकीय समस्याओं को उजागर कर देता है यथा –"इस उत्तर आधुनिक समय में जब जल, जंगल, पर्वत, जमीन की चिंताएँ हाशिये पर चली जा रही हैं, एस आर हरनोट का उपन्यास 'हिडिम्ब' इन चिंताओं को विमर्श के केंद्र में लाने की एक विनम्र कोशिश है। हरनोट जी ने सबसे सबसे पहले नायक शावणू के परिवार से अपने पाठकों का परिचय करवाया है। हरनोट एक विनम्र कथाकार हैं, लेकिन समय की क्रूरता को वे पूरी सख्ती के साथ पकड़ने की कोशिश करते हैं। यह उपन्यास इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि यह हिमाचल की एक दुर्गम अंचल की भौगोलिक विशिष्टताओं रीति-रिवाजों और जीवन से परिचित कराता है। हिंदी के बहुत से पाठकों के लिए यह एक बिलकुल अपरिचित लोक में प्रवेश करता है, जहाँ देवता है, गूर हैं उनके कारकुन हैं और काहिका जैसी परम्पराएँ हैं . साथ जहाँ मंत्री, सेक्रेटरी, प्रधान, व ठेकेदार हैं और उनकी सत्ता हैं। जहाँ नदी जैसा बहता निर्मल जीवन है, और पहाड़ जैसे ऊँचे चरित्र हैं और सब पर लगी समय की कुदृष्टि है। यह एक छोटे अंचल की कथा है। लेकिन इसके सरोकार वैश्विक हैं। यहाँ पर्यावरण की फिक्र भी है और सांस्कृतिक प्रदूषण की भी। सामाजिक क्षरण का मुद्दा है तो राजनीतिक भ्रष्टाचार का भी और सबसे बड़ी बात कि पहाड़ से भी ऊँचा साहस है जो तमाम दुखों-यंत्रणाओं और विडंबनाओं को मुंह चिढ़ाता नजर आता है।"[1] इस कथन के माध्यम से पाठक समझ जाता है कि उपन्यास की कथा वस्तु और पृष्ठभूमि किस तरफ इंगित करती है। यह उपन्यास पारिस्थितिकी चेतना के साथ - साथ किसान और घाटी में बसे आन जनमानस वो न केवल हिमाचल तक सीमित रखता अपितु विश्व में उपजी पारिस्थितिकी चेतना की समस्या को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करती है।

एस आर हरनोट का 'हिडिम्ब' उपन्यास अपनी जनजातीय संस्कृति को तो उजागर करता ही है साथ ही घाटियों में हो रहे अत्यंत विनाशकारी विकास और भी पाठक ध्यान खीचता है। सांस्कृतिक विघटन, पर्यावरण प्रदुषण और पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करने कारकों को उपन्यास में देवी हिडिम्बा के माध्यम से चेतावनी दी जाती है। वह प्रकृति स्वरुप होकर कहती है कि –"पंचो सुनो . सर्वनाश होगा – कुछ नहीं रहेगा – मेरा देवता नाराज है – दुखी है – मैं कहाँ जाऊं क्या करूँ, कहाँ है मेरी जगह-मेरी जमीन- मेरे चरांद – मैं कहाँ अपनी गउओं को चराऊँ – कहाँ भेड़ बकरियों को ले जाऊ – वे भूखी मर रही हैं– प्यासी मर रही हैं . चिड़ियों को बैठने के लिए पेड़ तक नहीं रखे मसाफरों को छावं नीं रही – पानी की बाव् बड़ियाँ नहीं खेतों में मक्की गेहूँ नहीं रहे – क्यारों में धान नहीं रहे – चोरी से भांग बीजते हैं– अफीम बेचते हैं – बच्चों को खिलाते हैं – सब कुछ गन्दा कर रहे दिया – नदी गन्दी कर दी वह रोती है – उसकी बहने की जगह नहीं – पापी मन हो गये सभी के – सुणो-पंचो-सुणो मैं बड़ी दुखियारी हूँ मेरा दम घुटता है तुम मेरे को बेचने को तुले हो। चारो तरफ बेईमानी है मैं अपणी जगह लूंगी चरांद लूंगी।"[2] प्रकृति की यह करुण पुकार इंसान को समझा रही है, सजग कर रही है और चेतावनी दे रही है कि संभल जाओ नहीं आने वाला समय अत्यंत कष्ट दायक होगा। मैं अपना सब कुछ वापस लूंगी। अर्थात मैं अपना रौद्र रूप धारण करके पारिस्थितिकी और पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाऊंगी।

आज का युग विकास और भोगवाद के बीच झूलता ऐसा समय है जहाँ प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन हो रहा है। वैश्विक तापमान, जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता का संकट, वनों की कटाई जैसी समस्याएँ हमारे अस्तित्व को ही चुनौती दे रही हैं। ऐसे में साहित्यकारों की यह जिम्मेदारी बनती है कि वे इन संकटों को शब्दों में ढालकर समाज को चेताएं। इसी क्रम में एस आर हरनोट का 'हिडिम्ब' उपन्यास एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

प्रस्तुत उपन्यास हिमाचल प्रदेश की किसी एक घाटी में बसे गाँव की कहानी के माध्यम से पाठकों को किसानी जीवन की उन स्थितियों से परिचय करवाता है जिनको कोई समझना नहीं चाहता न ही कोई जानना चाहता है। इस उपन्यास में वर्णित घाटी का गाँव भौगोलिक संरचना की दृष्टि से बहुत ही सुंदर और प्रकृति संपन्न है। यहाँ दूर-दूर तक देवदार के लंबे और सीधे वृक्ष हैं जो दूर से शंकु के आकार से दिखाई देते हैं। वहीं पास में बहती नदी और उसके पानी की कल-कल करती मधुर ध्वनि पाठक का मन मोह लेती है। यह उपन्यास छोटे किसानी जीवन के साथ-साथ प्राकृतिक एवं ग्रामीण सांस्कृतिक जीवन के ह्रास की व्यथा-कथा अपने आप में समेटे हुए है। इस उपन्यास के प्रारंभ में ही लेखक इस घाटी के गाँव की सुंदरता को स्पष्ट कर देता है यथा -"वहाँ का कुदरती नजारा बड़ा ही अद्भुत था। एकदम विलक्षण। विचित्रता अनूठी थी। काव्य के

नौ रसों में से एक। पहाड़ी ढलान से नीचे उतरते खेत, मानों छंदों में पिरोए हुए हों। दूर से देखने पर वह एक छोटा टापू सा लगता था। जैसे मामूली जमीन न होकर किसी देवता द्वारा संचालित हो।"[3] लेखक ने अत्यंत रोचकता के साथ और घाटी में बसे गाँव की यथार्थ छवि हमारे सामने प्रस्तुत की है। यहाँ कहना अनुचित न होगा की आज भी गाँव और उनमें भी घाटी के गाँव पर्यावरण पारिस्थितिकी के अत्यंत सहायक जान पड़ते हैं। इस पारिस्थिकी में रहने वाले हर प्राणी का अपना महत्व है।

आज वर्तमान में प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग व्यक्ति रूप से हो रहा है। अपने-अपने क्षेत्र के विधायक ग्रामीणों की जमीनों को हथियाने में लगे हुए हैं। 'हिडिम्ब' उपन्यास में दिखाया गया है कि एक विधायक एक ग्रामीण किसान की जमीन को हथियाने के साथ-साथ उस घाटी की अन्य सुंदर जमीन को भी हथियाना चाहता है इसके लिए वह किस हद तक गिर जाता है। हालाँकि शावणू उस जमीन को नहीं बेचना चाहता है। वह उसके लिए माँ है अर्थात वह जमीन सुंदर है, सुरक्षित है, पारिस्थितिकी में सहयोग देती है और उससे ही उसको खाने का अनाज प्राप्त होता है। वह जमीन पारिस्थितिकी का हिस्सा है इस लिए उसको वह बेचना नहीं चाहता है। वह विधायक से कहता है कि -"माई बाप! यह जमीन तो मेरे पुरखों की है। बाप दादा की है उन्हें बी ये देओ किरपा से परापत हुई थी। आज हमारी डॉट-सांझ है। रोजी-रोटी है सरकार। मेरी माँ है। मैं अपणी माए को कैसे बेच सकता हूँ। मेरे को नी बेचणी है जमीन। नहीं बेचणी है।"[4] कोई भी किसान अपनी जर–जमीन से अलग नहीं होना चाहता है। फिर भी सत्ता में काबिज विधायक जैसे नेता किसानों को उनकी जमीन बेचने पर विवश कर देते हैं। हालाँकि शावणू किसान किसी भी कित पर अपनी जमीन को नहीं बेचता है क्योंकि जमीन उसके लिए उसकी माँ के समान है। अंत में वह अपनी जमीन अस्पताल बनाने के लिए दान कर देता है।

आज का दौर बाजार का दौर है। हिमाचल प्रदेश जैसे सुंदर और रमणीय प्रदेश में गांवों की हालत इस बाजारवाद के कारण खराब हो रही है। जहाँ कृषि योग्य भूमि है उसको पूंजीपति हथिया कर होटल, सिनेमा, पर्यटन आदि बनाना चाहते हैं और इसके लिए वह किसी भी हद तक गिर जाते हैं। मंत्री भी शावणू की जमीन इसीलिए हथियाना चाहता है जिस पर वह आलीशान बंगला, होटल, तथा लंबा-चौड़ा बाग लगा सके। लेकिन एक किसान की जमीन को हड़पकर इतनी सुख-सुविधा का विचार करना भी अपराध है। जहाँ अनाज, शाक-सब्जी, और फलों की फसलें उगती हों वहाँ पत्थर लगाने की क्या जरूरत है? सैलानियों की सुविधा के लिए अन्य स्थान को खोजकर उस पर निर्माण कार्य कराया जाना बेहतर है बजाय किसी गरीब किसान को लूट कर। लोग जमीन बेच भी रहे हैं जिसका कारण है नशे की लत और उसकी बिक्री। इस घाटी में भी नशे का धंधा चलता है और जिसके चलते अनेकों परिवार तबाह हो गए। शावणू का मित्र शोभा जोकि शावणू से उम्र में बड़ा है लेकिन शावणू का वह हमजोली के जैसे है मानता है। शोभा के दो बेटे इसी नशे की लत में बर्बाद हो गए। गांवों में हो रही नशा खोरी और नाबालिग बच्चों को नशे का आदी बनाया जाना आदि निकृष्ट कामों का उल्लेख उपन्यास में चित्रित किया है।

घाटियाँ पर्यटन स्थल भी होती हैं। वहाँ विदेशियों का आना जाना बना रहता है। विदेशी पर्यटक अपने साथ-साथ ग्रामीण युवाओं को भी नशे का सेवन करवाते हैं। शावणू और शोभा के वार्तालाप से पता चलता है कि किस तरह से युवा नशे का शिकार होकर जमीन को बेच रहे हैं–"मैंने तो सुणा है शोभा जे म्हारे लोगो ने बहुत ज़मीनें बेच दीं। म्हारे लोग सोचते नी कि धरती तो म्हारी माए है। मैं तो देखता हूँ कि म्हारे छोकरे-छल्ले तो दारू भांग में ही मस्त हैं। इन परदेशियों के गुलाम ही बण गए। मालिक नोकर होर नोकर मालिक। कितणा बुरा समा अ गया शोभा।"[5] इस उपन्यास में जमीन व पारिस्थितिकी की समस्याओं के साथ-साथ नशा खोरी, जंगलों की लकड़ी का अवैध कटान, मास्टरों के गिरते नैतिक मूल्यों व प्रधान की हैवानियत का यथार्थ चित्रण किया है। साथ ही उपन्यास किसान जीवन की उन अनेकों समस्याओं को उजागर करता है जिसके कारण हिमाचल प्रदेश की घाटियों में किसान प्रताड़ित हैं। इस प्रदेश में ग्रामीण इलाके बहुत सुंदर और प्रकृति से भरपूर एवं जीवंत हैं। यही सुंदरता इन ग्रामीणों की समस्या का मुख्य कारण भी है। मंत्री जैसे बड़े पूंजीपति ज़ूयादातर अपना आशियाना और पर्यटकों के पर्यटन स्थल बनाने में लगे हैं जिसके कारण किसान को अपनी जमीन बेचनी पड़ रही है। प्राकृतिक सौंदर्य

से युक्त घाटियों को किस प्रकार से विकास के नाम पर नशाखोरी और अन्य समाज विरोधी तत्वों को समाज में फैलाया जा रहा हैं उनका वास्तविक चित्रण लेखक ने सफलतापूर्वक किया है।

पत्थर से बने और चमचमाते आलीशान भवन, विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं सूचना तकनीक के क्षेत्र में मनुष्य बहुत तीव्रता के साथ छलांग लगाते हुए अपने और प्रकृति के मध्य एक लम्बी दूरी तय करता जा रहा है। आज जिन उपलब्धियों पर अपने आप को शहंशाह समझ रहा है लेकिन वही रूप और काल बदल कर भयानक त्रासदी कब उसके समक्ष आ जाए वह नहीं जानता है। विकास के संदर्भ में डॉ. नीलम अपने शोध आलेख में डॉ. हरिमोहन सक्सेना की पुस्तक 'पर्यावरण प्रदूषण' से तथ्य संदर्भित करते हुए लिखती हैं कि—"यह सत्य है विकास का पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि विकास को रोक दिया जाए आवश्यकता इस बात की है कि विकास को सही दिशा दी जाए, उसे मानवोपयोगी बनाया जाए उसका पर्यावरण पर कुप्रभाव न हो। यह कार्य सम्पूर्ण विश्व को सामूहिक रूप से करना है, इसमें वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं के साथ – साथ प्रशासकों एवं सामान्य जानता को भी योगदान देना है। यह कार्य क्षेत्रीय सीमाओं से हटकर रह कर वैश्विक स्तर पर करना आवश्यक है, तभी विकास की सार्थकता है।"[6] संभव है कि यदि विकास के नाम पर विनाश की बीज न बोए जाएँ तो पर्यावरण पारिस्थितिकी कोई हानि न हो। किन्तु विकास नाम पर हो धन उगाही, वृक्षों की अंधाधुंध कटाई, नदियों पर बने बांध, जंगली पशुओं का शिकार, विभिन्न कल कारखाने आदि के कारण पारिस्थितिकी को अत्यंत हानि पहुँचती है।

अंततः कह सकते हैं कि 'हिडिम्ब' केवल एक घाटी के गाँव की कहानी नहीं है बल्कि विश्व में बसे हर उस गाँव का पारिस्थितिक घोषणा-पत्र है जहाँ विकास के नाम पर घाटियों को नष्ट अथवा निजी बनाया जा रहा है। यह उपन्यास हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि हिमाचल जैसी रमणीय घाटियाँ पर्यटन या व्यापार का साधन मात्र ही नहीं हैं बल्कि एक जीवंत पारिस्थितिकी तंत्र का हिस्सा हैं।

संदर्भ सूची

1. हिडिम्ब, एस आर हरनोट. आधार प्रकाशन पंचकुला हरियाणा, वर्ष 2004, पृष्ठ सं. फ्लैप कवर से
2. हिडिम्ब, एस आर हरनोट. आधार प्रकाशन पंचकुला हरियाणा, वर्ष 2004, पृष्ठ सं. 92
3. हिडिम्ब, एस आर हरनोट. आधार प्रकाशन पंचकुला हरियाणा, वर्ष 2004, पृष्ठ सं. 09
4. हिडिम्ब, एस आर हरनोट. आधार प्रकाशन पंचकुला हरियाणा, वर्ष 2004, पृष्ठ सं. 22
5. हिडिम्ब, एस आर हरनोट. आधार प्रकाशन पंचकुला हरियाणा, वर्ष 2004, पृष्ठ सं. 68
6. उद्धृत, पारिस्थितिकी दर्शन में सतत विकास की अवधारणा, डॉ. नीलम, IJCRT, VOL - 6, ISSUE-2 APRIL 2018

Address :
Gourav Singh
Assistant Professor, Department of Hindi
PSG College of Arts & Science Coimbatore Tamil Nadu - 641014
Contact : 9489328112
Email : gouravsingh@psgcas.ac.in

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

प्रेमचंद : देशभक्तिपरक कहानियाँ

सुभाष चंद्र वर्मा
सहायक आचार्य (हिंदी)
राजकीय महाविद्यालय राजगढ़, चूरू (राज.)
मेल - subhashchandravermatoda@gmail.com
मो. न. 9015601002

बीज शब्द- सोज़े वतन, राष्ट्रीयता, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, स्वराज, आधुनिकता, राजद्रोह, पूंजीवाद, जनतंत्र, आत्मोत्सर्ग।

प्रेमचंद परिचय- आनंदी देवी और अजायबराय के घर 31 जुलाई 1880 को उत्तर प्रदेश के लमही गांव में जन्मे प्रेमचंद ने हिंदी साहित्य को सैकड़ो कहानीयाँ, दर्जनों उपन्यास, नाटक, दिए व 'जागरण' और 'हंस का संपादन किया। प्रेमचंद की कहानियों में देशप्रेम कूट कूटकर भरा है। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं—'प्रेमचंद का हृदय संकुचित राष्ट्रवाद से ऊपर था। वे जानते थे कि इंसाफ और नई जिंदगी के लिए तमाम दुनिया की आम जनता जो लड़ाई लड़ रही है, हिंदुस्तान का स्वाधीनता आंदोलन उसी का हिस्सा है। वे हिंदुस्तान के लोगों में एक नया भाव देख रहे थे कि दुनिया के तमाम मेहनत करने वाले लोग भाई भाई हैं।'[1] मात्र 80 पृष्ठों का उर्दू में लिखा कहानी संग्रह सोज़े वतन है। देश प्रेम की प्रधानता के कारण ब्रिटिश सरकार ने इस संग्रह को जप्त कर लिया। सोज़े वतन का एक तरह से अर्थ है—' देश का दर्द' ।इस संग्रह में कुल पांच कहानियां - दुनिया का सबसे अनमोल रतन, शेख़ मख़मूर, यही मेरा वतन है, शोक का पुरस्कार, सांसारिक प्रेम और देश प्रेम। इन कहानियां ने जनमानस में देश प्रेम की भावना को प्रबल किया।

सोज़े वतन की भूमिका- 'सोज़े वतन 'की भूमिका में भी देश प्रेम झलकता है—''हमारे मुल्क को ऐसी किताबें की असद (सख्त) जरूरत है, जो नई नस्ल के जिगर पर हुब्बे- वतन (देश प्रेम)की अज़मत (महिमा) का नक्शा जमायें।'[2] सोज़े वतन कहानी संग्रह की राष्ट्रीयता का अंदाजा हम उस पत्र से लगा सकते है जो पत्र उन्होंने महावीर प्रसाद द्विवेदी को रिव्यू हेतु लिखा। उन्होंने उन्होंने द्विवेदी को लिखा था कि यह किताब निजी उद्देश्य से नहीं लिखी गई है।

दुनिया का सबसे अनमोल रतन

'इस कहानी में एक वीर सैनिक की वीरता को उद्घाटित किया गया है, जो जन्मभूमि के रक्षार्थ अपने प्राण न्योछावर करता है।उसके रक्त रंजित शरीर से निकलने वाली रक्त की बूंदे ही दुनिया का सबसे अनमोल रतन है। प्रेमचंद हिंदुस्तान की प्रकृति और सोना उगने वाली धरती के संबंध में लिखते हैं -"मुद्दतों तक कांटों से भरे हुए जंगलों,आग बरसाने वाले रेगिस्तानों, कठिन घाटियों और अलंग्य पर्वतों को तय करने के बाद दिलफ़िगार आज हिंद की पाक सरज़मीन में दाखिल हुआ"[3] जब दिलफ़िगार लड़ाई के मैदान में घायल सिपाही जिसके सीने से खून का फव्वारा जारी है, पूछता है— 'ऐ जवाँमर्द, तू कौन है? जवाँमर्द ने यह सुनकर आंखें खोली और वीरों की तरह बोला- भारत का सपूत हूं।'..मरने वाले में धीमे से कहा

-'भारत माता की जय!और उसके सीने से खून का आखिरी कतरा निकल पड़ा। प्रेमचंद कहना चाहते है कि खून का आखरी कतरा निकलने तक 'भारत माता की जय 'करना ही जीवन है। उसने फ़ौरन उस खून की बूंद को जिसके आगे यमन का लाल भी हेच है हाथ में रख लिया। दिलफ़रेब ने जब दिलफ़िगार से कहा-'अब की तू बहुत दिनों के बाद वापस आया है। ला दुनिया की सबसे बेशक़ीमती चीज़ कहा है? दिलफ़िगार ने मेहंदी रची हथेलियां को चूमते हुए खून का वह कतरा उस पर रख दिया प्रेमचंद न केवल पुरुषों में राष्ट्रीय भावना का संचार करना चाहते थे बल्कि वे चाहते थे की स्वाधीनता आंदोलन में महिलाएं भी आगे आए। तभी तो प्रेमचंद ने यह दिखाया है कि एक महिला की नजर में भी संसार की सबसे अनमोल चीज वतन की हिफाजत में बहने वाला रक्त है। इसका प्रभाव दिलफ़रेब पर यह हुआ कि वह मनसद से उठी और कई क़दम आगे बढ़कर उससे लिपट गई। दिलफ़िगार से बोली-' आज से तू मेरा मालिक है और मैं तेरी लौंडी। यह कहकर उसने एक रत्न जड़ित मंजूषा मंगाई और उसमें से एक तख्ती निकाली जिस पर सुनहरे अक्षरों में लिखा हुआ था -'खून का वह आख़िरी कतरा जो वतन की हिफ़ाजत में गिरे दुनिया की सबसे अनमोल चीज है।'[4]

शेख़ मख़मूर- एक सैनिक किस तरह अपने संघर्ष एवं देश प्रेम की भावना से अपने राष्ट्र को स्वतंत्र करता है।मसऊद के माध्यम से प्रेमचंद ने एक वीर सैनिक की वीरता का वर्णन करते हुए यह दर्शाया है कि एक फौजी नौजवान के लिए उसका राष्ट्रीय ही सर्वोपरी है।मसऊद का जिस्म जख्मो से छलनी हो गया। खून के फव्वारे जारी थे और खून की प्यासी तलवारे ज़बान खोल बार-बार उसकी तरफ लपकती थीं और उसका खून चाटकर अपने प्यास बुझा लेती थी।' प्रेमचंद युवाओं को प्रेरणा देना चाहते थे की स्वाधीनता आंदोलन में वे भी मसऊद की तरह आगे आए।' मसऊद पर इस वक्त उसकी फौजी घमंड करती थी।लड़ाई के मैदान में सबसे पहले उसी की तलवार चमकती थी।और धावे के वक्त सबसे पहले उसी के क़दम उठते थे।दुश्मन के मोर्चे में ऐसा बेधड़क घुसता था जैसे आसमान में चमकता हुआ लाल तारा।'[5]

यही मेरा वतन है -यह कहानी लंबे प्रवास के बाद अपने वतन को लौटे एक नौजवान के देश प्रेम को दर्शाती है - आज पूरे 8 वर्ष के बाद मुझे अपने वतन, प्यारे वतन का दर्शन। जब नायक गंगा नदी को देखा है तो मां की गोद की तरह उसमें कूद पड़ता है।प्रेमचंद यहां नदियों में मां देखते हैं। प्रेमचंद दिखाना चाहते हैं कि सच्चा राष्ट्रीय भक्ति अपने देश की हर एक वस्तु से प्रेम करता है।-' मेरे लड़के और मेरी बीवी मुझे बार-बार बुलाते हैं मगर अब मैं यहां गंगा का किनारा और यह प्यारा देश छोड़कर नहीं जा सकता मैं अपनी मिट्टी गंगा जी को सोपूंगा।अब दुनिया की कोई इच्छा कोई आकांक्षा मुझे यहां से नहीं हटा सकती क्योंकि यह मेरा प्यारा देश मेरी प्यारी मातृभूमि है और मेरी लालसा है कि मैं अपने देश में मरूं'[6] प्रेमचंद इस कहानी के माध्यम से भारतवासियों को एक संदेश देते हैं कि व्यक्ति को अपने देश से अंतिम क्षणों तक प्रेम होना चाहिए और उसकी अंतिम आकांक्षा, अंतिम इच्छा अपने वतन में ही मर मिटने की होनी चाहिए।

सांसारिक प्रेम और देश प्रेम

इटली का निर्वाचित सैनिक मैज़िनी लंदन में सोचता है 'अहा बदनसीब कोम! ए मजलूम इटली! क्या तेरी किस्मतें कभी न सुधरेंगी, क्या तेरे सैकड़ो सपूतों का खून ज़रा भी रंग न लायेगा! प्रेमचंद दिखाना चाहते हैं कि युवाओं ने अपने देश को आजादी दिलाने के लिए जो खून बहाया है वह खून व्यर्थ नहीं जाएगा। प्रेमचंद विदेशी कहानियां व पत्रों के माध्यम से भी भारतीयों में राष्ट्रीयता का संचार करना चाहते थे। तभी तो उन्होंने इटली के प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी मैजिनी को आधार बनाकर भारतीय युवाओं के सामने एक आदर्श रखा है। 'मेरा प्यार वतन, मेरा प्यारा देश, धोखेबाज अत्याचारी दुश्मनों के पैरों तले रौंदा जाए। मेरे प्यारे भाई, मेरे प्यारे हमवतन अत्याचार का शिकार बने, नहीं मैं यह देखने को जिंदा नहीं रह सकता!'[7] रफ़ेती मैजिनी का दोस्त जेल में उसके साथ है। मैग्डलीन जोज़ेफ़ की पत्नी स्विट्जरलैंड के समृद्ध व्यापारी की बेटी। इटली से निर्वासित मैजिनी स्वीटजरलैंड में जाकर शरण लेता है। मैग्डलीन उससे कहती है— मुझे अपनी सेवा में स्वीकार कर लीजिए। प्रेमचंद ने इस कहानी के माध्यम से यह दर्शाया है कि व्यक्तिगत प्रेम से बड़ा राष्ट्रीय प्रेम होता है प्रेम और राष्ट्र में पहले राष्ट्र है।' जमाने की पुरजोश उम्मीदें दिल में लहरें मार रही थी मगर उसने संकल्प कर लिया था कि मैं देश और जाति पर

अपने को न्योछावर कर दूंगा' और इस संकल्प पर कायम रहा।

समर यात्रा व अन्य कहानियां

सन् 1932 में प्रकाशित 12 कहानियों का संग्रह सरकार द्वारा उसी वर्ष जप्त कर लिया गया। कानूनी कुमार,जुलूस, पत्नी से पति, समर यात्रा, आहुति, जेल, लांछन होली का उपहार आदि कहानी देशप्रेम से ओतप्रोत थीं।

पत्नी से पति

स्वदेशी और खादी को आधार बनाकर लिखी गई इस कहानी में पति विदेशी वस्तुओं से तो पत्नी स्वदेशी वस्तुओं से प्रेम करती है। गोदावरी कांग्रेस अधिवेशन में जाती और चंदा देता है। इससे सेठ साहब को नौकरी से बर्खास्त कर देते हैं।जब साहब कहते हैं कि अब घर कैसे चलेगा तो गोदावरी कहती है—'बड़प्पन सूट- बूटऔर ठाठ- बाट में नहीं है जिसकी आत्मा जिंदा है, वही ऊंचा है।'[8] गोदावरी में सत्याग्रह का बल है वह आत्मबल और मानसिक दृढ़ता से घर की चारदीवारों से मुक्त होकर देश की आजादी के लिए निकलती है।

समर यात्रा

स्वाधीनता के लिए सत्याग्रह, आत्मबल, अभयता अनिवार्य कुंजी है।-' स्वराज चित की वृत्ति मात्र है। ज्यों ही पराधीनता का आतंक दिल से निकल गया, आपको स्वराज मिल गया। भय पराधीनता है निर्भयता ही स्वराज है।'[9]

शराबबंदी और नशाखोरी गांधीजी की राजनीति के अनिवार्य पहलू थे। शराबबंदी हेतु उन्होंने सत्याग्रहियों का दल तैयार किया। प्रेमचंद ने प्रभावित होकर' शराब की दुकान' कहानी लिखी।

जुलूस - अंग्रेजी सेना के भारतीय नुमाइन्दे दरोगा बीरबल सिंह है। मिट्ठन बीरबल की पत्नी है। बीरबल स्वराज आंदोलन को कुचलने पर उतारू है। इब्राहिम आंदोलन का गांधीवादी तरीके से नेतृत्व कर रहे हैं। आंदोलन में हुए शहीदों के मातम में बड़ा जुलूस निकाला। आंदोलनकारी की पहली कतार में आगे चल रही बीरबल की पत्नी मिट्ठन ने स्त्रियों को बताया कि बीरबल ने ही इब्राहिम की हत्या की है। स्त्रियां बीरबल को लज्जित करती है। एक बूढ़ी स्त्री कहती है - 'मेरी कोख में ऐसा बालक जन्म होता, तो उसकी गर्दन मरोड देती।'[10] अंत में बीरबल का हृदय परिवर्तन होता है।

जेल

किसानों से जबरन टैक्स,लगान वसूली का चित्रण है। किसने की जायदाद,संपत्तियों को कुकी, मारपीट सामान्य बात है।' सरकार को अपने कर से मतलब है प्रजा मरे या जियें, उससे कोई प्रयोजन नहीं।'[11] पुलिस की मार से किसान मर जाता है। मृदुला का पति और उसके बाद सास भी मारे जाते हैं। जुलूस को देखने छत पर चढ़ी मृदुला के नन्हे बच्चे की भी गोली लगने से मौत हो जाती है। मृदुला ने सरकार के खिलाफ खिलाफ जुलूस निकाला। इस आवाज में मृदुला को जेल में डाल दिया जाता है। स्वाधीन चेतना की स्त्रियों ने जेल की दीवारों को' भारत मां की जय' के हुंकार से भर दिया।

प्रेमचंद की यह जप्तशुदा कहानीयाँ राष्ट्रवादी लघु कहानियों का प्रतिनिधित्व करती है। इसके अलावा गांधी के' हिंद स्वराज' संबंधी विचारों कर्मो की बहुरंगी छवि है। काका कालेलकर ने हिंद स्वराज के संबंध में लिखा है—'यह किताब द्वेषधर्म की जगह प्रेमधर्म सिखाती है। हिंसा की जगह आत्म बलिदान को स्थापित करती है और पशुबल के खिलाफ टक्कर लेने को आत्मबल को खड़ा करती है।'[12] उनकी कहानियों में उपनिवेशवाद,साम्राज्यवाद, पूंजीवाद का विरोध है। वैचारिक दृष्टि से गांधी यह काम प्रेमचंद के बाद करते हैं। एक ही वक्त में भारतीय साहित्य और राजनीति के दो शीर्ष व्यक्तित्व व लेखक अपनी लेखनी, दृष्टि, चिंतन व विचार से ब्रिटिश उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद से सीधे मुठभेड़ कर रहे थे।

संदर्भ

1. प्रेमचंद और उनका युग- रामविलास शर्मा, पृष्ठ-47
2. सोज़े वतन-पृष्ठ-5
3. वही, पृष्ठ-30
4. सोज़े वतन पृष्ठ-32
5. सोज़े वतन पृष्ठ-39
6. वहीं, पृष्ठ-56
7. वही, पृष्ठ-69
8. प्रेमचंद : सोज़े वतन तथा अन्य जप्तशुदा कहानी -संपादक अग्रवाल,बलराम पृष्ठ-90
9. वहीं पृष्ठ-100
10. वही, पृष्ठ-78
11. वही, पृष्ठ-134
12. गांधीजी, हिंद स्वराज (अनुवादक अमृतलाल ठाकोरदास)

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

बूढ़ी काकी : यथार्थ से आदर्श की अन्तर्यात्रा

डॉ. रजिंदर कौर
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
माता सुंदरी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शोध सार : प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के माध्यम से सामाजिक समस्याओं को प्रमुखता से उठाया है। बूढ़ी काकी कहानी प्रेमचंद की एक मर्मस्पर्शी कहानी है। इस कहानी में प्रेमचंद ने वृद्धों की समस्या को दर्शाया है। यह कहानी समाज में पनप रही वृद्धों की उपेक्षा की समस्या को प्रस्तुत करती है। बुजुर्गों की जरूरत को समझने, उनका सम्मान करने तथा उनके प्रति करुणा पूर्ण व्यवहार रखने का संदेश प्रेमचंद इस कहानी के माध्यम से देते हैं।

बीज शब्द : वृद्ध, उत्सव, क्षुधा, स्वाद, थाल, जिह्वा।

प्रस्तावना

कथा सम्राट प्रेमचंद के बिना हिंदी कहानी परंपरा की कल्पना भी नहीं की जा सकती। उनका लेखन केवल मनोरंजन ही नहीं करता बल्कि वह समाज को जगाता है, उसकी कमजोर नसों पर हाथ रखता है और इंसानियत की गहराइयों को टटोलता है। प्रेमचंद ने कहानी के विषय में लिखा है - "हम कहानी ऐसी चाहते हैं कि वह थोड़े से थोड़े शब्दों में कहीं जाए। उसमें एक वाक्य, एक शब्द भी अनावश्यक ना आने पाए। उसका पहला ही वाक्य मन को आकर्षित कर ले और अंत तक मुग्ध किए रहे और उन में कुछ चटपटा पन हो, कुछ ताजगी हो और उसके साथ कुछ तत्व भी हो। तत्वहीन कहानी से चाहे मनोरंजन भले ही हो जाए,मानसिक तृप्ति नहीं होती। यह सच है कि हम कहानियों में उपदेश नहीं चाहते लेकिन विचारों को उत्तेजित करने के लिए मन के सुंदर भावों को जागृत करने के लिए कुछ ना कुछ आवश्यक चाहते हैं। वही कहानी सफल होती है जिसमें इन दोनों में से मनोरंजन और मानसिक तृप्ति में से एक आवश्यक उपलब्ध हो।"[1] कहानी के इस आदर्श को सबसे सफलतम रूप में पुष्ट करने वाले सबसे सफल कहानीकार स्वयं प्रेमचंद ही है जिनकी कालजयी रचनाएं आज भी इसकी उद्घोषणा करती प्रतीत होती है।

'बूढ़ी काकी' प्रेमचंद द्वारा रचित एक मर्म स्पर्शी तथा सामाजिक चेतना को जागृत करने वाली कहानी है। इस कहानी के माध्यम से प्रेमचंद ने समाज में बुजुर्गों की दुर्दशा, उनकी उपेक्षा और साथ ही उनके साथ होने वाले दुर्व्यवहार को बड़ी मार्मिकता से प्रस्तुत किया है। बूढ़ी काकी जैसा की शीर्षक से ही स्पष्ट है इसमें एक चरित्र को केंद्र में रखा गया है और वह चरित्र बूढ़ी काकी का है। पूरी कहानी उन्हीं के इर्द-गिर्द घूमती है। कहानी की शुरुआत ही इस पंक्ति से होती है– "बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है।"[2] इसमें कई संदेह नहीं है कि बुढ़ापा आते ही मानव के स्वभाव में बचपन के गुण आने लगते हैं। बूढ़ी काकी भी इसका अपवाद नहीं है। वह हर समय सिर्फ और सिर्फ खाने के बारे में ही सोचती है। उनकी सबसे बड़ी इच्छा है खाना। उनके लिए खाना केवल शारीरिक आवश्यकता नहीं है बल्कि एकमात्र खुशी का स्रोत है।

वृद्धावस्था में साधारणता शारीरिक शिथिलता आ जाती है। व्यक्ति अपना काम करने में असमर्थ हो जाता है। कहानी

में बूढ़ी काकी भी शारीरिक शिथिलता तथा असमर्थता के कारण अपना कार्य करने में असमर्थ है।इसका चित्रण कहानी में प्रकार किया गया है -"नेत्र,हाथ और पैर सब जवाब दे चुके थे। पृथ्वी पर पड़ी रहती थी और जब घर वाले कोई बात उनकी इच्छा के प्रतिकूल करते या भोजन का समय टल जाता उसका परिमाण पूर्ण न होता अथवा बाजार से कोई वस्तु आती और उन्हें न मिलती तो वह रोने लगती थी उनका रोना,सिसकना साधारण रोना ना था वह गला फाड़- फाड़ कर रोती थी।"[3]

मनुस्मृति के व्यवहार पाद में यह कहा गया है कि वृद्धों की सेवा करने से व्यक्ति की आयु, कीर्ति तथा शक्ति की वृद्धि होगी। आज के परिवेश में परिस्थिति इसके बिल्कुल ठीक विपरीत है। आज संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। पारिवारिक मूल्य बदल रहे हैं। वृद्धों को एक समस्या के रूप में देखा जाने लगा है। कहानी में बूढ़ी काकी भी परिवार वालों के लिए एक समस्या के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

आज पारिवारिक संबंध स्वार्थ और लालच पर आधारित है। नई पीढ़ी के पास बुजुर्गो के लिए फालतू समय नहीं है। कहानी में बुद्धिराम जो कि बूढ़ी काकी का भतीजा है बूढ़ी काकी उन्हीं के पास रहती है। अगर काकी के अपने पति और बच्चे होते, तो हो सकता है एक हद तक उनकी स्थिति ठीक भी होती, पर अब उनका अपना कोई न था। उनके पति का स्वर्गवास हो चुका था। उनके सात बच्चे हुए लेकिन सातों बेटे तरुण होकर चल बसे। भतीजे के अलावा उनका इस दुनिया में कोई नहीं था। उन्होंने यह सोचकर अपनी सारी संपत्ति भतीजे के नाम कर दी कि वह और उसकी पत्नी उनकी खूब सेवा करेंगे। बुद्धिराम भी बूढ़ी काकी से लंबे चौड़े वादे करके सारी संपत्ति अपने नाम लिखवा लेता हैं। हालांकि उस संपत्ति से डेढ़ - दो सौ रुपए वार्षिक आय होती थी लेकिन बूढ़ी काकी को भरपेट भोजन भी कठिनाई से मिल पाता था। इस प्रकार संपत्ति पाकर बुद्धिराम काकी को दूध में पड़ी मक्खी की तरह निकाल देता है "भतीजे ने संपत्ति लिखाते समय तो खूब लबे -चौड़े वादे किए परंतु वे सब वादे केवल कुली डिपो के दलालों के दिखाए हुए सब्ज बाग थे। यद्यपि उस संपत्ति की वार्षिक आय डेढ़ दो सौ से कम न थी तथापि बूढ़ी काकी को भरपेट भोजन भी कठिनाई से मिलता था।"[4]

मनुष्य जैसे -जैसे बुढ़ापे की ओर बढ़ता है वैसे-वैसे उसे असुरक्षा के भाव घेरने लगते हैं। वह भय,घुटन और अकेलेपन का शिकार होने लगता है।जो कभी किसी समय परिवार का मुखिया था, पर अब वह एक वस्तु की तरह घर में अकेले पड़ा रहता है। ऐसे समय में वृद्धों को प्रेम और सहानुभूति की आवश्यकता होती है लेकिन स्थिति इसके ठीक विपरीत होती है। वृद्धों को अकेले ही छोड़ दिया जाता है। वह अपनी मनरू स्थिति को दूसरों के साथ व्यक्त नहीं कर पाते हैं।घर के सदस्य अपनी व्यस्तता के कारण उनके साथ समय व्यतीत नहीं कर पाते। वृद्ध इसी कारण बात करने के लिए तरसते हैं। वह किसी से बात करके अपनी भावना, अपने दुख दर्द को बांटना चाहते हैं तो घर के लोगो को यह ग्वारा नहीं होता। कहानी में बूढ़ी काकी को भी अकेलेपन की पीड़ा को झेलना पड़ता है। घर के लोग उनसे बात तक नहीं करते। जब वह किसी अन्य व्यक्ति से बात करती हैं तो उनका भतीजा और उसकी पत्नी रूपा को यह अच्छा नहीं लगता। इससे उनकी इज्जत पर आंच आएगी और इस स्थिति से बचने के लिए वह उन्हें डांटते हैं -"इसके प्रतिकूल यदि द्वार पर कोई भला आदमी बैठा होता और बूढ़ी काकी उस समय अपना राग अलापने लगती तो वे आग हो जाते और घर में आकर उन्हें जोर से डांटते थे।"[5]

घर के बड़ों के साथ जैसा व्यवहार माता-पिता करते हैं, बच्चे भी उनसे वही सीखते हैं और घर के बुजुर्गों के साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं। कहानी में बुद्धिराम की बेटी लाडली को छोड़कर उनके दोनों लड़के बूढ़ी काकी से दुर्व्यवहार करते थे। कहानी में इसका उल्लेख इस प्रकार है—"माता-पिता का यह रंग देखते तो बूढ़ी काकी को और भी सताया करते।कोई चुटकी काटकर भागता, कोई पानी की कुल्ला कर देता।"[6] बूढ़ी काकी की स्थिति परिवार में फालतू समान की तरह है जिसे रखने में परेशानी है और फेंकने पर समाज की निंदा का डर।

वृद्धों की भी इच्छाएं होती है उनका भी मन करता है कि अगर घर पर कोई उत्सव या समारोह हो रहा है तो वह भी उसका हिस्सा बने। वह भी उस उत्सव या समारोह में शामिल होकर आनंद ले,लेकिन सच्चाई इसके ठीक विपरीत है। सच्चाई यह है कि अगर घर में कोई त्यौहार या उत्सव मनाया जाता है तो अतिथियों का तो स्वागत किया जाता है, उनकी हर इच्छा को पूरा करने का प्रयास किया जाता है लेकिन घर के वृद्धों की उपेक्षा की जाती है। यहां तक कि उन्हें उत्सव या समारोह

का हिस्सा बनने की भी इजाजत नहीं होती है। कहानी में बूढ़ी काकी की स्थिति कुछ इस प्रकार की है। घर में उत्सव है, बुद्धिराम के बड़े बेटे का तिलक आया है। बूढ़ी काकी भी उस चहल-पहल का हिस्सा बनना चाहती हैं,लेकिन उन्हें उत्सव में शामिल होने की अनुमति नहीं है। घर में शहनाई बज रही है,तरह-तरह के पकवान बन रहे हैं जिनकी सुगंधि चारों तरफ घर में फैली हुई है। बूढ़ी काकी को कोठरी में कैद कर दिया गया है। भूख और वहां से आने वाली भोजन की सुगंधि उन्हें बेचैन कर देती है। वह रेंगती हुई कढ़ाई के पास आ जाती है। बूढ़ी काकी की तुलना प्रेमचंद ने एक कुत्ते से की है -"उन्हें उतना ही धैर्य हुआ जितना भूखे कुत्ते को खाने वाले के सम्मुख बैठने में होता है।"[7]

कड़ाह के पास बैठा हुआ देखकर रूपा जैसे मेंढक केंचुए पर झपटता है बूढ़ी काकी पर झपट पड़ती हैं "ऐसे पेट में आग लगे,पेट है या कुठिया? कोठरी में बैठते क्या दम घुटता था? अभी मेहमानों ने नहीं खाया, भगवान को भोग नहीं लगा, तब तक धैर्य ना हो सका? आकर छाती पर सवार हो गई। जल जाए ऐसी जीभ। दिन भर खाती न रहती तो न जाने किसी हांडी में मुंह डालती? गांव देखेगा तो कहेगा बुढ़िया भर पेट खाने को नहीं पाती, तब तो इस तरह मुंह बाए फिरती है। डायन न मरे न माँचा छोड़े। नाम बेचने लगी है। नाक कटवा के दम लेगी। इतना ठूंसती है न जाने कहा हो जाता है। ले, भला चाहती है तो जाकर कोठारी में बैठ। जब घर के लोग खाने लगेंगे तब तुम्हे भी मिलेगा। तुम कोई देवी हो नहीं कि चाहे किसी के मुंह में पानी तक न जाए, परंतु तुम्हारी पूजा हो जाए।"[8] जहां घर में सैकड़ों लोग भोजन कर रहे हैं वहीं घर का वृद्धा भूख से बिलख रही है। यह केवल एक दृश्य नहीं बल्कि त्रासदी है जो समाज की इस सच्चाई को सामने रख देती है।

यदि इंसान भूखा हो और उसे भोजन की सुगंधि आ रही हो तो उसके लिए अपने ऊपर नियंत्रण रखना कठिन हो जाता है। प्रेमचंद ने कहानी में बूढ़ी काकी की क्षुधा को जागृत करने वाले प्रसंगों का निर्माण किया है जिससे एक और मनुष्य की पाशविक भावना तथा दूसरी ओर लाचारी का पता चलता है। कहानी में बूढ़ी काकी अपने मन में मंसूबे बढ़ने लगती है "पहले तरकारी से पूरियां खाऊंगी, फिर दही और शक्कर से, कचौड़ियां रायते के साथ मजेदार मालूम होंगी। चाहे कोई बुरा माने अथवा भला, मैं तो मांग मांग कर खाऊंगी। यही ना लोग कहेंगे कि इन्हें विचार नहीं है? कहां करें, इतने दिनों के बाद पूरियां मिल रही है तो मुंह जूठा करके थोड़े ही उठ जाऊंगी।"[9] अपने अपमान को भूलकर बूढ़ी काकी आंगन में आती है उन्हें देखकर बुद्धिराम क्रोध से पागल हो जाता है। कहानी में इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है "पंडित बुद्धिराम काकी को देखते ही क्रोध से तिलमिला गए। पूरियो का थाल लिए खड़े थे। थाल को जमीन पर पटक दिया और जिस प्रकार निर्दई महाजन अपने किसी बेईमान और भगोड़े आसामी को देखते ही झपटकर उसका टैटुआ पकड़ लेता है उसी तरह लपक कर उन्होंने बूढ़ी काकी के दोनों हाथ पकड़े और घसीटते हुए लाकर उन्हें उस अंधेरी कोठरी में धम से पटक दिया।"[10] काकी की संपत्ति से परिवार का भरण पोषण करने वाले बुद्धिराम की यह क्रूरता पारिवारिक रिश्तों में स्वार्थपरता को उजागर करती है, साथ ही साथ यह प्रश्न खड़ा करती है क्या परिवार में वृद्धों का कोई महत्व नहीं है? क्या मां-बाप या परिवार के किसी वृद्ध के साथ घर वालों का केवल धन और स्वार्थ का रिश्ता रह गया है? रूपा और बुद्धिराम जैसा व्यवहार बूढ़ी काकी के साथ करते हैं उससे परिवार और समाज में वृद्धों की स्थिति का और उनकी त्रासदी का भयावह रूप दिखाई देता है। बूढ़ी काकी का बुढ़ापा परिवार वालों के लिए बोझ बन गया है। यह हमारे परिवारों की संवेदनहीनता की पराकाष्ठा है कि उत्सव में तो हजार रुपए खर्च कर देते हैं लेकिन अपने घर के एक वृद्ध सदस्य को समय पर भोजन भी नहीं दे सकते। प्रेमचंद लाडली के माध्यम से रोशनी की किरण दिखाते हैं जो अपने हिस्से की पूरियां काकी के पास ले जाकर उन्हें खाने के लिए देती है। जब काकी का पेट नहीं भरता तो उचित और अनुचित को पीछे धकेल कर काकी लाडली को उसे स्थान पर ले जाने के लिए कहते हैं जहां जूठी पत्तले पड़ी थी। उन जूठी पत्तलों में से चुन -चुन कर पूरे स्वाद के साथ पुरियों के टुकड़े खाने लगती है। काकी को जूठे पत्तल चाटते देख रूपा आत्मग्लानि और पश्चाताप से भर उठती है। अपने द्वारा किए गए बर्ताव पर पश्चाताप करती है। भगवान से माफी मांगती है और थाली में खाने की सामग्री रखकर काकी के सामने ले जाती है और उनसे माफी मांगती है। प्रेमचंद यहां आदर्श की तरफ मुड़ते हैं और बताते हैं कि परिवार में बुजुर्गों की स्थिति क्या होनी चाहिए? इसलिए वे रूपा के स्वभाव में परिवर्तन दिखाते हैं।

इस आदर्श प्रेरित दृश्य के साथ कहानी समाप्त हो जाती है। रूपा का माफी मांगना और बूढ़ी काकी की क्षुधा का शांत होना किसी स्वर्गीय सुख से काम नहीं है। बूढ़ी काकी कहानी को आदर्शपरक समाप्ति देकर प्रेमचंद मनुष्यता की रक्षा के प्रति आशा व्यक्त करते हैं। यह प्रेमचंद का खोखला आदर्श नहीं बल्कि मनुष्य की जिजीविषा, उसकी करुणा,प्रेम, क्षमा आदि भावों को बनाए रखने का प्रयास है।

निष्कर्ष : इस प्रकार प्रेमचंद ने बूढ़ी काकी कहानी में वर्तमान समाज की ज्वलंत वृद्ध समस्या को बड़ी स्वाभाविकता के साथ प्रभावी ढंग से उठाया है। बूढ़ी काकी की यथार्थ स्थिति को दिखाकर और रूपा का हृदय परिवर्तन कर प्रेमचंद भविष्य में सकारात्मक संभावनाओं के द्वार खोलते हैं। घर में किसी वृद्ध का होना बरगद की छांव से काम नहीं है। परिवार के प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य है कि घर के वृद्धों को मान सम्मान तथा आदर प्रदान करें।

संदर्भ ग्रंथ

1. कुछ विचार प्रेमचंद, मलिक एंड कंपनी, जयपुर प्रथम संस्करण 2009 पृष्ठ 17 -18
2. प्रेमचंद निर्वाचित कहानियां, इतिहास बोध प्रकाशन, फरीदाबाद, पृष्ठ 134
3. वही, पृष्ठ 134
4. वही, पृष्ठ 134
5. वही, पृष्ठ 134
6. वही, पृष्ठ 135
7. वही, पृष्ठ 136
8. वही, पृष्ठ 137
9. वही, पृष्ठ 138
10. वही, पृष्ठ 138

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में मुंगेर जिला का योगदान

शुभम कुमार
शोधार्थी बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार

सारांश

बिहार राज्य का वर्तमान मुंगेर जिला अपने ऐतिहासिक, पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से इतिहास के विभिन्न कालखंडों में महत्वपूर्ण रहा है। प्रागैतिहासिक काल से ही इन क्षेत्रों में मानवीय क्रियाकलाप के साक्ष्य मिलते रहे हैं। यह क्षेत्र इतिहास के विभिन्न समयावधि में महान विभूतियों की क्रीड़ा-भूमि रही है। रामायण काल में श्रीराम का आगमन हुआ, महाभारत काल में भीम की विजय-पताका यहां फहराई गयी, बुद्ध काल में महात्मा बुद्ध ने इन क्षेत्रों में अपने उपदेशों का प्रचार-प्रसार किया एवं जैन प्रवर्तक महावीर स्वामी द्वारा यहाँ ज्ञान की प्राप्ति हुई,आधुनिक काल में महात्मा गाँधी, सुभाषचंद्र बोस, रवीन्द्रनाथ टैगोर, केशवचंद्र सेन, सुरेंद्र नाथ बनर्जी, अली बंधु, सरदार पटेल, रामकृष्ण परमहंस आदि महान विभूतियों का आगमन इन क्षेत्रों में हुआ और इन्होंने यहाँ के लोगों को स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु उद्वेलित किया। स्वयं मुंगेर की भूमि ने ऐसे कई विभूतियों को जन्म दिया जिन्होंने संपूर्ण स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं को त्याग कर आजादी हेतु अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। इनमें डॉक्टर श्रीकृष्ण सिंह, मोहम्मद जुबैर, गोपाल चंद्र सेन, जगन्नाथ प्रसाद, चेदी प्रसाद चौधरी, भोपाल मजुमदार, तारा भूषण बेनर्जी, पंडित हरि मोहन मिश्रा, कार्यानंद शर्मा, श्री तेजेश्वर प्रसाद, शशि भूषण चट्टोपाध्याय, कमल भट्टाचार्य, नंदकुमार सिंह, श्री बद्री नारायण सिंह, बलदेव प्रसाद सिंह, अनिल कुमार सिंह, श्रीमती जुबैर,सोनी देवी, श्रीमती ठाकुर देवी, मूर्ति देवी, लक्ष्मी देवी, सुशीला देवी, सरस्वती देवी, विद्या प्रकाश बिजली, विद्या देवी, कांति करवाल, कमला सिन्हा आदि नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

वर्तमान समय के मुंगेर के निर्माण की प्रक्रिया की शुरुआत सन् 1832 ई0 में हुई, जब इसे भागलपुर जिला से अलग करने के बात छिड़ी। विभिन्न समयावधि में इस क्षेत्र का कई बार सीमांकन किया गया। वर्तमान में लखीसराय, बेगूसराय, खगड़िया, जमुई, शेखपुरा जिला औपनिवेशिक काल के दौरान मुंगेर का ही हिस्सा था अतः मुंगेर के इन सभी क्षेत्रों से लोगों ने संपूर्ण स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अपनी वीरता एवं साहस का परिचय दिया।

मुख्य शब्द- मुंगेर, ऐतिहासिक, क्रान्ति, विरासत, आंदोलन, क्रांतिकारी, क्रीड़ा-भूमि।

परिचय : पुरातत्विक एवं ऐतिहासिक साक्ष्यों से विदित है कि बिहार राज्य का मुंगेर क्षेत्र प्राचीन काल से ही इतिहास के पन्नों में खुद के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक महत्ता को प्रतिष्ठित करता आया है। एक ओर जहाँ मुंगेर क्षेत्र के भीमबांध एवं पैसरा नामक स्थान से प्रागैतिहासिक संस्कृति से संबंधित साक्ष्य मिले हैं।[1] वहीं दूसरी ओर इस प्रदेश का इतिहास रामायण एवं महाभारत काल से जुड़ा हुआ है। इस क्षेत्र में स्थित कष्टहरणी घाट, सीताकुंड, ऋंगिऋषि आश्रम आदि स्थान रामायण की गाथा कहते हैं तो महाभारत के सभापर्व (अध्याय 30/31) में इस प्रदेश को 'मोदगिरी' नाम दिया गया है जहाँ राजा भीम एवं दानवीर कर्ण का शासन रहा।[2] वैदिक काल(1500-1000 ई0पू0) के दौरान मुंगेर के क्षेत्र को अनार्यों

का निवास स्थान कहा गया है, जहाँ उत्तर वैदिक काल(1000-800 ई0पू0)के दौरान लौह धातु के व्यापक प्रयोग से इस क्षेत्र का आर्यीकरण होने का प्रमाण मिलता है।[3] छठी शताब्दी ईसा पूर्व के पूर्व तक मुंगेर का क्षेत्र अंग जनपद का हिस्सा था, परंतु इसी समयावधि के दौरान मगध क्षेत्र के राजा बिम्बिसार ने इस क्षेत्र की सामरिक महत्ता को देखते हुए इसे जीतकर अपने राज्य का हिस्सा बना लिया।[4] छठी शताब्दी ईसा पूर्व के समयाकाल में ही महात्मा बुद्ध ने अपने सोलहवें वर्षावास के दौरान लगभग तीन माह तक इन क्षेत्रों में भ्रमण कर यहाँ के लोगों को बौद्ध धर्म के सिद्धांतों से अवगत कराया।[5]

मौर्य एवं मौयोत्तर काल, गुप्त एवं गुप्तोत्तर काल के दौरान भी इस क्षेत्र की सामरिक एवं आर्थिक महत्ता बनी रही क्योंकि इस क्षेत्र से गुज़रने वाली गंगा नदी एवं इसकी सहायक नदियों ने अपने व्यापारिक मार्गों के माध्यम से इन प्रदेशों में रहने वाले लोगों में जीवन रस का संचार किया। ह्वेनसांग के यात्रा वृतांतों [6] एवं पाल वंश के शासकों द्वारा उत्कीर्णित मुंगेर-ताम्रपत्र, नालंदा-ताम्रपत्र एवं भागलपुर-ताम्रपत्रों से पता चलता है कि पूर्व मध्यकाल के दौरान इन क्षेत्रों पर हर्षवर्धन, शशांक, पाल वंश, सेन वंश व मिथिला के कर्नाट वंश का शासन रहा।

11 वीं शताब्दी में तुर्कों के आगमन के साथ ही मुंगेर क्षेत्र में मुस्लिम शासन की स्थापना हो जाती है। सल्तनत एवं मुगल काल के दौरान यह क्षेत्र बंगाल और दिल्ली के मध्य संपर्क क्षेत्रों जैसे सैनिक शिविरों एवं व्यापारिक केंद्रों के रूप में इस्तेमाल होता रहा। 17 वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में इन क्षेत्रों में ब्रिटिश व्यापारिक कंपनी का आगमन होता है। कंपनी यहाँ व्यापार करने आयी थी पर 18वी0 शताब्दी के मध्य तक इन क्षेत्रों के शासकों एवं कंपनी के बीच आर्थिक हितों का टकराव इतना गंभीर हो गया कि 1765 ई0 में बक्सर के युद्ध के पश्चात् ब्रिटिश कंपनी ने मुंगेर क्षेत्र से स्थानीय शासकों की सत्ता को उखाड़ फेंका और स्वयं राजनीतिक एवं आर्थिक सत्ता का केंद्र बन बैठी।[7] यही वह समय था जब ब्रिटिश कंपनी के माध्यम से संपूर्ण बंगाल के आर्थिक शोषण का दौर प्रारंभ हुआ।इतिहासकार नवीन चंद्र सेन के अनुसार ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के बाद भारत में अनंत अंधकारमयी रात्रि आरंभ हो गयी। ब्रिटिश सत्ता का शोषण सिर्फ आर्थिक शोषण तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक शोषण भी उनके द्वारा किया गया। उनके इस बहुआयामी शोषण से समाज का हर वर्ग जैसे किसान, युवा, बूढ़े, बच्चे, महिलाएं, जमींदार सभी पर नाकारात्मक प्रभाव पड़ा। लाखों लोग अकाल से हताहत हुए और काल के गाल में समा गए। अंततः उनके इस शोषण के विरुद्ध मुंगेर क्षेत्र के लोगों की पहली प्रतिक्रिया 1857 ई0 की क्रांति के रूप में देखने को मिला। यहाँ के लोगों ने अपनी समृद्ध संस्कृति एवं विरासत से प्रेरणा लेते हुए सिर्फ 1857 ई0 की क्रांति ही नहीं वरन संपूर्ण स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अपनी वीरता का परिचय दिया। हालांकि 1857 ई0 की क्रांति के दौरान मुंगेर में तत्कालीन भागलपुर के कमिश्नर जॉर्ज यूले ने अपनी सूझबूझ से इन क्षेत्रों में विद्रोह को फैलने से रोक दिया परंतु वे यहाँ के लोगों के मन में पनप रही गुस्से को शांत नहीं कर पाए।[8]

1857 से पूर्व भी ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ़ छिटपुट विद्रोह होते रहे थे जैसे 1764 ई0 में मीर कासिम अली खान द्वारा विद्रोह, 1765 ई0 में बक्सर विद्रोह, 1766 ई0 में सैन्य भत्ते को लेकर सिपाही विद्रोह इन विद्रोहों ने यहाँ के लोगों को ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ़ लड़ने की ताकत प्रदान की।

1857 की क्रांति का ही एक परिणाम यह था कि मुंगेर सहित संपूर्ण बिहार में आधुनिक राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जागरण का दौर प्रारंभ हुआ। इस जागरण ने यहाँ के लोगों में जीवन शक्ति का संचार किया। 1864 ईस्वी में महान सामाजिक एवं राजनीतिक सुधारक राजा राममोहन राय का प्रभाव पूरे मुंगेर क्षेत्र पर पड़ा। मुंगेर तथा जमालपुर में ब्रह्मसमाज की शाखाएं खोली गईं। ये शाखाएं इन क्षेत्रों में राष्ट्रीय आंदोलन की पूर्वज कही जा सकती हैं। ब्रह्म समाज की शाखाओं के स्थापना के शुभ अवसर पर मुंगेर एवं जमालपुर में केशव चंद्रसेन एवं राजनारायण वसु का यहाँ आगमन हुआ। ब्रह्म समाज से प्रभावित होकर छोटी केलावाड़ी नामक स्थान पर एक ब्रह्म मंदिर की स्थापना भी की गयी। केशव चंद्रसेन के नाम से एक गांव का नाम केशवपुर रखा गया। 1870 ई0 में स्वामी दयानंद सरस्वती का आगमन मुंगेर क्षेत्र में हुआ। यहाँ उनकी मुलाकात चंडी स्थान स्थित कहारवाँ मठ में चूड़ामणि मिश्रा, लक्ष्मण मिश्रा, भट्टू मिश्रा एवं कबीर पंथी सम्प्रदाय को मानने वाले लोगों से हुई। एक आर्य समाजी पंडित लेकराम ने भी मुंगेर की यात्रा की, जिनकी याद में आज भी दयानंद कुटिया स्थापित है।

श्री कृष्ण प्रसन्न सेन द्वारा यहां आर्य धर्म की स्थापना की गई। 1875 ई0 में श्रीकृष्ण प्रसन्न सेन एवं श्याम चरण भट्टाचार्य द्वारा 'हरिसभा' एवं 'सुनीति प्रचारिणी' सभा स्थापित की गयी। 1877 ई0 में कुछ बुद्धिजीवी वर्ग के लोगों जैसे कमल भट्टाचार्य, गोपाल चंद्र सेन, नेपाल चंद्र सेन एवं शशि भूषण चट्टोपाध्याय आदि द्वारा 'मैरिएट क्लब' की स्थापना की गई। आगे चलकर इन्हीं की तर्ज पर 'गैरेट क्लब' एवं 'ओरिएंट क्लब' की स्थापना मुंगेर में की गई।[9]

1885 ईस्वी में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद मुंगेर क्षेत्र में भी राष्ट्रीय आन्दोलन की गति में तीव्रता आ गई। प्रारंभिक दौर में गोपालचंद्र सेन, जगन्नाथप्रसाद, चेदी प्रसाद चौधरी, भोपाल चंद्र मजुमदार एवं ताराभूषण बनर्जी आदि प्रमुख व्यक्तित्व द्वारा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की गतिविधियों में शिरकत किया गया। इन्होंने बंगाल के विभिन्न भागों में होने वाले सम्मेलनों में हिस्सा लिया। 1901 ई0 में भागलपुर में हुए कांग्रेस के एक वार्षिक सम्मेलन में मुंगेर के लोगों ने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। इस सम्मेलन में श्री गोपाल कृष्ण गोखले भी उपस्थित थे। 1895 ई0 में चेदी प्रसाद चौधरी एवं पंडित हरि मोहन मिश्रा द्वारा मुंगेर में 'थियोसॉफिकल सोसायटी' की स्थापना की गई। 1897 ई0 में इन क्षेत्रों में आर्य समाज का आगमन हुआ। स्वामी नित्यानंद एवं स्वामी विश्वेश्वरानंद ने यहाँ के लोगों को आर्य समाज के सिद्धांतों से अवगत कराया।

1905 ई0 में जब बंगाल विभाजन के विरोध में बंग-भंग विरोधी आन्दोलन, स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन शुरू हुआ तब मुंगेर क्षेत्र के लोगों ने भी इसमें पूरा सहयोग दिया। 1906 ई0 में सुरेन्द्र नाथ बेनर्जी मुंगेर आए एवं एक बड़ा ही उद्‌बोधनकारी भाषण दिया। उन्होंने मुंगेर के लोगों से विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार एवं स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने की अपील की। सुरेंद्र नाथ बनर्जी के भाषण का गहरा प्रभाव यहाँ के कई लोगों पर पड़ा। इनमें बिहार के पहले मुख्यमंत्री श्रीकृष्ण सिंह तथा श्री तेजेश्वर प्रसाद का नाम उल्लेखनीय है। ये लोग उन दिनों छात्र थे। बिहार स्टूडेंट्स कॉन्फ्रेंस की स्थापना 1906 ई0 हुई थी। अपने स्थापना काल से ही इसने इस प्रांत में राष्ट्रवादी चेतना के उन्नयन में महत्वपूर्ण योगदान देना प्रारंभ कर दिया। बिहार के राष्ट्रवाद के इतिहास में इनका अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।[10]

डॉक्टर श्री कृष्ण सिंह ने मुंगेर में ही गंगा नदी के किनारे कष्टहरणी घाट पर अपने हाथों में जल लेकर कसम खायी थी कि वह तब तक नहीं रुकेंगे जब तक देश आजाद नहीं हो जाता। राष्ट्रीय आंदोलन को बल प्रदान करने हेतु श्री कृष्ण सिंह ने 'देश सेवक' नामक एक साप्ताहिक समाचार पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया। राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने हेतु कई अन्य समाचार पत्रों का प्रकाशन प्रारंभ किया गया जैसे 1877 ईस्वी में कृष्ण प्रसन्ना सेन द्वारा 'धर्म प्रचारक' का संपादन, 1911 ई0 में महादेव प्रसाद द्वारा 'मुख- प्रचारक' का प्रकाशन, 1921 ई0 में कपिल देव नारायण सिंह द्वारा 'बेगुसराय गोलीकांड प्रचार पुस्तिका' का प्रकाशन, 1932 ई0 में 'बड़हिया समाचार', 1933 ई0 में 'तारापुर तरंग' आदि का संपादन व प्रकाशन मुंगेर से किया गया। 1913 ई0 में जब डॉक्टर श्रीकृष्ण सिंह द्वारा स्थापित बिहार स्टूडेंट्स कॉन्फ्रेंस के सम्मेलन का आयोजन मुंगेर में हो रहा था तब डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद ने इस सम्मेलन की अध्यक्षता की थी।

1914 ई0 में जब स्वामी सत्यदेव अमेरिका से वापस आये थे तब मुंगेर में उनका आगमन हुआ। उन्होंने अपने भाषण से यहाँ के लोगों को राजनीतिक रूप से सक्रिय करने का कार्य किया। 1912 ई0 में खान बहादुर नवाब सरफराज हुसैन खान की अध्यक्षता में आयोजित बिहार प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन में डॉक्टर सच्चिदानंद सिन्हा ने मुख्य भूमिका निभाई। 1917 ई0 में लोकमान्य तिलक एवं एनी बेसेंट द्वारा शुरू किए गए 'होमरूल आंदोलन' एवं महात्मा गाँधी के चंपारण सत्याग्रह ने मुंगेर के लोगों में एक नवीन उत्साह का संचार किया। ब्रिटिश सत्ता ने इस आंदोलन के दमन हेतु 'रोलैक्ट एक्ट' लेकर आयी परंतु इस एक्ट के विरोध में संपूर्ण मुंगेर में जमकर विरोध हुआ एवं कई जगहें सभाएं आयोजित की गयी।[11] 1920 ई0 में जब महात्मा गाँधी द्वारा असहयोग आंदोलन की शुरुआत की गयी तब मुंगेर के लोगों ने इसमें पूरा सहयोग दिया। 1920 ई0 में ही गाँधी जी का मौलाना शौकत अली के साथ मुंगेर आगमन हुआ। मौलाना शौकत अली खिलाफत आंदोलन का समर्थन जुटाने हेतु मुंगेर आए और 27 अप्रैल 1920 ई0 को अपना भाषण दिया। खिलाफत आंदोलन एवं असहयोग आंदोलन के समर्थन में मुंगेर के एक प्रसिद्ध बैरिस्टर मोहम्मद जुबैर ने अपनी वकालत छोड़ दी। मोहम्मद जुबैर के नेतृत्व में मुंगेर क्षेत्र में कई कार्य किये गये असहयोग आंदोलन के दौरान बिहार समेत मुंगेर के विभिन्न क्षेत्रों जैसे असरगंज, गोगरी, खड़गपुर,

खगड़िया, बेगूसराय एवं तारापुर में राष्ट्रीय विद्यालय खोले गए। इन शिक्षण संस्थानों के प्रबंधन की जिम्मेदारी राष्ट्रीय शिक्षा परिषद को दी गई एवं मोहम्मद जुबैर को भी सदस्य के रूप में इसमें शामिल किया गया। शाह मोहम्मद जुबैर को प्रान्तीय क्रांति कांग्रेस कमेटी में भी उपाध्यक्ष बनाया गया। 5 दिसंबर 1923 ई0 को मौलाना शौकत अली की अध्यक्षता में मुंगेर के लखीसराय क्षेत्र में खिलाफत सम्मेलन के बैठक आयोजित की गई।[12] 1926 ई0 के दौरान मुंगेर में रचनात्मक कार्यों को बढ़ावा दिया गया। स्वयंसेवकों की संख्या बढ़ाने, कांग्रेस सदस्यों की संख्या बढ़ाने एवं कांग्रेस की शाखाओं को खोलने हेतु संपूर्ण बिहार में ग्यारह एवं मुंगेर में चार (गोगरी, मुंगेर खड़गपुर एवं गोरवाडीह) नामक स्थानों पर शिविर खोले गए। बिहार राजनीतिक प्रांतीय सम्मेलन का 28 वां सम्मेलन 6 दिसंबर 1926 ई0 को मुंगेर में आयोजित किया गया। सम्मेलन में सभापति राजेंद्र प्रसाद की अनुपस्थिति में श्री रामदयालु सिंह ने उनका अध्यक्षीय भाषण पढ़ा। इस सम्मेलन में स्वाधीनता का प्रस्ताव पारित किया गया।[13] 1927 ई0 में जब महात्मा गाँधी दूसरी बार बिहार आए तो मुंगेर व बेगूसराय में सभाओं का आयोजन व्यापक स्तर पर किया गया और मुंगेर के लखीसराय में आजादी के आंदोलन को गति देने हेतु कांग्रेस मुख्यालय का उद्घाटन किया गया तथा उसका नाम 'चितरंजन आश्रम' रखा गया।[14] 1929 ई0 में प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन में भाग लेने हेतु सरदार वल्लभ भाई पटेल भी मुंगेर आए।

1930 ई0 के दौरान मुंगेर जिला में बाबू श्री कृष्ण जी के नेतृत्व में नमक सत्याग्रह शुरू किया गया। 17 अप्रैल को वो अपने स्वयंसेवकों के साथ बेगूसराय के गरहरा गांव के लिए निकले। 23 अप्रैल को जब वह बेगूसराय में ही थे तो उन्हें गिरफ्तार कर छह माह हेतु हजारीबाग जेल भेज दिया गया परंतु गढ़पुरा उत्तर मुंगेर में लगभग तीन सप्ताह तक नमक बनाने का महत्वपूर्ण केंद्र बना रहा। दक्षिण मुंगेर में श्री नंदकुमार सिंह ने 19 अप्रैल को लखीसराय के निकट रजौन ग्राम के लिये मुंगेर से नमक कानून भंग करने हेतु अपने स्वयं सेवकों के साथ चले। अतिशीघ्र नन्द कुमार सिंह को गिरफ्तार कर लिया गया। फिर भी पूरे मुंगेर के क्षेत्र में नमक बनाने के कार्य जारी रहा। लखीसराय के समीप नमक का पहला पुड़िया श्री बद्री नारायण सिंह ने 101 रुपये में खरीदा। 22 अप्रैल को श्री तेजासिंह के मंदिर में नमक बनाने का केंद्र खोला गया। 23 अप्रैल को शाह मोहम्मद जुबैर और श्री नेमधारी सिंह के नेतृत्व में मुंगेर में नमक कानून भंग किया गया। सरकार द्वारा उपर्युक्त सभी स्वतंत्रता सेनानियों के खिलाफ़ दमनात्मक कार्यवाहियाँ की गई, पर वो उनके हौसलों को नहीं तोड़ पाए।[15]

15 फरवरी 1932 ई0 को सैकड़ों की संख्या में कांग्रेसी स्वयंसेवक मुंगेर के तारापुर क्षेत्र में थाना भवन पर झंडा फहराने का प्रयत्न कर रहे थे तभी सशस्त्र पुलिस बलों ने उन पर गोलियां चला दीं जिसमें लगभग 15 लोग मारे गए एवं सैकड़ों लोग घायल हुए।[16] इस घटना ने लोगों को और भी उत्तेजित कर दिया। 24 अप्रैल 1932 ई0 को दिल्ली में कांग्रेस का 46वाँ वार्षिक अधिवेशन संपन्न हुआ, जिसमें मुंगेर जिले के 14 प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। श्री बलदेव प्रसाद सिंह, श्री अनिल कुमार मुखर्जी के नाम उल्लेखनीय हैं। इस अधिवेशन में सीमा प्रांत तथा बिहार के तारापुर के शहीदों के प्रति विशेष रूप से श्रद्धांजलि अर्पित की गई।[17] 15 जनवरी 1934 ई0 में बिहार एवं उनके आसपास के क्षेत्रों में भयंकर भूकंप आया, जिसमें सर्वाधिक नुकसान मुंगेर एवं उसकी सीमावर्ती क्षेत्रों में हुआ। श्री गदाधर प्रसाद अंबष्ट ने अपनी पुस्तक 'मुंगेर जिले की राजनीतिक प्रगति' में इस भूकंप से मरने वालों की संख्या लगभग 30,000 बतायी है। डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद, महात्मा गाँधी, गोपाल कृष्ण गोखले, सरोजिनी नायडू, जवाहरलाल नेहरू आदि नेताओं ने अपना कार्यक्रम स्थगित कर भूकंप से पीड़ित लोगों की सहायता हेतु तत्काल मुंगेर आए। गाँधी जी ने यहाँ के लोगों को तुलसीदास की यह युक्ति याद रखने को कहा :

"दया धर्म को मूल है, मूल पाप अभिमान"

यहाँ के लोगों ने निरूस्वार्थ भाव से एक-दूसरे की मदद की। इससे लोगों में एकता की भावना का विकास हुआ, जिसने लोगों को आजादी हेतु तत्पर किया।[18]

ब्रिटिश सरकार द्वारा किसानों के शोषण से बिहार में भी कृषक आंदोलन ज़ोर पकड़ रहा था। बिहार में 1922-1923 ई0 में ही मुंगेर में शाह मोहम्मद जुबैर की अध्यक्षता में किसान सभा की स्थापना हो चुकी थी। 4 मार्च 1928 ई0को स्वामी सहजानंद सरस्वती द्वारा पटना में किसान सभा की औपचारिक स्थापना ने किसान आंदोलन को एक नवीन मोड़ प्रदान किया।

16 नवंबर एवं 20 नवंबर 1938 ई0 में मुंगेर के लखीसराय में दूसरा किसान सम्मेलन का आयोजन किया गया। किसान आंदोलन को गति देने हेतु श्री कार्यानंद शर्मा द्वारा मुंगेर के बड़हिया टाल में भी सत्याग्रह की शुरूआत की गई। किसानों ने बड़ी संख्या में उनका समर्थन किया।[19]

संपूर्ण देश के साथ-साथ मुंगेर की महिलाओं ने भी संपूर्ण राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनमें भी जागरण की लहर दौड़ रही थी। कुछ महिलाओं ने घर में ही रहकर अपने घर परिवार को सँभाला और घर के पुरुषों को घर से बाहर जाकर आजादी की लड़ाई लरने हेतु प्रेरित किया। कुछ महिलाओं ने साहित्य के माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया तो कुछ महिलाओं ने राजनीतिक एवं क्रांतिकारी गतिविधियों के माध्यम से देश को आजाद कराने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 25 जुलाई 1930 ई0 को मोहम्मद जुबैर की पत्नी श्रीमती जुबैर ने पर्दा का परित्याग कर मुंगेर की एक सभा में भाषण दिया और बहिष्कार आंदोलन चलाने के लिए एक महिला समिति का गठन किया। 'चरखा समिति' एवं 'अंगारा कोष' आदि के माध्यम से यहाँ की महिलाओं ने आंदोलन को अपना समर्थन प्रदान किया। सरकार द्वारा कई महिलाओं को गिरफ्तार किया गया जिसमें मुंगेर से सोना देवी, श्रीमती ठाकुर देवी, पूर्ति देवी, लक्ष्मी देवी, अनूप देवी, सुशीला देवी, सरस्वती देवी आदि नाम उल्लेखनीय हैं। जिन महिलाओं ने साहित्यिक रचनाओं द्वारा ब्रिटिश सत्ता का विरोध किया उनमें इंद्रा देवी, कमला सिंह, कांति करवाल, विद्या प्रकाश बिजली, विद्या देवी आदि नाम महत्वपूर्ण हैं।[20]

1940 ई0 के दौरान जब सुभाष चंद्र बोस युवाओं को राष्ट्रीय आंदोलन में प्रेरित करने के उद्देश्य से भारत भ्रमण पर थे तो 3 फरवरी 1940 ई0 में मुंगेर के बेगूसराय आए थे। उन्होंने मुंगेर जिला छात्र सम्मेलन को संबोधित किया था। यह सम्मेलन श्री राहुल सांस्कृतायन जी की अध्यक्षता में संपन्न हुई थी।[21] प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी एवं कवि श्री अवध भूषण मिश्रा जी ने अपनी कृति में इस बात का उल्लेख किया है कि सुभाष चंद्र बोस मुंगेर आए थे और तिलक मैदान में छात्रों को संबोधित किया था। 1940 ई0 में जब कांग्रेस का रामगढ़ अधिवेशन हुआ तो इसमें द्वितीय विश्व युद्ध की नीतियों के खिलाफ़ पूर्ण स्वतंत्रता एवं सत्याग्रह की शुरुआत हुई। श्रीकृष्ण सिंह बिहार में पहले सत्याग्रही बने और पटना के बांकीपुर उन्हें गिरफ्तार भी किया गया। नामधारी सिंह एवं कई लोगों को मुंगेर से गिरफ्तार किया गया। अंततः ब्रिटिश सत्ता के दमन एवं नीतियों से त्रस्त होकर 14 जुलाई 1942 ई0 को कांग्रेस कार्यकारिणी ने भारत छोड़ो आंदोलन का प्रस्ताव पारित किया एवं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 7 अगस्त 1942 ई0 को संपूर्ण भारत में अहिंसात्मक नागरिक असहयोग आंदोलन करने का निर्णय लिया। इसी क्रम में मुंगेर जिला अंतर्गत तारापुर में 18-19 जुलाई 1942 ई0 को कांग्रेस के कार्यकर्ताओं का एक महत्वपूर्ण सभा हुई जिसमें आचार्य कृपलानी, राजेंद्र बाबू, श्रीकृष्ण सिंह और श्री कृष्ण बल्लभ सहाय ने भाग लिया। अनुग्रह नारायण सिंह ने इस सम्मेलन की अध्यक्षता की। सभी ने इस सम्मेलन में भारत छोड़ो आंदोलन को सफल बनाने का निर्णय लिया। मुंगेर में लोगों के द्वारा रेलवे लाइनों को नुकसान पहुंचाया गया, टेलीफोन के तारों को काट दिया गया, सड़कें जाम की गईं, सरकारी दफ्तरों को तोड़ दिया गया,विद्यालय जाने वाले छात्रों ने भी आंदोलन में हिस्सा लिया। कहीं-कहीं आंदोलन ने हिंसात्मक रूप भी ले लिया। क्रांतिकारियों ने तारापुर, असरगंज, बेगूसराय, शेखपुरा, बरबीघा, लखीसराय आदि स्थान के थानों पर राष्ट्रीय झंडा फहराया गया। सरकार द्वारा दमनात्मक कर्यवाहियां की गईं। 'सामूहिक जुर्माना अध्यादेश' और 'भारत रक्षा अधिनियम' के तहत लोगों पर भारी जुर्माना लगाया गया है एवं उन्हें गिरफ्तार किया गया पर ब्रिटिश सत्ता मुंगेर के लोगों की हिम्मत नहीं तोड़ पाई क्योंकि यहाँ के लोग आजादी के लिए दृढ़ संकल्पित थे। अंततः15 अगस्त 1947 ई0 को देश ब्रिटिश सत्ता की गुलामी से स्वतंत्र हुआ एवं इस स्वतंत्रता प्राप्त की लंबी यात्रा को तय करने में मुंगेर के लोगों की भूमिका अतुलनीय रही।

निष्कर्ष : मुंगेर जिसकी सीमाएं संपूर्ण औपनिवेशिक काल के दौरान वर्तमान बिहार राज्य के लखीसराय, जमुई, शेखपुरा, बेगूसराय एवं खगड़िया तक थी, ने संपूर्ण स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अपनी वीरता का परिचय दिया। यहाँ के लोगों ने अपनी समृद्ध संस्कृति एवं विरासत को संजोकर रखा एवं ब्रिटिश सत्ता के शोषण के खिलाफ़ उनका उपयोग कर स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी। मुंगेर क्षेत्र की भूमि ने कई विभूतियों को जन्म दिया जिन्हें स्वतंत्रता आंदोलन में अपने प्राणों की आहुति देने में भी

हिचक नहीं हुई। स्वतंत्रता संग्राम के हर घटनाक्रम जैसे- 1857 ई0 की क्रांति, सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ़ क्रांति, राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने, बंग-भंग के खिलाफ़ आंदोलन, असहयोग आन्दोलन, सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आंदोलन, नमक सत्याग्रह भारत छोड़ो आंदोलन में मुंगेर के लोगों ने चाहे वो बच्चे, बूढ़े, जवान, महिलाएं हों सभी ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया एवं स्वतंत्रता की लड़ाई में अपना योगदान दिया। आज वर्तमान समय में आवश्यकता इस बात की है कि हम और हमारी आने वाली पीढ़ी उनके इस बलिदान को हमेशा याद रखें और बेहतर कल का निर्माण कर सकें।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. Pant, P.C. and Jayaswal,Vidul, "Paisra-the stone age settlement of Bihar",Agam Kala Prakashan,Delhi,1991, Page-17
2. "सहृदय"; हवलदार त्रिपाठी, "बिहार की नदियां- ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सर्वेक्षण, प्रथम खंड", बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना,2012 पृष्ठ-76-77
3. सिंह, राजेश्वर प्रसाद नारायण, "बिहार : अतीत के झरोखे से" शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली,1986 पृष्ठ- 33
4. अंगुत्तर निकाय एवं ललितविस्तर
5. "सहृदय"; श्री हवलदार त्रिपाठी, "बौद्ध धर्म और बिहार", बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1998, पृष्ठ-105
6. शर्मा, ठाकुर प्रसाद, "ह्वेनसांग की भारत यात्रा (629 ई0-645 ई0), आदर्श हिंदी पुस्तकालय, इलाहाबाद, 1972, पृष्ठ-331-332
7. झा, अमरजीत, "बिहाररू एक खोज", बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2021, पृष्ठ-99
8. Jyoti,Subhra, "Munger A Land of Tradition and Dream,"Gayatri Krishna Publication,Azad Nagar,Munger,1990,Page-34
9. Chaudhary,P.C.Ray, "Bihar District Gazetteers-Monghyr",Secreteriate Press,Patna,1960,Page-56
10. दत्त, डॉक्टर के0 के0, "बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास", भाग-1, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2000, पृष्ठ-162
11. – वही-, पृष्ठ-312 12. – वही-, पृष्ठ-320
13. दत्त, डॉ0 के0 के0, "बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास", भाग-2, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना,2014, पृष्ठ-42
14. यंग इंडिया, 1927-28 ई0, पृष्ठ-77
15. दत्त, डॉ0 के0 के0, "बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास", भाग-2, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना,2014, पृष्ठ-81
16. बिहार प्रांतीय कांग्रेस कमिटी के प्राधिकार के अन्तर्गत प्रकाशित तारापुर गोलीकांड का सच्चा विवरण, पृष्ठ-69
17. दत्त, डॉ0 के0 के0, "बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास", भाग-2, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना,2014, पृष्ठ-181
18. – वही-, पृष्ठ-203 19. – वही-, पृष्ठ- 309
20. झा, लाजवंती, "विस्मृत चेहरे(स्वाधीनता आंदोलन में बिहार की स्वतंत्रता सेनानी महिलाएँ)", प्रभात पेपर बैक्स, दिल्ली, पृष्ठ-63
21. Dutta, Dr. Kali Kinker, " History of The Freedom movement in Bihar", Published by Government of Bihar, Patna, January 1958,Page-382

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

समकालीन हिंदी उपन्यास का नया परिप्रेक्ष्य : उत्तर-आधुनिकता

डॉ. सन्मुख नागनाथ मुच्छटे
सहयोगी प्राध्यापक,
हिंदी विभाग, श्री छत्रपती शिवाजी महाविद्यालय,
उमरगा, जिला धाराशिव।
मो. नंबर : 9689063715
Email : sunmukhm@gmail.com

प्रास्ताविक : जब मानव जीवन के विविध पक्षों को परंपरा और संस्कृति से युक्त कुरितियों ने प्रभावित किया तब मनुष्य अज्ञान में पडा हुआ था। उसका संपूर्ण जीवन अविवेक से परिपूर्ण बन गया था। परिणाम स्वरूप जीवन अंधकारमय बन गया था। उसमें कोई नई सोच या नया तर्क नहीं था। प्रगति के चिह्न दूर-दूर तक दृष्टिपात नहीं हो रहे थे। ठीक इसी समय मनुष्य जीवन को अज्ञान और अविवेक से मुक्ति दिलाने हेतु और उसे ज्ञान, विज्ञान तथा तर्कशीलता की दिशा में अग्रसर करने के लिए आधुनिकता का प्रवेश मानव जीवन में हुआ। आधुनिकता ने मनुष्य जीवन और समाज को प्रगतिशील सोच दी तथा वैज्ञानिक तकनीकी की सहायता से भौतिक सुख-सुविधाएँ उपलब्ध कराईं। मनुष्य ने इसको स्वीकृत कर अपने जीवन को प्रगति के शिखर पर पहुंचाया। लेकिन मनुष्य आधुनिकता के रंग में इतना डूब गया कि वह मनुष्य है, इसे ही भूल गया। इसका विपरीत परिणाम उसके जीवन पर पड़ा। वैश्वीकरण के स्तर पर घटित विविध घटनाओं ने यह सिद्ध किया कि केवल विज्ञान और तकनीकी के सहारे मनुष्य जीवन के सारे प्रश्नों का समाधान नहीं हो सकता।भौतिक प्रगति और मशीनीकरण ने जीवन को आरामदायक तो बनाया, पर आदर्श, नैतिकता और मानवीय मूल्यों की बलि चढ़ा दी। इसलिए मनुष्य के जीवन में तनाव, ऊब और असंतोष बढ़ने लगा। धीरे-धीरे समाज में सामाजिक विषमताओं और मानवीय संबंधों की जटिलताओं का दृश्य स्थान स्थान पर दृष्टिगोचर होने लगे। फलस्वरुप मनुष्य अपने जीवन में नितांत अकेलापन महसूस करने लगा। मनुष्य को धीरे-धीरे समझने लगा कि आधुनिकता ही सब कुछ नहीं है और केवल विज्ञान, मशीन और धन से जीवन संपूर्ण नहीं हो सकता ठीक इसी समय मनुष्य जीवन में उत्तर-आधुनिकता का जन्म हुआ। उत्तर-आधुनिकता ने यह स्पष्ट किया कि मनुष्य के जीवन में केवल भौतिक साधन ही ज़रूरी नहीं होते, बल्कि उसमें संवेदना, सृजनशीलता और अलग-अलग अनुभवों की भी आवश्यकता होती है। इस विचारधारा के कारण मानवी समाज और संस्कृति में नए परिवर्तन आए। धीरे-धीरे इसका प्रभाव राजनीति, अर्थव्यवस्था, कला, साहित्य, दर्शन, फैशन, सिनेमा और यौन विचारों पर भी परिलक्षित होने लगा। इस विचारधारा से प्रभावित मानव जीवन में विविधता और खुलेपन के चित्र अंकित होने लगें। इसके कारण जीवन के हर क्षेत्र को नए ढंग से समझने और जीने की राह मिल गई।

वर्तमान परिवेश में समाज, संस्कृति, सभ्यता, अर्थव्यवस्था, संवेदना, राजनीति, कला, साहित्य, फैशन, सिनेमा, यौन चिंतन, दर्शन, मूल्य आदि में जो परिवर्तन लक्षित हो रहे हैं, उनके मूल में उत्तर आधुनिकता की अवधारणा ही है। उत्तर

आधुनिकता में हमें विविध प्रकार के सिद्धांतों और विचारधाराओं का सम्मिश्रण दिखाई देता है। इसीलिए इसकी कोई ठोस परिभाषा नहीं दी जा सकती। इस संदर्भ में डॉ. सुधीष पचौरी लिखते हैं कि-"यह एक ऐसा वाद है जो एक स्थिति या दशा की तरह है जो लगातार अस्थिर है, चंचल है, विखंडशील है।"[1] उत्तर-आधुनिकता विभिन्न विविधताओं और खुलेपन को स्वीकार करती है। इसमें अलग-अलग दृष्टिकोण, स्थानीय परिस्थितियाँ, विभिन्न विषयों का मेल, अलग-अलग ग्रंथों या विचारों के बीच का संबंध, अर्थ की अनिश्चितता, विपरीत धारणाओं का सह-अस्तित्व और नकल या मिश्रण जैसी प्रवृत्तियों को विशेष स्थान दिया जाता है। इसके विरुद्ध यह किसी एकमात्र सत्ता को मानने से इनकार करती है। उत्तर-आधुनिकता मानती है कि कला, नैतिकता या सत्य जैसी चीज़ें हमेशा एक जैसी और स्थायी नहीं होतीं। हर युग और हर परिस्थिति में इनके रूप बदल सकते हैं। इसके साथ ही आधुनिकता के बताए गए सत्य और सिद्धांत बिल्कुल अंतिम या पूरी तरह सही नहीं होते, बल्कि उन पर भी सवाल उठाए जा सकते हैं। इस संदर्भ में कृष्णदत्त पालीवाल लिखते हैं कि-"उसके अनुसार कोई विचार, दर्शन शाश्वत, पूर्ण, अंतिम और स्थायी नहीं है, सब कुछ अनिश्चित और अस्थिर है। हर अवधारणा एक भ्रम है।"[2] उत्तर आधुनिकता की अभिव्यक्ति का स्पष्ट दर्शन हमें लकां, आलथूसे, फूको, बार्थ, देरिदा, देल्यूज, ल्योतार्द आदि विद्वानों की विचारधारा में प्राप्त होती हैं। उत्तर आधुनिकता ने जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। इससे हिंदी साहित्य भी अछूता नहीं रहा है।

हिंदी साहित्य में सन् 1980 के आस-पास उत्तर-आधुनिकता से प्रभावित विचारधारा परिलक्षित होने लगती है। समकालीन हिंदी साहित्य की समस्त विधाओं में उत्तर आधुनिकता किसी न किसी रूप में उपस्थित है। इस पर प्रकाश डालते हुए देवषंकर नवीन लिखते हैं कि-"उत्तर-आधुनिकता के सूत्रों को समझे बिना हम अपने समय को नहीं समझ सकते, क्यों कि हमारे न चाहने पर भी वह हमारे बोध में सक्रिय है। हमारी 'आक-थू' से वह नष्ट नहीं होने वाली।"[3] इसलिए कहा जाता है कि उत्तर-आधुनिकता को समझे बिना हम अपने समय को पूरी तरह नहीं समझ सकते। चाहे हमें यह पसंद हो या न हो, लेकिन यह हमारे विचार और अनुभव की प्रक्रिया में सक्रिय है और केवल विरोध करने से इसका असर खत्म नहीं किया जा सकता। उत्तर-आधुनिकता बदलते समय की वह सोच है, जो यह मानती है कि कोई भी विचार या सत्य स्थायी नहीं है। यह विविधता और अस्थिरता को स्वीकार करती है और परंपरागत 'एकमात्र सत्य' की धारणा को नकार देती है।

समकालीन हिंदी उपन्यास का नया परिप्रेक्ष्यरू उत्तर-आधुनिकता - हिंदी उपन्यास साहित्य की सृजन प्रक्रिया को भारतेंदु युग में विशेष गति प्राप्त हुई। लेकिन इन उपन्यासों में आधुनिकता नहीं थी। बाद में प्रेमचंद युगीन उपन्यासों में आधुनिकता का चित्रण होने लगा। धीरे-धीरे उपन्यासों में आधुनिकता का विवेचन बढ़ता गया और भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् हिंदी उपन्यासों में आधुनिकता का चित्रण अत्याधिक मात्रा में होने लगा। आगे चलकर समकालीन परिवर्तित परिवेश को केंद्र में रखते हुए हिंदी उपन्यासों में उत्तर-आधुनिकता का दर्शन भी होने लगा। हिंदी उपन्यासों में उत्तर आधुनिकता की शुरुआत सन् 1974 में कृष्ण बलदेव वैद्य द्वारा सृजित उपन्यास ' विमल उर्फ जाये तो जायें कहां ' से मानी जाती है। इस पर अपनी ओर से टिप्पणी देते हुए डॉ. हेतु भारद्वाज लिखते हैं कि -"कृष्ण बलदेव वैद को 'विमल उर्फ जायें तो जायें कहां' के आधार पर पहला उत्तर आधुनिकतावादी उपन्यासकार कहा गया है।"[4] प्रस्तुत उपन्यास समस्त आधुनिकतावादी दृष्टियों से भिन्न है और इसमें 'यौन' जैसे विषयों को नवीनतम रूप में अभिव्यक्त किया गया है। यह निश्चित ही उत्तर-आधुनिकता का लक्षण है।

हिंदी उपन्यास साहित्य में उत्तर-आधुनिकता की प्रवृत्ति आने के पूर्व उपन्यासों में कुछ विषय मूल केंद्र से उपेक्षित थे।लेकिन उत्तर-आधुनिकता के कारण इन उपेक्षित विषयों को उपन्यासों में विशेष स्थान प्राप्त होने लगा। उन विषयों में से एक विषय स्त्री संबंधी लेखन भी है। अब हिंदी उपन्यासों में स्त्री को केंद्र में रखकर लेखन होने लगा है और यह निश्चित ही उत्तर -आधुनिकता से परिपूर्ण विचारधारा है। इस शृंखला में नमिता सिंह द्वारा लिखित 'अपनी सलीबें' उपन्यास आता है। इस उपन्यास में स्त्री संबंधी विविध समस्याओं पर व्यापक मात्रा में प्रकाश डाला गया है। भारतीय स्त्री के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर यह ज्ञात हो जाता है कि स्त्री के विकास में संस्कृति, परंपरा और रीति-रिवाज बाधक हैं। प्रस्तुत उपन्यास की नायिका नीलिमा आई.ए.एस. अधिकारी ईशू से प्रेम करती है। लेकिन जैसे ही उसे यह पता चलता है कि ईशू चमार जाति से है, तो

उसका प्यार खत्म हो जाता है। यह घटना इस बात को दिखाती है कि उत्तर-आधुनिक समय में व्यक्ति का असली महत्त्व उसके पद, पैसे और शक्ति से आँका जाता है, न कि उसके व्यक्तित्व या इंसानियत से। सुरेन्द्र वर्मा द्वारा लिखित 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास में उत्तर-आधुनिकतावादी विचार प्रकट होते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में सिलबिल नाम की लड़की धीरे-धीरे बदलकर वर्षा वशिष्ठ बन जाती है। उसको अपने जीवन में चरम स्थान पर स्थित यश और प्रसिद्धि को पाना है। इसके लिए वह अभिनय का आश्रय लेती है और उसके द्वारा प्रसिद्धि की शिखर पर पहुंच जाती है। सिलबिल की प्रगति के माध्यम से प्रस्तुत उपन्यास में कला और व्यवसाय के संदर्भ में चिंतन हुआ है। कला क्या केवल एक साधना और महान मूल्य है या फिर वह एक व्यवसाय और उपभोग का साधन भी बन सकती है। इस संदर्भ में सुधीष पचौरी लिखते हैं कि-"यहाँ से कला के महान मूल्यों की जगह उपभोग के मूल्यों का वर्चस्व शुरू होता है, छवियों और ग्लैमर का निर्णायक संसार शुरू होता है, जिसे वर्षा क्या, कोई नहीं ठुकरा सकता।"[5] सिलबिल उर्फ वर्षा वशिष्ठ उपन्यास में एक अलग तरह की नायिका के रूप में सामने आती है। उसके जीवन की शुरुआत साधारण कस्बे से शुरू होकर महानगरों तक जा पहुंचती हैं। इस संपूर्ण यात्रा में वह अनेक सामाजिक पारंपरिक मूल्यों और आधुनिक धारणाओं को खंडित करती है। वह अपनी अतृप्त यौन इच्छाओं की पूर्ति हेतु पुरुष के साथ-साथ समलैंगिक यौन-संबंध भी स्थापित करती हैं। वह कई लोगों दिव्या, मिट्ठू, हर्ष, सिद्धार्थ, शिवानी, अनुपमा आदि से संबंध बनाती है। इसमें स्त्री–पुरुष संबंध ही नहीं, बल्कि समलैंगिक संबंध भी शामिल हैं। अंत में वह हर्ष के साथ बिना शादी किए उसके बच्चे की मां बन जाती है। उसकी यह कृति भारतीय पारंपरिक विचारधारा को सुरंग लगा देती है। उसका विवाह संस्था पर विश्वास ही नहीं है। उसकी धारणा है कि स्त्री को अपने शरीर और जीवन के संदर्भ में निर्णय स्वयं लेने का अधिकार है। इसीलिए वह समाज की परवाह किए बिना अपनी इच्छाओं और स्वतंत्रता को महत्त्व देती है। इस तरह उसका मातृत्व केवल परिवार या समाज की मर्यादा से जुड़ा नहीं रहता, बल्कि उसकी व्यक्तिगत आज़ादी और आत्मनिर्णय का प्रतीक बन जाता है। इस बारे में रविंद्र त्रिपाठी लिखते हैं कि-"वर्षा एक नई तरह की औरत है जिसे आधुनिक कहकर परिभाषित नहीं किया जा सकता, वह मध्यमवर्गीय पारम्परिक औरत से अलग है और साथ ही पारम्परिक है।"[6] वर्षा वशिष्ठ अपने सौन्दर्य और अभिनय के माध्यम से यश और सफलता प्राप्त करती है। उसका जीवन स्त्री की स्वतंत्रता, उसकी इच्छाओं और कला की नई समझ को सामने लाता है। इसीलिए यह उपन्यास उत्तर-आधुनिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है।

वीरेन्द्र जैन कृत 'डूब' उपन्यास उत्तर-आधुनिकता की विशेषताओं से परिपूर्ण है। प्रस्तुत उपन्यास यह स्पष्ट करता है कि जिस विकास से लोगों का जीवन नष्ट हो जाता है, वह असली विकास नहीं है। इस उपन्यास में लेखक ने गाँव, किसान और साधारण लोगों की पीड़ा के माध्यम से विकास की परिभाषा पर प्रश्न खड़ा किया है। लेखक ने इन समस्त तथ्यों को माते के द्वारा अभिव्यक्त किया है। माते विकास योजनाओं के द्वारा ग्रामीण लोगों के जीवन विनाश को कतई स्वीकार नहीं करतें। वे उपन्यास में उसका निरंतर विरोध करते दिखाई देते हैं। इस संदर्भ में उनका कथन है कि-"उस विकास से क्या फायदा जो मनुष्यों को उखाड़ दे, बेघरबार कर दे, उन्हें गलत जगह रोप दे, उनकी सहजात इच्छाओं को रौंद दे?"[7] वे अपने विचारों पर दृढ़ हैं। इस उपन्यास में बड़े-बड़े विकास की योजनाओं को चुनौती दी गई है और उसके माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि विकास के नाम पर मूल ग्रामीण संस्कृति और जीवनशैली नष्ट हो रही है। इसी कारणवश प्रस्तुत उपन्यास में मार्क्सवाद जैसे बड़े सिद्धांतों को भी नकार दिया गया है। क्योंकि कोई भी बड़ा सिद्धांत सबके लिए हमेशा सही नहीं हो सकता।

मनोहर श्याम जोशी द्वारा सृजित 'कुरु-कुरु स्वाहा' उत्तर-आधुनिकता का स्पष्ट दर्शन होता है। इस उपन्यास की कथावस्तु पारंपरिक ढाँचे को तोड़ती है। इस उपन्यास में निश्चित कोई एक कहानी या पात्र नहीं हैं, बल्कि इसमें पात्र बदलते रहते हैं और पाठक उन्हें पकड़ नहीं पाता और यही उत्तर आधुनिकता का लक्षण है। उपन्यास की नायिका पहुँचेली नारी अस्मिता के प्रति सजग है। उसका मानना है कि सपनों और दुखों की परिभाषा केवल पुरुष या स्त्री के हिसाब से नहीं होनी चाहिए। वह पुरुष प्रधान समाज एवं संस्कृति पर चोट करते हुए कहती है -"तुम्हारे सपने पुल्लिंग मात्र है और मेरे दुःख स्त्रीलिंग मात्र? प्रार्थना करो कि यह तुम्हारा यह पौरुष पिटा हुआ फिकरा न साबित हो।"[8] उसके यह विचार भी उत्तर-आधुनिक हैं।

इस उपन्यास का शिल्प, भाषा और शैली भी उत्तर-आधुनिक हैं। इसमें पैरोडी (हास्य-नकल), पेस्टिच (विभिन्न शैलियों का मिश्रण), और अंतर्पाठीयता (दूसरे ग्रंथों/विचारों की झलक) दिखाई देती है। यह भी उत्तर-आधुनिकता की विशेषता है। इस उपन्यास में पेरोडी (हास्य-नकल) का उदाहरण देखिए-" तुम पतुरिया के प्यार के इस चक्कर से बाद में साहित्य का चक्कर चलाओगे और झूठ को सच बनाकर पतुरिया को छिन्नमस्ता के समकक्ष नही तो समानान्तर अवष्य रख दोगे।"[9] अर्थात यह उपन्यास पारंपरिक कथा शिल्प को खंडित कर देता है और स्त्री अस्मिता, भाषा की बहुअर्थिता, पैरोडी-पेस्टिच और विखंडन के जरिए उत्तर आधुनिकता को प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास स्पष्ट कर देता है कि अब साहित्य केवल कहानी सुनाने का माध्यम न होकर पुराने ढाँचों को तोड़कर नये तरीके से सोचने और व्यक्त करने का माध्यम बन गया है।

मनोहर श्याम जोशी का दूसरा उपन्यास 'हरिया हरक्यूलिज की हैरानी' पुराने ढंग के उपन्यासों से बिल्कुल अलग है। इस उपन्यास में एक अनोखा जादुई बिम्ब -गूमालिंग दिखाया गया है। मनुष्य का मन हमेशा स्थिर नहीं रहता, बल्कि उसमें संदेह, डर, भ्रम और बेचैनी रहती है और इस बिम्ब के द्वारा मनुष्य के इसी मन की उलझनों और टूटे-बिखरे विचारों को अभिव्यक्त किया गया है। इसलिए इसकी कथावस्तु सीधे-सपाट न होकर अलग-अलग परतों और उलझनों में कही गई है।इसलिए उपन्यास को पढ़ते समय आम पाठक असमंजस की स्थिति का अनुभव करता है और यही उत्तर-आधुनिकता वादी लेखन है। उत्तर-आधुनिकता मानती है कि सत्य के विविध रूप होते हैं।अर्थात उसका एक ही रूप नहीं होता बल्कि प्रत्येक व्यक्ति, गुट और स्थिति के अनुसार उनका अपना अलग सत्य हो सकता है। वर्तमान परिवेश में सत्य और झूठ आपस में इतने घुल - मिल गए हैं कि सत्य क्या है और छूट क्या है? इसके अंतर को समझ नहीं पाते। उपन्यास के पात्र विविध गुटों में बटे हुए हैं। जैसे-"संषयात्मा भी तीन गुटों में बंट गए थे, एक डॉक्टर नीलाम्बर और पत्रकार धारी का था... दूसरा गुट, जिसका झण्डा हेमुली बोज्यू मरते दम तक उठाये रही... संषयात्मा गुट की तीसरे घड़े ने, जिसकी नेता विदूषी राजनीतिक कार्यकत्री डॉक्टर कौमुदी त्रिपाठी थी...।"[10] इनके अपने-अपने सत्य हैं और पाठक समझ नहीं पाता कि इसमें से असली सत्य किसके पास है। परिणाम स्वरूप यथार्थ समझ में नहीं आता। अब कोई अंतिम सत्य नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी दृष्टि से सत्य को प्रस्तुत करता है। इसी कारणवश यह उपन्यास उत्तर-आधुनिकता के विचार को बहुत ही सक्षम ढंग से प्रस्तुत करता है।

श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास 'राग दरबारी' व्यंग्यात्मक शैली में लिखित है। इस उपन्यास की कहानी एक गाँव के इर्द-गिर्द घूमती है। लेकिन सत्यता यह है कि यह कहानी सिर्फ उसी गाँव की नहीं, बल्कि पूरे भारतवर्ष के गाँवों की स्थिति को अभिव्यक्त करती है। प्रस्तुत उपन्यास में मूल्यहीनता, स्वार्थ, अवसरवादिता, अमानवीयता, नैतिक गिरावट, कुत्सित राजनीति आदि का चित्रण यथार्थ धरातल पर हुआ है।आज समाज इनसे लबालब भरा हुआ है। आज का व्यक्ति अपने फायदे के लिए किसी भी स्तर तक जा सकता है। लेखक इन सब दुष्प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालता है, लेकिन उसके समाधान के संदर्भ में कोई संकेत नहीं देता है। यही तथ्य इस उपन्यास को उत्तर-आधुनिक बना देता है। क्योंकि उत्तर-आधुनिकता में लेखक केवल प्रश्न निर्माण करता है। उसके समाधान के बारे में कोई संकेत नहीं देता। इसके अलावा प्रस्तुत उपन्यास में ऐसे कई विषय हैं, जो पाठकों को सोचने के लिए मजबूर कर देते हैं। यह उत्तर-आधुनिकता का ही लक्षण है। इस उपन्यास की पठन पद्धति में यथार्थ शीलता के बजाय अन्तर्पाठीयता का स्पष्ट दर्शन होता है। उदाहरण के लिए उपन्यास में लेखक ने थाने के किए वर्णन को देखिए -"हथियारों में कुछ प्राचीन राइफलें थी जो लगता था गदर के दिनों में इस्तेमाल हुई होंगी। वैसे सिपाहियों के साधारण प्रयोग के लिए बांस की लाठी थी, जिसके बारे में एक कवि ने बताया है कि वह नदी नाले पार करने और झपट कर कुत्ते को मारने में उपयोगी साबित होती है।"[11]

समकालीन हिंदी उपन्यास साहित्य में उपरोक्त उपन्यासों के अलावा अन्य उपन्यासों में भी उत्तर आधुनिकता के लक्षण स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। जिसमें निम्नलिखित उपन्यास आते हैं–

1) विनोद कुमार शुक्ल का 'खिलेगा तो देखेंगे'- प्रस्तुत उपन्यास की कहानी का कोई अंत नहीं है। इसलिए उपन्यास का पठन करने के पश्चात् पाठक स्वयं ही इसका निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य हो जाता है। यही निष्कर्षहीनता

और खुला अंत उत्तर-आधुनिकता की पहचान है।

2) मैत्रेयी पुष्पा का 'इदन्नमम'-इस उपन्यास की कथावस्तु में अनेक मुख्य केंद्र हैं।अर्थात कहानी के केंद्र में अब पुरुष और परिवार के साथ-साथ स्त्री तथा जाति का भी विवेचन हो रहा है। यानी नए केंद्रों का निर्माण हुआ है। यह भी उत्तर-आधुनिकता की पहचान है

3) भीमसेन त्यागी का 'सुरंग' - इस उपन्यास में स्त्री-अस्मिता को प्रमुखता दी गई है और स्त्री-शक्ति और अस्तित्व को नए सिरे से परिभाषित किया गया है। अर्थात इसमें हमें उत्तर-आधुनिकता का लक्षण प्राप्त होता है।

4) जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर' और रामदरश मिश्र का 'बीस बरस' - इन दोनों उपन्यासों में दलित और स्त्री पात्र केंद्र में हैं। इन उपन्यासों में समाज के उपेक्षित पात्रों को मुख्य भूमिका में अभिव्यक्त किया गया है। यानी समाज के वे वर्ग, जिन्हें पहले नजरअंदाज किया जाता था, अब मुख्य भूमिका में हैं। यह भी उत्तर-आधुनिकता का लक्षण है।

5) वीरेन्द्र सक्सेना का 'खराब मौसम के बावजूद'- प्रस्तुत उपन्यास में पुराने मूल्यों को नकारा गया है। इसमें दांपत्य- जीवन को प्रतिष्ठित करने वाली विवाह-संस्था पर ही प्रश्न उठाया गया है। केवल विवाह के माध्यम प्रेम और सेक्स का सही संतुलन संभव नहीं है। यह सोच भी उत्तर आधुनिक है। क्योंकि यह पारंपरिक मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लगाती है।

संक्षेप में समकालीन हिंदी उपन्यासों में उत्तर-आधुनिकता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है। पूर्ववर्ती काल में साहित्य अधिकतर आदर्श, परंपरा और निश्चित ढाँचें तक ही सीमित था। लेकिन समयानुरूप हिंदी उपन्यासकारों ने उनकी ओर नजरअंदाज किया और उनके स्थान पर स्त्री, दलित, प्रेम, सेक्स, स्वतंत्रता और सर्व सामान्य मनुष्य जीवन की समस्याओं आदि को अपने साहित्य का मूलाधार बनाया। इन उत्तर-आधुनिक उपन्यासों की मान्यता है कि जीवन का कोई एकमात्र सत्य नहीं होता। हर व्यक्ति, हर परिस्थिति और हर वर्ग का अपना अलग सत्य हो सकता है। इसीलिए ये समस्त उपन्यास किसी एक निश्चित नतीजे पर नहीं पहुँचते, बल्कि पाठक को सोचने और अपने निष्कर्ष बनाने के लिए छोड़ देते हैं। ये उपन्यास मानव जीवन में भौतिक सुख-सुविधाओं की अपेक्षा संवेदना, रिश्तों की जटिलता, अस्मिता और स्वतंत्रता को विशेष महत्त्व देते हैं। अतः समकालीन हिंदी उपन्यास साहित्य उत्तर-आधुनिकतावादी विचारधारा से परिपूर्ण बन गया है। इनके द्वारा यह स्पष्ट होता है कि अब साहित्य केवल कथन-पठन करने का माध्यम न होकर वैचारिक चिंतन-मंथन के द्वारा जीवन को नए पथ पर अग्रसर करने का माध्यम बन गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ.सुधीष पचौरी-उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श, पृष्ठ-96
2. कृष्णदत्त पालीवाल-उत्तर आधुनिकतावाद और दलित साहित्य, पृष्ठ-33
3. देवषंकर नवीन-उत्तर आधुनिकताः कुछ विचार, पृष्ठ-18
4. डॉ. हेतु भारद्वाज-हिन्दी उपन्यासरू उद्‌भव और विकास, पृष्ठ-178
5. सुधीष पचौरी-उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श, पृष्ठ-166
6. रवीन्द्र त्रिपाठी का लेख-हंस, जुलाई 1994 ई., पृष्ठ-84
7. वीरेन्द्र जैन-डूब, पृष्ठ-93
8. मनोहर श्याम जोशी-कुरु-कुरु स्वाहा, पृष्ठ-73
9. वही, पृष्ठ-64
10. मनोहर श्याम जोशी-हरिया हरक्यूलीज की हैरानी, पृष्ठ-115
11. श्रीलाल शुक्ल-राग दरबारी, पृष्ठ-12

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Reassessing Human Rights Narratives: Ethno-Nationalism, NGO Accountability, and the Global Response to Injustice—A Review of Schimmel's Contributions

Dr. Amrita Chaudhary
Assistant Professor, Department of Liberal Arts & Humanities,
Faculty of Arts & Social Sciences, Swami Vivekanand Subharti, University, Meerut
Email id.: amritachaudhary2583@gmail.com
Mobile: 8958302330

Abstract

This review article critically analyzes three recent contributions by Noam Schimmel that collectively challenge dominant discourses within the global human rights ecosystem. From re-evaluating critiques of ethno-nationalism to exposing ethical lapses within prominent human rights NGOs and calling attention to post-apartheid inequalities in South Africa, Schimmel provokes a much-needed reflection on the limits of Universalist advocacy, the contradictions of institutional power, and the gaps in global justice engagement. The review synthesizes the main arguments, draws connections between these works, and assesses their theoretical and practical implications. This analysis reveals that Schimmel's work is grounded in pluralistic liberalism and demands a more culturally sensitive, ethically accountable, and persistently engaged approach to global human rights.

Keywords: Ethno-Nationalism, Human Rights, NGO Accountability, Self-Determination, Global Justice, Liberal Pluralism

The first paper, titled **"Problematizing and Reappraising Critiques of 'Ethno-Nationalism': Collective Self-Determination, Liberal Democracy, and Human Rights in Dynamic Synergy"** (2025), presents a nuanced and critical re-evaluation of the dominant liberal and left-leaning critiques of ethno-nationalism. Schimmel argues that these critiques often rest on universalist and Western-centric assumptions that dismiss the legitimacy of ethnic or cultural self-determination. He emphasizes that many ethno-nationalist movements are not inherently authoritarian or exclusionary but instead seek empowerment, recognition, and autonomy within frameworks that can respect democratic principles and human rights. By calling attention to the diversity of political expressions that exist across cultures, the paper advocates for a more pluralistic and inclusive understanding of nationalism—one that acknowledges the historical and sociopolitical contexts of communities pursuing self-governance. Schimmel's central thesis is that liberal democracy and ethno-national aspirations can coexist in a dynamic synergy that enhances public participation and justice, rather than contradicting one another.

In the second article, **"Improving Human Rights NGO Ethics and Accountability"** (2024), Schimmel turns his attention to the operations and ethical standing of prominent international human rights organizations such as Amnesty International and Human Rights Watch. While acknowledging their indispensable role in advocating for human rights globally, he critiques the moral authority these organizations wield, often without sufficient internal accountability. The paper identifies several key concerns, including opaque funding structures, potential donor influence on advocacy priorities, and the marginalization of local voices, especially from the Global South. Schimmel argues that such issues can undermine the legitimacy and effectiveness of these NGOs. He calls for reforms grounded in transparency, participatory governance, and ethical humility. This includes being honest about operational constraints and openly addressing criticisms. The paper contributes significantly to the growing discourse on the need for introspection and reform within civil society organizations that have long operated with assumed moral high ground.

The third paper, **"The State of Human Rights in South Africa"** (2023), addresses the troubling decline in international attention toward ongoing human rights issues in post-apartheid South Africa. Schimmel observes that despite the country's political transition to democracy, it continues to struggle with systemic poverty, inequality, gender-based violence, and state dysfunction. He contrasts the intense global activism that marked the anti-apartheid era with the present apathy of international human rights communities. According to Schimmel, the current disengagement reflects a form of selective advocacy, where sustained global concern often fades once a regime change occurs—even if structural injustices remain. The paper is a strong call for renewed international solidarity and consistent human rights engagement with South Africa. It urges human rights actors to support the struggles of South Africa's most marginalized communities, not just in times of political upheaval but through continuous and committed advocacy.

Together, these three papers form a powerful critique of contemporary global human rights discourse. Schimmel questions Universalist liberal assumptions, reveals the ethical vulnerabilities of major human rights NGOs, and highlights the inconsistency in global engagement with ongoing injustices. His work is grounded in the principles of pluralism, democratic accountability, and ethical reflexivity, offering a timely and insightful intervention in the evolving field of global justice and human rights.

Objectives

The objectives of this review are:

1. To evaluate the implications of Schimmel's critique of ethno-nationalism within contemporary human rights discourse.
2. To discuss the ethical shortcomings in NGO practices and propose measures for improved accountability.
3. To examine the neglect of persistent human rights challenges in South Africa by global actors.
4. To synthesize these themes into a broader conversation on evolving norms of human rights, democracy, and justice.

Discussion

1. Rethinking Ethno-Nationalism and Self-Determination

In *Problematizing and Reappraising Critiques of "Ethno-Nationalism"* (2025), Schimmel

interrogates prevailing liberal and left-wing critiques that delegitimize ethno-nationalist aspirations as inherently regressive or authoritarian. He argues that such critiques often ignore the democratic and rights-respecting potential of certain ethno-nationalist movements that seek to affirm collective identity and autonomy without exclusion or violence.

Schimmel challenges the homogenizing application of Western liberal democratic norms, suggesting that the right to cultural self-determination is compatible with the principles of human rights. This aligns with a pluralist vision of international law and liberalism, which allows for diverse political expressions rooted in identity and tradition.

"Many ethno-nationalist movements have contributed to democratization, civic engagement, and human rights protections rather than undermining them" (Schimmel, 2025, p. 3).

2. NGO Accountability and Ethical Practice

In his 2024 article *Improving Human Rights NGO Ethics and Accountability*; Schimmel critiques the operations of major NGOs such as Amnesty International and Human Rights Watch. While acknowledging their contributions to global advocacy, he critiques the moral authority these institutions wield, often without corresponding internal accountability. His concerns include:

- Lack of transparency in donor influence and agenda setting.
- Insufficient engagement with grassroots actors.
- The risk of ethical blind spots due to institutionalized idealism.

He proposes a reformist framework emphasizing ethical humility, participatory governance, and reflexivity within the NGO sector.

"NGOs must reflect on their own power dynamics and acknowledge the structural constraints they operate within" (Schimmel, 2024, p. 6).

3. The State of Human Rights in South Africa

In *The State of Human Rights in South Africa* (2023), Schimmel reflects on the diminished global attention toward ongoing systemic injustices in South Africa nearly three decades after apartheid. He notes how socio-economic inequality, gender-based violence, and state dysfunction continue to afflict vulnerable populations.

Unlike the intense international mobilization during apartheid, today's human rights violations receive limited sustained engagement. Schimmel criticizes this "global selective activism," urging a renewal of consistent and non-tokenistic solidarity.

"South Africa's marginalized continue to suffer from conditions of deprivation that global actors once rallied against with moral fervor" (Schimmel, 2023, p. 4).

4. Integrative Themes

Taken together, these three works present a compelling critique of:

- **Universalism**: Challenged by context-sensitive norms of ethno-nationalism and local expressions of self-rule.

- **Power and Representation**: NGOs and liberal states risk reifying their own biases under the guise of impartial moral advocacy.
- **Global Solidarity**: Requires more than episodic engagement; it must include long-term commitment to justice and equity.

Schimmel's work repositions the discourse toward what can be termed "ethically grounded pluralism," emphasizing democratic accountability, respect for cultural difference, and humility in power.

Findings

i) Implications of Schimmel's Critique of Ethno-Nationalism within Contemporary Human Rights Discourse

Schimmel's critique reveals that mainstream liberal and left-wing perspectives often delegitimize ethno-nationalist movements by equating them with authoritarianism or xenophobia. However, his research challenges this reductionist view by highlighting that many such movements are rooted in historical struggles for identity, justice, and autonomy. These can, in fact, align with democratic values and human rights when structured inclusively and non-exclusively. The finding underscores the need to recognize cultural self-determination as a legitimate aspect of human rights rather than an exception to it. Schimmel's work urges scholars and policymakers to embrace a pluralist paradigm, one that accepts multiple forms of democratic expression, particularly those shaped by indigenous or minority identities within post-colonial societies.

ii) Ethical Shortcomings in NGO Practices and Measures for Improved Accountability

Through his analysis of human rights NGOs such as Amnesty International and Human Rights Watch, Schimmel identifies systemic ethical lapses including lack of transparency, donor dependency, and limited grassroots engagement. He shows that while these organizations advocate for justice and equality externally, they often fail to practice the same internally. The key finding here is that moral authority, if left unchecked, can foster institutional blind spots and reduce responsiveness to local realities. Schimmel recommends measures such as enhanced ethical humility, inclusive decision-making and greater transparency in funding and advocacy agendas. These reforms are essential to re-establish trust and legitimacy, especially in the Global South where affected communities often feel excluded from the human rights discourse led by Global North institutions.

iii) Neglect of Persistent Human Rights Challenges in South Africa by Global Actors

Schimmel's work on post-apartheid South Africa reveals a significant gap between past international solidarity during the apartheid era and the current indifference to enduring injustices. Despite a formal democratic transition, South Africa continues to face structural inequality, gender violence, corruption, and socio-economic exclusion, particularly among historically marginalized communities. The finding here is that international human rights actors have become selectively engaged, focusing on headline crises while ignoring long-term, embedded forms of injustice. This reflects a failure of the global human rights community to sustain its commitments after formal political transitions, and highlights the urgent need for continuous, context-sensitive, and non-symbolic engagement.

iv) Synthesis: Evolving Norms of Human Rights, Democracy, and Justice

Synthesizing the above themes, the broader finding is that global human rights norms are in a state of evolution and tension. Schimmel's work collectively exposes the limitations of Universalist liberal

frameworks that fail to account for diversity in identity, history, and local governance. His critique contributes to the emergence of a pluralist and ethically grounded model of justice, one that values contextual legitimacy, inclusive participation, and accountability not only from governments but also from global civil society institutions. These findings signal a shift in human rights scholarship—toward dynamic, decentralized, and culturally resonant practices that empower local voices while upholding universal principles in more nuanced and balanced ways.

Conclusion

Noam Schimmel's scholarship presents a critical rethinking of contemporary human rights discourse. By challenging Universalist critiques of ethno-nationalism, he highlights the potential for cultural self-determination to coexist with liberal democracy and human rights. His examination of ethical shortcomings in human rights NGOs emphasizes the need for greater transparency, accountability, and humility. Furthermore, his analysis of global disengagement from persistent injustices, as seen in South Africa, reveals a troubling pattern of selective advocacy. Collectively, these works call for a pluralistic, context-sensitive, and ethically grounded approach to justice that can strengthen the legitimacy and impact of global human rights efforts.

References:

- Schimmel, N. (2023). The State of Human Rights in South Africa. *World Affairs*, **186**(4), 1019–1025. https://doi.org/10.1177/00438200231187411
- Schimmel, N. (2024). Improving Human Rights NGO Ethics and Accountability. *World Affairs*, **187**(2), e12035. https://doi.org/10.1002/waf2.12035
- Schimmel, N. (2025). Problematizing and Reappraising Critiques of "Ethno-Nationalism": Collective Self-Determination, Liberal Democracy, and Human Rights in Dynamic Synergy. *World Affairs*, **188**(1), e12060. https://doi.org/10.1002/waf2.12060

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

प्रदीप सौरभ कृत उपन्यास 'तीसरी ताली' : अस्तित्व का संघर्ष और यथार्थ

डॉ. नवनाथ गाड़ेकर
सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
भारत महाविद्यालय, जेऊर (म.रेल)
तहसील-करमाळा, जिला-सोलापुर (महाराष्ट्र) 413202
दूरभाष-9960949298
ई मेल-nawnathgadekar@gmail.com

शोध सारांश

'तीसरी ताली' इस उपन्यास में प्रदीप सौरभ के द्वारा किन्नर समुदाय के जीवन का सर्वांग दृष्टि से लिखा हुआ बहुचर्चित उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने किन्नर समुदाय को समाज में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हुए चित्रित किया है। किन्नरों को अपने घर बचपन में और बड़ा होने पर समाज में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना पड़ता है। उपन्यासकार ने विनीता, मंजू, विजय, शबनम मौसी आदि कई पात्रों के माध्यम से किन्नरों के जीवन संघर्ष पर प्रकाश डालने की कोशिश की है। भारतीय समाज व्यवस्था का किन्नर एक महत्वपूर्ण घटक है परंतु उसकी और आत्मीयता से देखने के लिए कोई भी तैयार नहीं है। सभ्य समाज हमेशा उनके साथ मानवीयता से व्यवहार नहीं करता। समाज के कुछ लोग उनके साथ शारीरिक संबंध बनाकर उनका उपभोग लेकर छोड़ देते हैं। मनुष्य होते हुए भी उनको जानवर की तरह जीवन जीना पड़ रहा है। न ठीक से स्त्री का और न पुरुष का देह होने के कारण समाज में जीवन जीते समय उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ऐसी हालत में उन्हें अपना अस्तित्व बनाए रखने में बहुत कसरत करनी पड़ती है। शबनम मौसी किन्नरों पर हो रहे अन्याय के कारण राजनीति में अपनी पार्टी बनाकर सक्रिय होना चाहती है। अपनी पार्टी का नाम 'तीसरी ताली' यह रखकर नारा 'नकली को परखा, अब असली को परखों' यह रखना चाहती है। वह चुनाव में जीतकर अपने अधिकारों को प्राप्त करके मनुष्य की तरह जीवन जीना चाहती है। इस प्रकार संपूर्ण उपन्यास में हिजड़ों की परंपराएँ, गुरु-शिष्य परंपरा, समलैंगिकता, देह व्यापार संबंधी धारणा, बेरोजगारी, राजनीति और प्रेम के विविध रूपों का विस्तार से चित्रण किया है।

बीज शब्द : किन्नर, हिजड़ा, जीवन, समुदाय, संघर्ष, यौन संबंध, उपन्यास, तीसरी ताली, समाज, अस्तित्व, यथार्थ, अधिकार, शोषण, उपन्यास, मानव आदि।

मूल आलेख

हमारी दुनिया के समानांतर चलती एक उपेक्षित दुनिया जो हमारे आसपास नजरों से दृष्टिगत होते हुए भी हमारे दृष्टिकोण का हिस्सा नहीं बन पाती। यह एक दुनिया हमारे आसपास चलते रहते हुए नजर तो आती है परंतु हमारे विचारों

सोच उस दुनिया तक पहुँच नहीं पाती है। हमारे समुदाय का वह हिस्सा है फिर भी ताली बजाते हुए सभ्य समाज के मांगलिक उत्सवों पर खुशियाँ मनाते हुए दुआएँ देता है। परंतु यह समाज केवल हमारे लिए भय, कौतूहल और घृणा का रहा है। किन्नर समुदाय सदियों से सभ्य समाज के द्वारा उपेक्षित एवं वंचित रहा है। उनका जीवन संघर्ष से भरा हुआ है। यह विधाता की कृपा से जन्म लेता है। परिवार में बचपन में अपने माता-पिता के साथ रहता है। परंतु परिवारवालों को जैसे ही उसके किन्नर होने का एहसास हो जाता है तब उसके साथ उनका व्यवहार बदल जाता है। पल-पल वे उसका अपमान करते हैं, फटकारते हैं, घर के बाहर खेलने के लिए जाने हेतु रोकते हैं, इतना ही नहीं यह घर हमेशा-हमेशा के लिए छोड़कर जाने के लिए उकसाते हैं। परिणामस्वरूप अपने अभिभावकों के व्यवहार से वह परेशान होकर एक दिन घर छोड़कर भाग जाता है। सभ्यता के विकास के साथ मानव ने कई स्तरों पर उत्तरोत्तर प्रगति की है किंतु यह समाज अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत है। वर्तमान में किन्नर समुदाय के जीवन संघर्ष, यातनाओं-भावनाओं आदि ने बौध्दिक मानस पटल पर अपनी उपस्थिति दर्ज की है। संसार के सभी जातियों में किन्नर दिखाई देते हैं। उन्हें थर्ड जेंडर, हिजड़ा, तृतीय लिंगी, उभयलिंगी, शिखंडी, ख्वाजासरा, अनरावनी, पावैया, कुबरा, छक्का, आदि नामों से जाना जाता है। आज हम इक्कीसवीं सदी में अर्थात मशीनी युग में जी रहे हैं यहाँ सारे काम बटन दबाने से ही चुटकियों में संपन्न हो जाते हैं। परंतु सभ्य समाज का मन आज भी दकियानुसी विचारों की संकीर्णता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है। किन्नर समुदाय के जीवन की स्थिति अत्यंत दयनीय है, उनके जीवन में असीम पीड़ा है। इसी कारण वह निरंतर संघर्ष करके जीवन जी रहा है।

हिंदी साहित्य में अब किन्नरों के संघर्ष को विमर्श के रूप में स्वीकारा जा रहा है। किन्नर समुदाय को समाज से तिरस्कार मिलने के कारण वह अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा है। द राइट्स ऑफ ट्रांसजेंडर पर्सन्स बिल 2014 में पास किया गया। यह बिल किन्नरों के अधिकारों पर आधारित है। इसके बाद ट्रांसजेंडर पर्सन्स अर्थात प्रोटेक्शन ऑफ राइट बिल 2016 में पास किया गया। राज्यसभा द्वारा इस बिल को 20 जुलाई 20016 में मंजूरी दी गई। भारत सरकार की कोशिश के जरिए यह व्यवस्था की गई, जिसके कारण किन्नरों को भी सामाजिक जीवन में शिक्षा और आर्थिक क्षेत्र में आजादी से जीवन जीने का अधिकार मिल सके। स्त्री और पुरुष समाज की उत्पत्ति के दो प्रमुख घटक है। इन दोनों के अभाव में हम समाज के विकास की कल्पना ही कर नहीं सकते। समाज में इन दोनों वर्गों का हमेशा से अपना विशेष महत्व रहा है। इस संसार को चलाने के लिए यह दो वर्ग विशेष रूप से उत्तरदाई रहे हैं। किंतु इन दो वर्गों के साथ-साथ यह वर्ग साथ ही रहता और चलता रहा है। परंतु इस वर्ग को सभ्य समाज ने कभी भी स्वीकार नहीं किया उसे सदैव उपेक्षित, बहिष्कृत किया गया है। सदियों से यह समाज ताली बजाते हुए अंधकार में जीवन जीते आया है। इस समाज को अपने जानानांगी दोषों के कारण समाज से बहिष्कृत किया गया है। यह समाज न तो नर है, न ही मादा। अर्थात इनका कोई लिंग नहीं है यह अलिंगी है। वर्तमान विज्ञान के युग में मनुष्य ने भले ही क्रांति की है, परंतु उसकी सोच विचार में किसी भी प्रकार का बदलाव नहीं है। प्राचीन काल में राजा-महाराजा अपने परिवार के सुरक्षा की महत्वपूर्ण जिम्मेदारियाँ उनकी ओर सौंप देते थे। लेकिन वर्तमान समय में उनको अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। हर जगह उनकी उपेक्षा होती है इस संदर्भ में मेघा मस्सी अपने एक लेख में लिखती है कि,"भारत में राजसी शासको के पतन के साथ किन्नरों का अस्तित्व भी जैसे भारतीय समाज में डगमगाने लगा, यही कारण है कि वर्तमान समय में हमारे समाज में किन्नर को अछूत से कम नहीं समझा जाता।"[1] वर्तमान समय में साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से विमर्शों को समाज के सम्मुख बड़े ही शक्तिशाली ढंग से प्रस्तुत किया है जिसमें किन्नर विमर्श प्रमुख है। हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श अपनी अस्मिता की पहचान के लिए प्रयत्नशील है। वर्तमान हिंदी साहित्यकारों के द्वारा किन्नर सामुदाय के जीवन संघर्ष की यथार्थ स्थिति को समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रदीप सौरभ कृत 'तीसरी ताली' यह उपन्यास 'मुन्नी मोबाइल' के बाद लिखा हुआ दूसरा उपन्यास है। यह उपन्यास वाणी प्रशासन से 2011 में प्रकाशित हुआ है। तीसरी ताली यह उपन्यास रिपोर्टर शैली में किन्नर समुदाय के जीवन पर लिखा हुआ बहुचर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास का कथानक उत्तर आधुनिकता का एक जीवंत दस्तावेज माना जा सकता है। किन्नर

समुदाय के अंतर्गत समलैंगिकता, गे-मूवमेंट, लिंग परिवर्तन, अप्राकृतिक योन संबंध तथा हिजड़ा आदि की जीवन शैली को रेखांकित किया है। किन्नरों के जीवन संघर्ष और उनकी जीवन शैली का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में किया गया है। इस उपन्यास की कथा का प्रारंभ देश की राजधानी दिल्ली में स्थित एक हाउसिंग सोसायटी 'सिद्धार्थ एनक्लेव' से प्रारंभ होकर बहु आयामी मोड़ लेते हुए हिजड़ो का मक्का माने जाने वाले तमिलनाडु में स्थित पवित्र स्थल कुआगम के मेले में जाकर समाप्त हो जाती है। इस उपन्यास की कथा का प्रारंभ दिल्ली शहर की तपतपाती सुबह के चित्र से हुआ है। शहर के लोग रात में देर तक जागकर अपने रोजमर्रा के जीवन कार्य में व्यस्त हो जाते हैं। इस समय गौतम साहब के घर पर किन्नरों का समुदाय आता है। तीन बेटियों के बाद गौतम साहब के बेटे ने जन्म लिया है, इस खबर को सुनकर बिना बुलाए बेटे को आशीर्वाद देने के लिए किन्नर समुदाय के लोग उनके घर आ जाते हैं। किन्नरों के द्वारा लाख बार तीसरी ताली बजाने और गाना गाने के बाद भी वे दरवाजा नहीं खोलते। इसका कारण यह है कि उनके लड़के ने हिजड़े के रूप में जन्म लिया है। अपने घर हिजड़े ने जन्म लिया है इसी कारण गौतम साहब का दरवाजा खोलने की हिम्मत नहीं होती। गुस्से में आकर जाते समय किन्नर सुनयना अपने गुरु डिंपल से कहती है कि,"इसके दरवाजे में मूत देते हैं लेकिन डिंपल ने सुनयना को इस बात के लिए अनुमति नहीं दी। डिंपल कहती है हम हिजड़े जरूर है, पर हमारे भी कुछ वसूल है। हमारे पेट पर लात मारेगा तो भगवान भी उसे माफ नहीं करेगा।"[2]

हिजड़ों की उपस्थिति शुभ अवसर पर भारतीय समाज में आज की नहीं है। उपन्यासकार ने विभिन्न घटनाओं के माध्यम से इनकी उपस्थिति रामायण महाभारत काल से दिखाई है। सभ्य तथा मुख्य धारा के समुदाय में हिजड़े आमतौर पर उपवास और मनोरंजन के साधन मात्र से ज्यादा नहीं माने जाते। समाज में आम मान्यता है कि तृतीय जेंडर के लोगों की दुआ में समृद्धि समाई होती है वहीं अगर कोई इनके साथ दुर्व्यवहार करता है तो इनकी बद्दुआ बर्बादी का भी कारण बन सकती है। सामान्यतः किसी परिवार में शिशु के जन्म या शादी ब्याह के अवसर पर उनकी उपस्थिति देखी जाती है। वे लोग नृत्य एवं गायन के माध्यम से लोगों का मनोरंजन करते हैं इसी के साथ बधाई एवं आशीर्वाद देकर रुपए लेकर जाते हैं, जिससे उनकी भौतिक आवश्यकताएँ पूरी होती है। अधिकांशतः यह देखा जाता है कि लोग उनके मनोरंजन तक आनंदित होते हैं परंतु रुपए माँगने पर सभ्य समाज के लोग आनाकानी करते हैं। ऐसे समय किन्नरों को अधिक सताया तो यजमान के व्यवहार से नाराज, दुरूखी हो जाते हैं। इतना ही नहीं क्रुद्ध होकर गाली गलौज पर आ जाते हैं। यहाँ तक कि अपने वस्त्र उतार कर हंगामा कर देते हैं तथा गंदी-गंदी हरकतें भी करते हैं।

हिजड़ों के नाचने-गाने तथा आशीष देने के पीछे रामायण कालीन एक मिथकीय कथा प्रचलित है। उपन्यासकार द्वारा प्रस्तुत उपन्यास में मंजू नामक पात्र के माध्यम से इस कथा को चित्रित किया है वे लिखते है,"असल में हमारे नाचने-गाने के पीछे एक बहुत पुरानी कहानी है। हमारे बुजुर्ग बताते हैं कि जब भगवान राम रावण को मारकर अयोध्या लौटे तो वहाँ बड़ा भारी जश्न हुआ। रातभर नाचना-गाना चला। काफी रात बीतने के बाद भगवान राम ने कहा कि अब सभी नर-नारी अपने-अपने घर जाएँ। भगवान राम ने यह आदेश केवल नर और नारियों को दिया था, जो नर या नारी नहीं है वे वहीं पर रह गए। भगवान राम के आदेश का उल्लंघन कैसे कर सकते थे। उन्हें जब यह बात पता चली तो उन्होंने तीसरी दुनिया के इन लोगों को नाचने गाने का वरदान दे दिया। बस तभी से यह लोग नाच और गा रहे हैं।"[3] इस तरह से मंजू नामक किन्नर उनकी ताली बजाने और नाचने-गाने की कथा को प्रस्तुत करता है।

'तीसरी ताली' उपन्यास में लेखक ने अनेक पात्रों के माध्यम से किन्नरों की जीवन कथा को चित्रित किया है। इन सभी पात्रों में प्रमुख है डिंपल जो हिजड़ों की गद्दी की मालकिन है। नीलम, रेखा चितकबारी कॉलगर्ल रैकेट चलाती है। गौतम साहब और बाबू श्यामसुंदर दास को वेश्याओं के साथ-साथ लौडों का शौक है। आनंदी आंटी, मंजू, रानी उर्फ राजा, श्याम सुंदर सिंह, सुविमलभाई (गांधीवादी नेता), अनिल,, विनीता उर्फ विनीत, विजय (फोटोग्राआफर) आदि पात्रों की सहायता से लेखक ने किन्नर समुदाय के अस्तित्व और जीवन संघर्ष के यथार्थ को एक सौ पिच्यानवे पृष्ठों में चित्रित किया है। इस उपन्यास को लेखक ने दो कहानियों को लेकर लिखा है। एक और डिंपल, नीलम, रानी उर्फ राजा, विनीता उर्फ विनीत जैसे हिजड़ों

की जीवन संघर्ष की गाथा चलती है तो दूसरी और लेस्बियनों और कॉलगर्ल के रैकेट की कहानी है। किन्नर लोग इसी देश के निवासी है और हमारे समाज का हिस्सा है परंतु उनका जीवन कभी भी हमारे तथाकथित सभ्य समाज की मुख्य धारा के आसपास चर्चा के लिए भी नहीं आता। 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि' इस उक्ति के अनुसार प्रदीप सौरभ ने किन्नर समुदाय के अस्तित्व और जीवन संघर्ष के यथार्थ को इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है। किन्नर समुदाय के सभी लोग बचूरा देवी को मानते हैं और अपने किसी सदस्य की मृत्यु होने पर उसे मार-मार कर दफन करते हैं। ऐसा करने के पीछे उनका मानना है कि दोबारा इस योनि में जन्म लेकर वापस ना आ सके। सभ्य समाज में रहनेवाले किसी स्त्री या पुरुष की मृत्यु पर शवयात्रा के समय दुःख एवं शोक का वातावरण होता है। परंतु किन्नरों की शवयात्रा रात के समय अंधेरे में छिपकर मध्य रात्रि के बाद निकलती है। बड़ी अजीब शव यात्रा होती है इनकी उपन्यासकार प्रदीप सौरभ इस संदर्भ को लेकर लिखते हैं कि,"दिल्ली में आमतौर पर हिजड़े के शव को रात को डंडे से मारते, उस पर चप्पल जूते बरसाते और सड़क पर खींचते हुए श्मशान घाट ले जाते हैं। इस तरह शव को श्मशान में ले जाने के पीछे मान्यता है कि मरनेवाला दोबारा तीसरी योनि में जन्म नहीं लेगा।"[4] सभ्य समाज का वर्तन उनके साथ अच्छा न होने के कारण उनको इस जीवन का बहुत दुःख होता है। दूसरा जन्म इस रूप में न मिले इसीलिए वे शव के साथ इस प्रकार का व्यवहार करते हैं अर्थात अपना दुःख व्यक्त करते हुए भविष्य में जन्म को लेकर शुभकामना करते हैं।

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में गुरु और शिष्य की परंपरा को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया एवं उनका गौरव किया गया है। किन्नर समुदाय में भी गुरु और शिष्य की परंपरा को विशेष महत्व दिया गया है। अधिकांश किन्नर अनपढ़ या बहुत ही अल्प शिक्षित होते हैं इसी कारण उनमें गुरु शिष्य परंपरा विद्यमान होती है। प्रदीप सौरव ने तीसरी ताली उपन्यास में इस संदर्भ में लिखा है कि,"सभी हिजड़े आशामाई को गुरु मानते हैं। संत आशामाई स्वयं हिजड़ा है, हरिद्वार के संत शिरोमणि सिद्धेश्वर स्वामी की शिष्या है। उन्होंने बाकायदा उनसे दीक्षा ली है। लंबा समय हरिद्वार में गुजरने के बाद उन्होंने कुतुबमीनार के पास महरौली की पहाड़ियों में अपना ठिकाना बना लिया था। हिजड़ों की मानी हुई पीठ है उनकी। कहते हैं कि वे जिसको श्राप देती है वह पनप नहीं पता।"5 सामान्य जनता की तरह हिजड़े भी गुरु और देवियों के प्रकोप से डरते हैं। उनके मन में गुरु और देवियों के प्रति डर के कारण अपार श्रद्धा होती है। अपने गुरु के आदेशों का वे पालन करते हैं। उनकी बिरादरी में किसी भी लड़कियों को हिजड़ा बनाने की मनाई है। इस संदर्भ में हिजड़ों की गुरु आशामाई का कहना है कि, "कुदरत से खिलवाड़ करने का किसी को हक नहीं है। अपने फायदे के लिए किसी को हिजड़ा बनाना पाप है। ऐसा करने पर हिजड़े को सौ बार हिजड़े का ही जन्म लेना पड़ता है और फिर भी उसका पाप कम नहीं होता है।"[6] इस प्रकार किन्नर समुदाय में कोई गलत काम करने के लिए उनके गुरु की अनुमति नहीं है। सारे किन्नर अपने गुरु के आदेश का पालन एवं सम्मान करते हैं। गुरु की तरह देवी-देवता को भी वे बहुत मानते हैं। सामान्य समाज की तरह कोई भी शुभ कार्य शुरू करने के पहले वे मुर्गेवाली, खप्परवाली देवी की पूजा करते हैं। उपन्यासकार प्रदीप सौरभ ने इस प्रथा का चित्रण करते हुए लिखा है कि,"मंदिर के बगल में एक चंपा का दरख्त जो काफी पुराना और काफी घना भी था। जब वह सफेद फूलों से भर जाता तो बेहद खूबसूरत लगता था। डेरे के लोग ज्यादातर इसी के फूल तोड़कर माँ काली को चढ़ाते। मंदिर में नौ की नौ देवियाँ विराजमान थी। हिजड़े मुर्गेवाली माँ को अपनी इष्ट देवी मानते हैं। लेकिन काली भद्र होने के कारण डिंपल ने खप्परवाली की भव्य एवं बड़ी मूर्ति अपनी मंदिर में लगा रखी थी। गले में मुंडमाला, रक्तरंजित जीभ, पैरों के नीचे शिव, एक हाथ में त्रिशूल, तो दूसरे में फरसा। तीसरे हाथ में खून भरा खप्पर और चौथे हाथ में तलवार। दमक की आँखें। युद्धरत कलाई का रूद्र रूप प्रतिमा में पूरी तरह से दिखता था।"[7] इस प्रकार किन्नर समुदाय के लोग सभ्य समाज की तरह देवी-देवता को मानते हैं उनकी पूजा करते हैं और उनसे आशीर्वाद से जीवन यापन करना चाहते हैं।

देश की राजधानी दिल्ली के सिद्धार्थ एनक्लेव सोसाइटी में रहनेवाले गौतम साहब के घर तीन बेटियों के बाद विनीत का जन्म हुआ है। वह जैसे-जैसे बड़ा होने लगा है वैसे उसमें लड़कियों के लक्षण दिखाई देने लगे। वह अपने आप को लड़की समझने लगा। उसने अपना नाम विनीत से विनीता रखा। वह जब घर के बाहर निकलता तो अन्य लड़के उसकी हरकतों

के कारण उसे किनारा कर देते थे। घर में रहकर वह परेशान हो जाता है। किन्नरों की दशा के संदर्भ में किरण ग्रोवर ने अपने एक लेख में लिखा है कि,"समाज में हिजड़ा समुदाय की स्थिति अत्यंत दयनीय है। इसका कारण स्पष्ट है कि समाज व सरकार द्वारा हिजड़ों के साथ उपेक्षित व्यवहार किया जाता है। समाज ने तो उन्हें मनुष्य का दर्जा भी नहीं दिया है।"[8] परिणामस्वरूप विनीत अपने अभिभावक एवं सोसाइटी के बच्चों की हरकतों से परेशान होकर एक दिन अपना घर छोड़कर भाग जाता है। भागकर जाने के बाद वह दिल्ली दर्शन पर निकलता है। एक दिन शाम के समय अचानक एक स्कोडा कर उसके सामने आकर रुक जाती है। गाड़ी के अंदर बैठा आदमी उसे अपने साथ ले जाता है और उसके साथ अप्राकृतिक व्यवहार करके उसे वापस वहीं पर छोड़कर एक हजार रुपए उसके हाथ में थमा देता है। विनीत उर्फ विनीता के लिए यह पहला अनुभव था। दूसरे दिन वह उस गाड़ी के इंतजार में वहाँ खड़ा हो जाता है। इंस्पेक्टर विनीता को रेखा चितकबरी को सौंप कर कुछ रकम कमाने के मूड में थे। परंतु कांस्टेबल राज चौधरी उसे अपने साथ ले जाता है और अपनी संतान की तरह पालता है। इंस्पेक्टर चौधरी की सहायता से ही विनीता ब्यूटी पार्लर तक पहुँचती है और धीरे-धीरे खुद अपना पार्लर खोलकर जल्द ही चौनलों की सुर्ख़ियों से लेकर अखबारों के थर्ड पेज तक छा जाती है। वह इतनी शोहरत कमा लेती है कि टीवी पर रियालिटी शो शुरू करती है जिसे दुनिया की मशहूर शख्सियत सामने आकर अपनी जिंदगी के कड़वे सच को उजागर करती है। विनीता के इस शो के माध्यम से मशहूर डांसर सुप्रिया कपूर की हकीकत दुनिया को पता चलती है तो कई निर्माता उन्हें अपनी फिल्म से निकाल देते है। अखबारों के कॉलम और फिल्मी पत्रिकाएँ उनके हिजड़ा होने की खबर से भर जाते हैं। यहाँ लेखक ने सुप्रिया के माध्यम से मीडिया पर तमाचा मारते हुए लिखा हैं कि,"मीडिया को तो बेचने से मतलब है। चाहे वह औरत हो या फिर हिजड़ी। जब तक बिकूँगी तब तक आप बेचेंगे।"[9]

किन्नर समुदाय के साथ मीडिया भी किसी प्रकार व्यवहार करके सुर्खियाँ बनाता है इसका चित्रण लेखक ने इस उपन्यास में किया है। अन्य पात्रों की तरह मंजू इस उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पात्र है। वह एक पूर्ण स्त्री है परंतु उसका प्रेम डिंपल का नौकर राजा के साथ होने के कारण डिंपल ने उसकी बच्चेदानी और राजा का पुरूषांग निकाला है। उसके बाद मंजू को हिजड़े के रूप में जीवन जीना पड़ता है। उसकी भेंट एक दिन फोटोग्राफर विजय से होती है और उसमें फिर से स्त्री के रूप में जीवन जीने की इच्छा जागती है। एक दिन विजय के पास आकर अपने प्रणय का निवेदन करती है। विजय के सामने आत्मसमर्पण करते हुए कहती है कि वह हिजड़ा नहीं है एक पूर्ण स्त्री है। परंतु विजय उसके साथ वैवाहिक संबंध बनाकर रहने के लिए इनकार कर देता है और कहता है कि, "मंजू, मैं तुमसे शादी नहीं कर सकता। मैं जानता हूँ कि तुम एक मुकम्मल औरत हो। तुम्हारी खूबसूरती हासिल करना किसी की भी खुशकिस्मती हो सकती है, पर मैं खुशकिस्मत नहीं हूँ। मैं तुम्हारे निर्मल व पारदशी हृदय को स्वीकार कर नहीं सकता। तुम मुकम्मल औरत जरूर हो, पर मैं मुकम्मल पुरुष नहीं हूँ मैं एक हिजड़ा हूँ! हिजड़ा-हिजड़ा।"[10] यहाँ पर मंजू का भ्रम निराश हो जाता है। वह विजय के साथ घर-गृहस्थी के रूप में रहना चाहती है परंतु उसका सपना टूट जाता है। किन्नर समुदाय के लोग मंजू की तरह अपने दुःख को भूलकर जीवन जीना चाहते हैं परंतु सृष्टि भी उनका पीछा नहीं छोड़ती। दुःखों का सिलसिला उनके जीवन में निरंतर रहता है।

भारत देश में राजनीतिक दलीय प्रणाली प्रचलित है। जिसमें हर दल अपने आप को श्रेष्ठ सिद्ध करने की कोशिश करता है। राजनीति में आयी कलावती, शबनम मौसी, रम्मोबाई, पूजा सरकार, हिसार से शोभा नेहरू, शाहपुर से सोनिया मौसी, गोरखपुर से मेयर आशादेवी, कटनी से मेयर कमला जान आदि किन्नरों की राजनीति पर चर्चा होती है। इनमें से अधिकांश का कहना है कि राजनीति हमारे बस की बात नहीं है। राजनीति में जाएँगे तो शादियों में गाना कौन गाएगा। राजनीति एक-दो या ज्यादा से ज्यादा पाँच साल रहेगी उसके बाद तालियाँ ही बजानी पड़ेगी। शबनम मौसी का उदाहरण देकर कहते हैं कि चुनाव में हारने के बाद पेट भरने के लिए तालियाँ ही पीट रही है। परंतु शबनम मौसी हार नहीं मानती वह अपनी हार का कारण स्पष्ट करते हुए कहती है कि,"चुनाव में हारने के लिए शराब, मुर्गा और नोट से वोट लेने का काम नेताओं ने किया। लोगों को भड़काया। लिंग भेद के आधार पर राजनीति का सामंतिय पाठ पढ़ाया और मैं चुनाव में हार गई। ठंडी साँस भरते हुए उन्होंने कहा कि अब ये दीवारें हैं और मैं हूँ। अकेलापन खाने को दौड़ता है।"[11] शबनम मौसी का यह वक्तव्य स्पष्ट करता

है कि तथाकथित सभ्य समाज के सामंतवादी नेता अपने हाथों में सत्ता बनाएँ रखने के लिए किसी भी प्रकार का हथकंडा अपनाते हैं। इसी कारण शबनम मौसी सामंती व्यवस्था के सामने हार न मानते हुए राजनीति के इरादे स्पष्ट करते हुए कहती है कि,"बस इतना ही चाहती हूँ कि लोग हिजड़ो के साथ सम्मान का व्यवहार करें। इसलिए मैं फिर से राजनीति में सक्रिय होना चाहती हूँ, हमें लोगों के बीच जाकर बताना होगा कि हम असली हिजड़े नहीं है। असली हिजड़े तो वे हैं जो जनता के वोटों से संसद और विधानसभा में जाकर उन्हीं का खून चूसने की योजनाएँ बनाते हैं और अपना पेट भरते हैं। हमें अपनी पार्टी बनानी होगी। हमारी पार्टी का नाम होगा 'तीसरी ताली' और नारा होगा 'नकली को परखा, अब असली को परखों'।"[12] शबनम मौसी के इस इरादे से यह स्पष्ट होता है कि सरकारी व्यवस्था का भी उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करती। उनका कहना है कि वे हमारा वोट लेती है और खून चूसने का काम करती है। हमें अब राजनीति में अपनी पार्टी बनाकर सक्रिय होना पड़ेगा। उसके बाद ही हमें अपने अधिकार मिल जाएँगे। उसके बाद ही हमें सम्मान के साथ जीवन जीने का अवसर मिल जाएगा।

निष्कर्ष

'तीसरी ताली' उपन्यास के संदर्भ में यह निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि उपन्यासकार प्रदीप सौरभ ने हिजड़ा समुदाय की आवाज को उठाकर सामान्य जनता और पाठकों तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण काम किया है। किन्नर समुदाय के अस्तित्व और जीवन संघर्ष को यथार्थ के रूप में प्रस्तुत करनेवाला बहुचर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास का मुख्य केंद्र बिंदु है किन्नर और उनका अनोखा संबल। उनकी अपनी संस्कृति है जो दुनिया से अलग हो जाने के बाद स्वतरू ही बनती गई है। इसमें लेखक की पत्रकार की झलक सर्वत्र परिलक्षित होती है। इस उपन्यास को खोजी पत्रकारिता का एक अच्छा नमूना कहा जा सकता है। लेखक ने इस उपन्यास के संदर्भ में स्वयं यह घोषित किया है कि 'मुन्नी मोबाइल' की तरह ही इस उपन्यास के भी नायक और खलनायक काल्पनिक नहीं है। उन्होंने समाज में पूर्णतः उपेक्षित एवं बहिष्कृत हिजड़ा समुदाय की कारुणिक कथा को बहुत ही अच्छी तरह से अपनी लेखनी के द्वारा चित्रित किया है। जिस प्रकार कथानक बढ़ता जाता है, पाठक हिजड़ो के जीवन एवं उनके अस्तित्व के संघर्ष को यथार्थ रूप से परिचित होता चला जाता है। समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होते हुए भी उनको समाज का अंश न होने का दंश सदियों से झेलना पड़ रहा है। यह उपन्यास हिजड़ो के जीवन संबंध में बहुत ही बारीकी से पड़ताल करते हुए पाठकों को किन्नर समुदाय के अस्तित्व और जीवन संघर्ष से परिचित कराता है। इस उपन्यास की रचना में लेखक ने अपने पत्रकार कवि और कुशल फोटोग्राफर के रूप में एक साथ मिलकर लेखन किया है। कथा का गठन और कसाव पाठक को अंत तक बाँधकर रखने में सक्षम है। संपूर्ण उपन्यास की भाषा इतनी सहज और सरल है कि एक बार पढ़ना शुरू किया तो बंद करना बड़ा मुश्किल हो जाता है। अर्थात पाठक वर्ग को बाँधकर रखने की क्षमता इस उपन्यास की भाषा में है। सरस भाषा में बेहद गंभीरता के साथ यह प्रश्न भी निर्माण हो जाता है कि आखिर किन्नरों के साथ इतना बड़ा अन्याय क्यों होता है? परिस्थितिजन्य सत्य एवं विवरण को प्रस्तुत करने के लिए शब्दों का चयन पाठक के मन को बाँधकर रखता है। हिजड़ो के समूह में प्रचलित शब्दों का उनके परस्पर वार्तालाप में प्रयोग लेखक के अध्ययन एवं लेखन को प्रमाणित करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सं. मिलन बिश्नोई, किन्नर विमर्श : साहित्य और समाज, विद्या प्रकाशन, कानपुर, पृ. 237
2. प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011, पृ. 11
3. वही, पृ. 165
4. वही, पृ. 147

5. वही, पृ. 30
6. वही, पृ. 30
7. वही, पृ. 14
8. सं. शगुप्ता नियाज़, थर्ड जेंडर तीसरी ताली का सच, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2018, पृ. 75
9. प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011, पृ. 178
10. वही, पृ. 194
11. वही, पृ. 139
12. वही, पृ. 139

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

आवासीय और गैर-आवासीय विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन

पुर्नवसु चतुर्वेदी
पी-एच.डी. (छात्र)
आईएएसई मानित विश्वविद्यालय

डॉ. अल्पना शर्मा
शोध निर्देशिका

शोध आलेख सार

आवासीय विद्यालय की अच्छी व्यवस्था का उनके व्यक्तिगत जीवन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। कई बार आवासीय विद्यालय का वातावरण दूषित भी हो जाता है जिससे विद्यार्थियों के सामने कई कठिनाईयाँ आती है तथा वे असमायोजन का शिकार हो जाते हैं। किन्तु आवासीय विद्यालय में न रहने वाले विद्यार्थियों का व्यक्तित्व भी बाहरी वातावरण से प्रभावित होता है क्योंकि परिवार द्वारा शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण और सहयोग प्राप्त होता है, जबकि कई परिवारों में शिक्षा के प्रति उदासीनता और नकारात्मक दृष्टिकोण होता है जो असहयोग का प्रतीक बनता है।

किसी भी राष्ट्र की प्रगति छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि पर निर्भर होती है। हर राष्ट्र अपने छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धियों को बेहतर बनाने के लिए प्रयत्नशील रहती है क्योंकि राष्ट्र का विकास छात्रों एवं छात्राओं पर ही निर्भर होती है।

मूल शब्द - विद्यालय एवं शैक्षिक उपलब्धि।

प्रस्तावना

बालक जिस वातावरण में रहता है वह उसके लिए बड़ा महत्वपूर्ण होता है। उसकी इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति वातावरण द्वारा होती है चाहे वह आवासीय विद्यालय में हो या परिवार में। दोनों का ही वातावरण उसकी शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करतीी है। मनुष्य के व्यक्तित्व को समायोजन, परिवार साहचर्य, सामाजिक-भौगोलिक वातावरण, सामाजिक आर्थिक स्थिति, आवासीय विद्यालय का वातावरण आदि सभी घटक प्रभावित करते हैं। बड़े दुर्भाग्य की बात है कि आज के विद्यार्थी अनुशासन की समस्याओं से ग्रसित है। प्राचीन समय में विद्यार्थी आवासीय विद्यालय में रहकर प्रशिक्षण प्राप्त करते थे। लेकिन वर्तमान में आवासीय विद्यालय अध्ययन का केन्द्र न बनकर विलासिता के केन्द्र बन गये हैं। सर्वत्र अनुशानहीनता विश्रृंखलता व तोड़-फोड़ का वातावरण है। ऐसे वातावरण में विद्यार्थी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं भावात्मक रूप से असमायोजित हो जाते हैं। ये असमायोजित विद्यार्थी अध्यापन कार्य में कठिनाई का अनुभव करते हैं। आजकल विद्यार्थी आवासीय विद्यालय के जिस वातावरण में वे रहते हैं उसकी गहरी छाप का उसके मन-मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में उसका शारीरिक पक्ष बहुत महत्वपूर्ण होता है जो नवीन वातावरण से अपना समायोजन नहीं कर पाते है। उसका व्यवहार असमान्य हो जाता है। उसके व्यक्तित्व सम्बन्धी विषमताएँ उसके व्यवहार में परिलक्षित होती है।

ऐसे विद्यार्थी संवेगात्मक दृष्टि से अस्वस्थ कहे जा सकते है।

शैक्षणिक उपलब्धियों का अर्थ होता है 'प्राप्त किये गये स्तर' हिन्दी या गणित आदि विषय जिसकी विद्यालय के अंक या प्राप्त किये गये श्रेणी के आधार पर गणना की जाती है। विद्यालय का वातावरण भी एक महत्त्वपूर्ण अंग है। अच्छी शिक्षण उपलब्धि के लिये इस वातावरण में शिक्षक, कक्षाएँ, शिक्षण सुविधाएँ, सहपाठी, शिक्षण की गुणवत्ता और स्कूल का परिवेश होता है। यह एक आदर्श एवं उच्च शैक्षणिक उपलब्धि के लिए आवश्यक अवयव है। शिक्षकों एवं अभिभावकों की प्रेरणा छात्रों की शिक्षण व्यवस्था कों अनुकूल बनाते हैं। अच्छी प्रयोगशालाएँ, पुस्तकालयें जों कि नवीनतम पुस्तकों से परिपूर्ण हों, शांतिपूर्ण एवं सुरूचिपूर्ण वातावरण अच्छी शिक्षण उपलब्धि में सहायक की भूमिका निभाती हैं। कुछ विद्यार्थी ऐसे होंते हैं जिनकी कक्षा में उपलब्धि उनकी योग्यताओं की अपेक्षा कम होंती हैं। विद्यार्थियों की कम शैक्षणिक उपलब्धि का कारण परिवार, स्कूल और स्वयं विद्यार्थियों से संबंधित हों सकता है। जब विद्यार्थियों की पढ़ने में रुचि न हों तों उनकी शैक्षणिक उपलब्धि कम पायी जाती है।

कुछ विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धियाँ उनकी योग्यताओं की अपेक्षा अधिक अच्छी होंती है। बहुधा ऐसे विद्यार्थियों कों पढ़ने की अधिक सुविधाएं प्राप्त होंती हैं तथा अच्छे शिक्षकों से सीखने की भी सुविधा प्राप्त होंती है। विद्यालय से केवल उन्हीं विद्यार्थियों कों लाभ होता है जिनका विद्यालय में कार्य निष्पादन अच्छा होता है। विद्यालय में शैक्षणिक उपलब्धि के आधार पर ही विद्यार्थीयों की सफलताओं कों ऑका जाता है। उनकी सफलता आंकते समय उनके सीखने के अन्य प्रकार के अनुभवों पर ध्यान नहीं दिया जाता है। विद्यालय में विद्यालय का वातावरण, सहपाठी, शिक्षक आदि के व्यवहार से भी विद्यार्थी प्रभावित होंते हैं। जिस प्रकार बालक पर पहला प्रभाव घर का होता है। वैसे ही दूसरा प्रभाव विद्यालय का होता है जहाँ वे पढ़ते हैं। विद्यार्थी विद्यालय में ज्ञान प्राप्त करते हैं, अपनी कुशलता का विकास करते हैं और शैक्षणिक अवधि के दौरान जिन विषयों का वे अध्ययन करते हैं उनमें वे प्रतिस्पर्धात्मक बनते हैं। शैक्षणिक उपलब्धियाँ कक्षा में विद्यार्थियों के स्तर कों दृढ़ बनाती है। विद्यार्थियों की उपलब्धियों की गणना परीक्षा द्वारा या अध्यापकों द्वारा परीक्षा में दिये गये अंक के आधार पर किये जाते हैं। शिक्षा का उद्देश्य छात्र एवं छात्राओं का विकास करना है और यह तभी संभव है जब उन्हें केन्द्र मानकर शिक्षा दी जाये तथा समाज एवं विद्यालय का वातावरण संतुलित हो, जिससे भेद-भाव मिट सके। सभी को आदर्श शिक्षा मिल सकें। शिक्षा का कार्य मार्ग दर्शन करना है।

अध्ययन का महत्व

विद्यालय की विभिन्न कक्षाओं में अनेक प्रकार के छात्र शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते है। समान मानसिक योग्यताओं से सम्पन्न न होने के कारण वे समय की एक ही अवधि में विभिन्न विषयों और कुशलताओं मे विभिन्न सीमाओं तक प्रगति करते हैं। उनकी इसी प्रगति प्राप्ति या उपलब्धि का मापन या मूल्यांकन करने के लिए उपलब्धि परीक्षाओं की व्यवस्था की गई है। अतः हम कह सकते हैं कि उपलब्धि परीक्षाएं वे परीक्षाएं हैं, जिनकी सहायता से विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विषयों और सिखाई जाने वाली कुशलताओं में छात्रों की सफलता या उपलब्धि का ज्ञान किया जाता है।

हमारे समाज में अच्छी शैक्षणिक उपलब्धि रोजगार प्राप्त करने की कुंजी है, जो कि शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। शैक्षणिक उपलब्धि छात्रों की योग्यता व ज्ञान पर प्रकाश डालती है। अच्छी उपलब्धि यह बताती है कि छात्रों एवं छात्राओं में विषय के प्रति लगन व एकाग्रता है।

अध्ययन का औचित्य :-

शोध की समस्या पर हुए आज तक हुए अध्ययनों में बहुत से अध्ययनों का पुनरावलोकन शोधकर्ता ने किया परन्तु ऐसा अध्ययन नहीं पाया जिसमें आवासीय और गैर-आवासीय विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन किया गया है, अतः यह अध्ययन किया जाना आवश्यक व औचित्यपूर्ण है। इस अध्ययन के द्वारा हम आवासीय एवं गैर-आवासीय विद्यार्थियों के विकास की विधा प्रस्तुत कर सकते हैं।

समस्या कथन :-

''आवासीय और गैर-आवासीय विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन''

अध्ययन के उद्देश्य :-

1. आवासीय और गैर-आवासीय विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ :-

1. आवासीय और गैर-आवासीय विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

परिसीमन :-

यह अध्ययन केवल जयपुर जिले तक सीमित रखा गया है। प्रस्तुत अध्ययन में आवासीय एवं गैर-आवासीय विद्यालयों को ही सम्मिलित किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में आवासीय विद्यालयों के 400 विद्यार्थी तथा गैर-आवासीय विद्यालयों के 400 विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है।

न्यादर्श एवं चयन विधि :-

शोधकर्ता ने राजस्थान राज्य के जयपुर जिले के आवासीय एवं गैर-आवासीय विद्यालयों के कुल 400+400 विद्यार्थियों को Cluster Sampling विधि द्वारा न्यादर्श में शामिल किया है।

शोधविधि :-

प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है क्योंकि अनुसंधान की यह एक वैज्ञानिक विधि है। इस विधि द्वारा प्राप्त निष्कर्ष वैध एवं विश्वसनीय होते हैं।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण :-

शैक्षिक उपलब्धि :-

शोधकर्ता द्वारा शैक्षिक उपलब्धि के लिए विगत वर्श के बोर्ड परीक्षा मार्क्स का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकी :-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकी मध्यमान प्रमाणिक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात मान की गणना की गई है।

समंकों का सारणीयन एवं विश्लेषण :-

प्रस्तुत शोधकार्य में अनुसंधानकर्ता ने संकलित एवं व्यवस्थित आंकड़ों का विश्लेषण जिस प्रकार किया है, उसका परिकल्पनानुसार विवरण निम्न प्रकार है -

सारणी संख्या - 1

आवासीय और गैर-आवासीय विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमानों के अन्तरों की सार्थकता की तुलना

न्यादर्श (विद्यार्थी)	संख्या (N)	माध्य (Mean)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक अनुपात मान (C.R.Value)	सार्थकता स्तर
आवासीय	400	625.08	53.83		.05 .01
गैर-आवासीय	400	691.44	56.01	3.65	सार्थक अन्तर हैं।

विश्लेषण :-

उपर्युक्त सारणी में गणना द्वारा प्राप्त मान तालिका मान से अधिक है। इस आधार पर परिकल्पना को अस्वीकृत किया

जाता है। अर्थात् आवासीय और गैर-आवासीय विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर है।

आरेख संख्या - 1

आवासीय और गैर-आवासीय विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के प्राप्तांकों के मध्य मध्यमान, प्रमाप विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात मान का आरेख

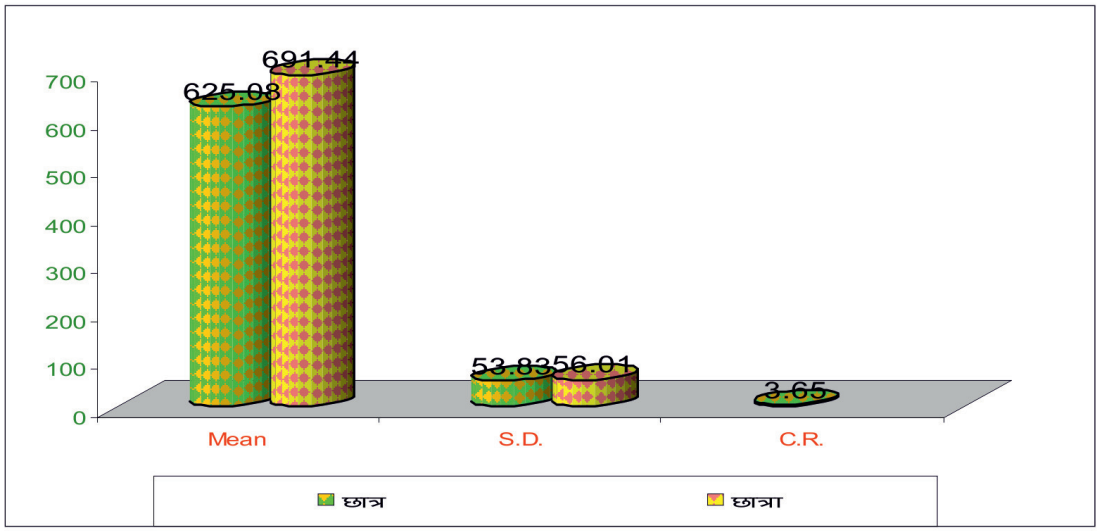

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. चौहान, एस.एस. (1998), उच्च शिक्षा मनोविज्ञान विकास, नई दिल्लीः पब्लिशिंग पृ.सं. 31
2. ढोढियाल, एस. पाठक (1990), शैक्षिक अनुसंधान का विधिशास्त्र. जयपुरः राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ठ संख्या-51
3. कपिल, एच के. (1979), अनुसंधान विधियाँ, आगराः द्वितीय संस्करण, हरिप्रसाद भार्गव हाऊस, पृष्ठ संख्या-23
4. कोठारी, सी.आर. (2008), अनुसंधान विधिशास्त्र विधियाँ और तकनीकी, आगराः न्यूरोज इन्टरनेशनल लिमिटेड पब्लिकेशन कारपोरेशन, पृष्ठ संख्या-2
5. खान, ए.आर. (2005), जीवन कौशल शिक्षा, अजमेरः राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, पृष्ठ संख्या-14
6. गुप्त, नत्थूलाल (2000), मूल्य परक शिक्षा और समाज, नई दिल्लीः नमन प्रकाशन, पेज-122